शिक्षा क्या है?

जे. कृष्णमूर्ति

शिक्षा क्या है?

जे. कृष्णमूर्ति

शिक्षा क्या है

शिक्षा क्या है

जे. कृष्णमूर्ति

राजपाल

प्राक्कथन

जिड्डू कृष्णमूर्ति (1895-1986) ने धर्म, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान व शिक्षा को अपनी अंतर्दृष्टि के माध्यम से नये आयाम दिए। छः दशकों से भी अधिक समय तक विश्व के विभिन्न भागों में, अलग-अलग पृष्ठभूमियों से आए श्रोताओं के विशाल समूह कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व तथा वचनों की ओर आकर्षित होते रहे, पर वे किसी के गुरु नहीं थे, अपने ही शब्दों में, वे तो बस एक दर्पण थे जिसमें इंसान खुद को देख सकता है। वे किसी विशेष समूह के नहीं, सच्चे अर्थों में समस्त मानवता के मित्र थे।

शिक्षा कृष्णमूर्ति के प्रमुख सरोकारों में से एक थी, और प्रतिवर्ष वे ब्रिटेन, यू. एस. ए. व भारत स्थित कृष्णमूर्ति फाउंडेशन द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थानों में जाकर पर्याप्त समय रहते थे। वहां जीवन के विविध प्रश्नों पर विद्यार्थियों व शिक्षकों के साथ नियमित रूप से उनका संवाद होता था। 1934 में स्थापित 'राजघाट बीसेंट स्कूल' भी इन्हीं शिक्षा-संस्थानों में से है।

युवा मन में जो प्रश्न उठते हैं, उनका सीधा संबंध दैनिक जीवन से होता है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं की अर्थवत्ता को भी दैनिक जीवन की कसौटी पर ही परखा जा सकता है। दार्शनिक अवधारणाओं, आध्यात्मिक संकल्पनाओं एवम् धार्मिक, मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक रूढ़ियों के उलझाने वाले घेरे से हटकर ठेठ ज़िंदगी से जुड़े हुए प्रश्नों की पड़ताल ही 'शिक्षा क्या है' की विषय-वस्तु है।

कृष्णमूर्ति के उत्तर बंधे-बंधाए नहीं होते, अपितु वे उस प्रश्न की यात्रा में आपके साथ-साथ वहां तक चलते हैं, जहां प्रश्न और उत्तर एक हो जाते हैं, प्रश्न में ही छिपे उत्तर से आपकी मुलाकात हो जाती है।

प्रश्नों-उत्तरों का यह अपूर्व संगम वाराणसी के गंगा तट पर स्थित राजघाट के सुरम्य वातावरण में हुआ था। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रांगण में दी गईं कृष्णमूर्ति की तीन वार्ताएं भी प्रस्तुत कृति में संकलित हैं।

अनुक्रम

वार्ताएं, राजघाट

शिक्षा क्या है?

मैं यह मान कर चल रहा हूं कि आपमें से अधिकांश अंग्रेजी समझ लेते होंगे। और यदि कुछ नहीं समझ पाते हों तो भी कोई हर्ज नहीं, क्योंकि यहां उपस्थित आपके शिक्षकगण एवं अन्य बड़े लोग अंग्रेजी समझते हैं। मैं जिस बारे में बात कर रहा हूं, ज़रूरत पड़ने पर उसे स्पष्ट करने के लिए आप उनसे पूछ ही सकते हैं; आप उनसे इस बारे में ज़रूर पूछिएगा, ठीक है? क्योंकि आगामी तीन-चार सप्ताहों में हम जिस विषय पर बात करने जा रहे हैं, वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी चर्चा इस बारे में होगी कि शिक्षा क्या है तथा इसमें क्या-क्या शामिल है—केवल परीक्षा पास करना ही नहीं बल्कि शिक्षित होने का पूरा तात्पर्य क्या है। चूंकि हम इन सब चीज़ों के बारे में प्रतिदिन वार्ता करने वाले हैं, अतः जो कुछ भी मैं कह रहा हूं उसे यदि आप नहीं समझ पा रहे हैं तो कृपया अपने अध्यापकों से कहें कि वे आपको इत्मीनान से ये बातें समझाएं। चूंकि इन बातों का संबंध प्रमुख रूप से छात्रों से ही है, अतः बड़े लोग यदि कुछ पूछना चाहें तो वे केवल उन्हीं प्रश्नों को पूछें जिनसे छात्रों को अपनी समस्याओं के स्पष्टीकरण में सहायता मिले। यदि वे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के बारे में प्रश्न पूछेंगे तो उससे छात्रों को कोई लाभ नहीं होने वाला।

क्या आप स्वयं से यह नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़-लिख रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि आपको शिक्षा क्यों दी जा रही है और इस तरह की शिक्षा का क्या अर्थ है? अभी की हमारी समझ में शिक्षा का अर्थ है स्कूल जाना, पढ़ना-लिखना सीखना, परीक्षाएं पास करना और कुछ खेल आदि खेलना। विद्यालय की शिक्षा पूरी कर लेने के बाद आप कॉलेज में जाने लगते हैं, वहां फिर से कुछ महीनों या कुछ वर्षों तक कठिन परिश्रम करते हैं, परीक्षाएं पास करते हैं और कोई छोटी-मोटी नौकरी पा जाते हैं, फिर जो कुछ आपने सीखा होता है उसे भूल जाते हैं। क्या इसे ही हम शिक्षा नहीं कहते? क्या आप समझ रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूं? क्या हम सब यही नहीं कर रहे हैं?

लड़कियां बी. ए. या एम. ए. जैसी कुछ परीक्षाएं पास कर लेती हैं, विवाह कर लेती हैं, खाना पकाती हैं या कुछ और बन जाती हैं, बच्चों को जन्म देती हैं और इस तरह से अनेक वर्षों में पाई जाने वाली शिक्षा पूर्णतः व्यर्थ हो जाती है। हां, यह ज़रूर है कि वे जान जाती हैं कि अंग्रेजी कैसे बोली जाती है, वे थोड़ी-बहुत चतुर, सलीकेदार, सुव्यवस्थित हो जाती हैं और अधिक साफ-सुथरी रहने लगती हैं, पर बस उतना ही होता है, है न?

इसी प्रकार लड़के कोई तकनीकी काम पा जाते हैं, क्लर्क बन जाते हैं या किसी तरह की शासकीय सेवा में लग जाते हैं, इसके साथ ही सब समाप्त हो जाता है। ऐसा ही होता है न?

आप देख सकते हैं कि जिसे आप जीना कहते हैं, वह नौकरी पा लेने, बच्चे पैदा करने, परिवार का पालन-पोषण करने, समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं को पढ़ने, बढ़-चढ़ कर बातें कर सकने और कुशलतापूर्वक वाद-विवाद कर सकने तक ही सीमित होता है। इसे ही हम शिक्षा कहते हैं—है न ऐसा? क्या आपने कभी अपने माता-पिता और बड़े लोगों को ध्यान से देखा है? उन्होंने भी परीक्षाएं पास की हैं, वे भी नौकरिंया करते हैं और पढ़ना-लिखना जानते हैं। क्या शिक्षा का कुल अभिप्राय इतना ही है?

इल्म का मसला कहीं अधिक व्यापक है। इसका काम इतना ही नहीं है कि दुनिया में यह आपको कोई नौकरी दिलाने में सहायक हो, बल्कि यह भी है कि इस दुनिया का सामना करने में आपकी मदद करे। आप जानते हैं कि संसार क्या है। इस संसार में चारों तरफ प्रतिस्पर्धा है। आपको मालूम ही है कि प्रतिस्पर्धा का अर्थ क्या है : प्रत्येक व्यक्ति केवल अपना ही लाभ देख रहा है, अपने लिए सबसे बढ़िया चीज़ हथियाने के लिए संघर्षरत है और उसे पाने के लिए वह दूसरे सभी लोगों को एक ओर धकेल देता है। इस दुनिया में युद्ध हैं, वर्ग-विभाजन है और आपसी लड़ाई-झगड़े हैं। इस संसार में हर व्यक्ति अच्छे-से-अच्छा रोजगार पाने तथा अधिक-से-अधिक ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहा है; यदि आप क्लर्क हैं तो और ऊंचा पद पाने का प्रयत्न करते हैं, और इसीलिए हर समय संघर्षरत रहते हैं। क्या आप यह सब नहीं देखते हैं? यदि आपके पास एक कार है तो आप उससे भी बड़ी कार चाहते हैं। इस प्रकार यह संघर्ष अनवरत रूप से चलता रहता है, न केवल अपने भीतर बल्कि अपने सभी पड़ोसियों के साथ भी। फिर हम देखते हैं युद्ध, जिसमें हत्याएं होती हैं, लोगों का विनाश होता है, जैसा पिछले विश्व-युद्ध में हुआ जिसमें करोड़ों लोग मारे गए, घायल हुए, अपाहिज बना दिए गए।

यह सारा राजनीतिक संघर्ष हमारा जीवन है। इसके अलावा जीवन धर्म भी तो है, क्या नहीं है? जिसे हम धर्म मानते हैं वह तो कर्मकांड है, जैसे मंदिरों के चक्कर काटना, जनेऊ या कोई ऐसी चीज़ धारण करना, कुछ शब्द बुदबुदा देना या किसी गुरु का पिछलग्गू बन जाना। मरने का भय, जीने का भय, लोग क्या कहेंगे और क्या नहीं कहेंगे इसका भय, न जाने हम किस ओर जा रहे हैं इसका भय, नौकरी छूट जाने का भय और धारणाओं का भय, क्या यही सब जीवन नहीं है? अतः क्या जीवन असाधारण रूप से जटिल चीज़ नहीं है? क्या आप जानते हैं कि 'जटिल' शब्द का क्या अर्थ है?—बहुत उलझा हुआ, यह इतना सरल नहीं है कि

आप इसे तत्काल समझ लें; यह बहुत ही कठिन है, इससे अनेकों मुद्दे जुड़े हैं।

अतः शिक्षा का अर्थ क्या यह नहीं है कि इन सभी समस्याओं का सामना करने के लिए वह आपको समर्थ बनाए। यह आवश्यक है कि इन सभी समस्याओं का ठीक ढंग से सामना करने के लिए आपको शिक्षित किया जाए। यही शिक्षा है, न कि मात्र कुछ परीक्षाएं पास कर लेना, कुछ बेहूदा विषयों का—जिनमें आपकी रुचि बिलकुल नहीं है, उनका अध्ययन कर लेना। सम्यक शिक्षा वही है जो विद्यार्थी की इस जीवन का सामना करने में मदद करे, ताकि वह जीवन को समझ सके, उससे हार न मान ले, उसके बोझ से दब न जाए, जैसा कि हममें से अधिकांश लोगों के साथ होता है। लोग, विचार, देश, जलवायु, भोजन, लोकमत, यह सभी कुछ लगातार आपको उस खास दिशा में ढकेल रहे हैं, जिसमें कि समाज आपको देखना चाहता है। आपकी शिक्षा ऐसी हो कि वह आपको इस दबाव को समझने के योग्य बनाए, इसे उचित ठहराने के बजाय आप इसे समझें और इससे बाहर निकलें जिससे कि एक व्यक्ति होने के नाते, एक मनुष्य होने के नाते, आप आगे बढ़कर कुछ नया करने में सक्षम हो सकें और केवल परंपरागत ढंग से ही विचार करते न रह जाएं। यही वास्तविक शिक्षा है।

आप जानते हैं कि हममें से अधिकांश के लिए शिक्षा का अर्थ यह सीखना है कि हम क्या सोचें। आपका समाज, आपके माता-पिता, आपका पड़ोसी, आपकी किताब, आपके शिक्षक ये सभी आपको बताते हैं कि आपको क्या सोचना चाहिए। 'क्या सोचना चाहिए' वाली यांत्रिक प्रणाली को हम शिक्षा कहते हैं और ऐसी शिक्षा आपको केवल यंत्रवत, संवेदनशून्य, मतिमंद और असृजनशील बना देती है। किंतु यदि आप यह जानते हैं कि 'कैसे सोचना चाहिए'—न कि 'क्या सोचना चाहिए'—तब आप यांत्रिक, परंपरावादी नहीं होंगे बल्कि जीवंत मानव होंगे; तब आप महान क्रांतिकारी होंगे—अच्छी नौकरी पाने या किसी विचारधारा को आगे बढ़ाने के लिए लोगों की हत्या करने जैसे मूर्खतापूर्ण कार्य करने के अर्थ में क्रांतिकारी नहीं बल्कि ठीक-ठीक विचार कैसे करना चाहिए, उस अर्थ में। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन जब हम विद्यालय में होते हैं तो इन चीज़ों की ओर कभी ध्यान नहीं देते। शिक्षक स्वयं इसे नहीं जानते! वे तो आपको केवल यही सिखाते हैं कि क्या पढ़ना चाहिए, कैसे पढ़ना चाहिए। वे आपकी अंग्रेजी या गणित सुधारने में व्यस्त रहते हैं। उन्हें तो इन्हीं सब चीज़ों की चिंता रहती है, और फिर पांच या दस वर्षों के बाद आपको उस जीवन में धकेल दिया जाता है जिसके बारे में आपको कुछ पता नहीं होता। इन सब चीज़ों के बारे में आपको किसी ने कुछ नहीं बताया है, या बताया भी है तो किसी दिशा में आपको धकेलने के लिए, जिसका परिणाम होता

है कि आप समाजवादी, कांग्रेसी या कुछ और हो जाते हैं। परंतु वे आपको यह कभी नहीं सिखाते, न ही इस बारे में आपका सहयोग करते हैं कि जीवन की इन समस्याओं को कैसे सोचा-समझा जाए; और हां, कुछ देर के लिए इस पर चर्चा कर लेने से काम नहीं चलेगा, बल्कि इन सारे वर्षों के दौरान बराबर इसकी चर्चा हो, यही तो शिक्षा है, है न? क्योंकि इस प्रकार के विद्यालय में हमें यही सब तो करना चाहिए। हमें केवल आपको इतनी मदद नहीं देनी कि आप बस छोटी-मोटी परीक्षाएं पास कर लें बल्कि इसमें भी आपका सहयोग करना हमारा कार्य है कि जब आप इस स्थान को छोड़कर जाएं तो जीवन का सामना कर सकें, आप एक प्रबुद्ध मानव बन सकें न कि मशीनी इंसान, हिंदू, मुसलमान, साम्यवादी या ऐसा ही कुछ और बन जाएं।

यह अत्यंत महत्त्व रखता है कि आप किस प्रकार शिक्षित किए जा रहे हैं, आप किस ढंग से चिंतन-मनन करते हैं। अधिकांश शिक्षक सोच-विचार नहीं करते, वे बस नौकरी मिल जाते ही निश्चिंत होकर एक जगह जम जाते हैं क्योंकि उनका परिवार होता है जिसकी उन्हें चिंता होती है, उनके माता-पिता होते हैं जो उनसे कहते हैं कि तुम्हें अमुक धार्मिक अनुष्ठान करना चाहिए, तुम्हें यह करना चाहिए, तुम्हें वह करना चाहिए। उनकी अपनी समस्याएं होती हैं, अपनी कठिनाइयां होती हैं। उन सबको वे वैसा ही छोड़कर विद्यालय आ जाते हैं, आपको कुछ पढ़ाते-लिखाते हैं; वे नहीं जानते कि सोच-विचार कैसे किया जाता है और न ही हमें इसका पता होता है। इस प्रकार के विद्यालय में निश्चय ही आपके लिए, शिक्षकों के लिए, हम सबके लिए, जो भी यहां रहते हैं उनके लिए यह बहुत ज़रूरी है कि जीवन की सारी समस्याओं पर विचार किया जाए, उन पर चर्चाएं की जाएं, उनका पता लगाया जाए, उनकी जांच-पड़ताल की जाए, छानबीन की जाए ताकि आपका मन इतना सतर्क हो जाए कि आपको दूसरों का अनुसरण न करना पड़े।

जो कुछ मैं कह रहा हूं क्या उसे आप समझ रहे हैं? क्या यह सब शिक्षा नहीं है? शिक्षा सिर्फ इक्कीस साल की उम्र तक नहीं चलती बल्कि यह तो जीवनपर्यंत जारी रहती है। जीवन किसी नदी-सा होता है, और कभी स्थिर नहीं होता, सदैव गतिशील रहता है, सदैव जीवंत और समृद्ध होता है। जब हम समझते हैं कि हमने नदी के एक हिस्से को समझ लिया है और उस हिस्से को कसकर पकड़ कर रखते हैं तो वह सड़ा हुआ पानी होता है। क्योंकि नदी तो प्रवाह में रहती है। नदी की सारी गतिविधियों को, उन सारी चीज़ों को जो उस पर हो रही हैं ध्यानपूर्वक देखना, समझना, उनसे सीधे संपर्क में होना, यही जीवन है और इसके लिए हम सभी को तैयार होना है।

अतः वास्तव में शिक्षा का मतलब कुछ परीक्षाएं पास कर लेना भर नहीं बल्कि इन समस्त समस्याओं पर विचार करने के लायक होना भी है। ताकि

आपका मन यांत्रिक और परंपराबद्ध न हो जाए, ताकि आपका मन सृजनशील हो, ताकि आप समाज के अनुकूल होने में ही न लगे रहें बल्कि उसे तोड़कर पूर्णतः नये का सृजन करें—समाजवादी, साम्यवादी या कांग्रेसवादी विचारधाराओं के अनुसार किसी नयी चीज़ का नहीं बल्कि एक नितांत नयी वस्तु का—यही वास्तविक क्रांति है। क्योंकि शिक्षा का तात्पर्य आखिरकार यही तो है कि आप स्वतंत्रतापूर्वक, बेरोकटोक विकसित हो सकें ताकि एक अभिनव विश्व का सृजन संभव हो। पुराने लोगों ने कोई सुंदर संसार नहीं बनाया है, उन्होंने तो उसे और भी अस्त-व्यस्त कर डाला है। क्या शिक्षा का और शिक्षक का कार्य यह देखना नहीं है कि आप स्वतंत्रतापूर्वक विकास करें ताकि आप चीज़ों को बदल सकें और यह न हो कि, जैसा अधिकांश लोगों के साथ होता है, आप भी संवेदनशून्य और जड़बुद्धि होकर एक दिन यूं ही मर जाएं?

इसलिए मुझे और हममें से अधिकांश लोगों को जो इन बातों के प्रति गंभीर हैं यह महसूस होता है कि इस तरह के स्थान द्वारा एक ऐसा परिवेश निर्मित हो, एक ऐसा स्थान हो जहां आपको प्रभावित, संस्कारित और प्रशिक्षित किए बिना ही विकसित होने का हर अवसर मिल सके ताकि आप जब इस जगह को छोड़कर जाएं तो प्रज्ञापूर्वक और निर्भयता से जीवन को जी सकें। अन्यथा इस स्थान की कोई महत्ता न होगी; यह भी उन्हीं सड़े-गले अन्य विद्यालयों जैसा होगा—शायद उनसे यह कुछ बेहतर होगा क्योंकि सौभाग्य से यह एक सुंदर जगह पर स्थित है, यहां के लोग अधिक सौहार्दपूर्ण हैं, वे आपको मारते-पीटते नहीं, भले ही वे अन्य तरीकों से आपको प्रताड़ित करते हों। हमें एक ऐसे विद्यालय का निर्माण करना चाहिए जहां छात्रों का दमन न किया जाए, उन्हें बंधन में नहीं रखा जाय तथा हमारी धारणाओं के द्वारा, हमारी मूर्खताओं और भयों के माध्यम से उनका शोषण न किया जाए ताकि वे जैसे-जैसे विकसित हों अपने वैयक्तिक मामलों को समझने लगें और विवेकपूर्वक जीवन का सामना करें। आप जानते हैं कि इन सब चीज़ों के लिए क्या आवश्यक है—इसके लिए केवल प्रतिभावान जीवंत छात्र ही नहीं बल्कि वैसे सही प्रकार के शिक्षक भी चाहिए। न तो ठीक तरह के शिक्षक हैं और न ही ठीक तरह के छात्र हैं—ये सभी जन्मजात नहीं होते हैं, इसके लिए हमें संघर्ष करना होता है, विचार-विमर्श करना पड़ता है और तब तक प्रयास करना पड़ता है जब तक कि यह घटित न हो जाए। आप जानते हैं कि सुंदर गुलाब उगाने के लिए आपको अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक उसकी देखरेख करनी पड़ती है। कविता लिखने के लिए आपके पास एक भावदशा होनी चाहिए, उसे रचने के लिए आपके पास शब्द होने चाहिए। इस सब के लिए सावधानी व काफी अवलोकन की ज़रूरत पड़ती है। तो क्या यह बहुत ज़रूरी नहीं है कि यह स्थान भी ऐसा ही हो? यदि यह स्थान ऐसा नहीं बन पाता तो इसके लिए आपके एवं शिक्षकों के अलावा कोई भी दोषी नहीं है। यह मत कहिए

—'शिक्षक इसे नहीं कर रहे हैं और यदि वे ऐसे स्थान का निर्माण नहीं करते तो यह शिक्षकों का दोष है।' अन्य कोई इसे नहीं बनाएगा—आप, मैं और शिक्षक ही इसका निर्माण करेंगे। सच्ची क्रांति के लिए इस तरह की भावना का होना आवश्यक है कि यह विद्यालय हमारा है, इसका निर्माण आपको, मुझे, शिक्षकों तथा सभी को मिलजुलकर करना है।

अतः यह समझ लेना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है कि 'शिक्षा' से हमारा क्या अभिप्राय है। शिक्षा के आदर्शों की बात नहीं क्योंकि ऐसे आदर्श तो बकवास हैं। हम जैसे हैं वहीं से हमें आरंभ करना होगा, हम जैसे हैं वहीं से हमें चीज़ों को समझना होगा, उसी आधार पर निर्माण करना होगा। आपके पास कोई बना-बनाया उद्यान या विद्यालय नहीं होता, भूमि जैसी भी है आप उसे उसी रूप में ग्रहण करते हैं, उसमें उर्वरक डालते हैं, उसकी सिंचाई करते हैं और तब ना-कुछ से कुछ आता है। वस्तुतः जहां कुछ भी नहीं है वहां आपको कुछ उत्पन्न करना होगा, वहां मिलजुल कर निर्माण करना होगा।

क्या हममें से प्रत्येक के लिए यह जानना आवश्यक नहीं है कि ठीक ढंग से कैसे सोचा जाए? क्या सोचें यह नहीं और न ही यह कि पुस्तकें क्या कहती हैं बल्कि यह कि हम सोच-विचार कैसे करें। यही सब है जिस पर मैं अगले तीन-चार हफ्तों में आपसे बातचीत करना चाहता हूं; यही कि कैसे ठीक-ठीक सोचा जाए जिससे कि अंत में जाकर आपका और मेरा मन बिलकुल सुस्पष्ट हो और तब हम उस स्पष्टता के साथ, उस सोच-विचार के साथ, उस क्षमता के साथ बाहर निकल सकें और जीवन से रूबरू हो सकें।

क्या मैं आपसे यह प्रश्न पूछ सकता हूं कि स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई के बाद आप क्या करना चाहते हैं? क्या आप जानते हैं कि आप क्या करना चाहते हैं? क्या आप नौकरी करना नहीं चाहते, क्या नौकरी पाना आपकी पहली चिंता नहीं है? आप सब तो जैसे गूंगे हो गए हैं! यह पहला दिन है और आप थोड़ा शरमा रहे हैं। एक-दो दिन में सब ठीक हो जाएगा। कृपया लंबे समय तक अपना संकोच मत बनाए रखिए, हम केवल कुछ हफ्तों के लिए यहां रहेंगे।

प्रश्न : प्रज्ञा क्या है?

कृष्णमूर्ति : आप क्या सोचते हैं, प्रज्ञा क्या है? वह नहीं जो शब्दकोश में लिखा है, वह नहीं जो आपके शिक्षकों या पुस्तकों ने कहा है—उन्हें एक तरफ छोड़ दीजिए और विचार कीजिए, यह पता लगाने का प्रयत्न कीजिए कि प्रज्ञा क्या है। प्रज्ञा के बारे में बुद्ध, शंकर, शेक्सपीयर, टेनीसन या स्पेंसर या अन्य लोग क्या कहते हैं, इसको भूल जाइए और खुद सोचिए कि प्रज्ञा क्या है? आपको बड़ा आश्चर्य होता है न जब आपसे कहा जाता है कि

आप औरों के अनुसार मत सोचिए? एक ऐसे व्यक्ति को लीजिए जो शंकर को पढ़ता है या साम्यवादी दर्शन को पढ़ता है अथवा किसी जाने-माने विद्वान को पढ़ता है तब वह तत्काल आपको किसी का उद्धरण देते हुए बता देगा कि प्रज्ञा क्या है, लेकिन जब आपसे यह कहा जाता है कि आप किसी का उद्धरण मत दीजिए, किसी के विचार को मत दोहराइए, किसी शब्दकोश में प्रज्ञा का अर्थ मत देखिए तब आप असहाय से हो जाते हैं। क्या ऐसा ही नहीं होता?

आपकी सोच-समझ में प्रज्ञा क्या है? क्या यह बड़ा ही जटिल प्रश्न नहीं है? प्रज्ञा क्या है इसे कुछ शब्दों में बता पाना बड़ा मुश्किल है। आइए पता लगाना आरंभ करें कि प्रज्ञा क्या है। वह व्यक्ति जो लोगों के मत से भयभीत है, शिक्षक से भयभीत है, नौकरी न छूटे इससे भयभीत है, परीक्षा में पास न होने से भयभीत है, वह बुद्धिमान नहीं है। भयभीत मन मेधावी नहीं होता। आपका क्या कहना है? क्या यह बहुत कठिन बात है? यदि मैं अपने माता-पिता से भयभीत हूं कि वे मुझे डांटेंगे, कि वे मुझे ऐसा-वैसा कहेंगे, तब क्या मैं मेधावी हूं? मैं उनकी इच्छा से व्यवहार करता हूं, कार्य करता हूं, सोचता हूं, क्योंकि मैं स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने से डरता हूं, खुले मन से विचार करने और काम करने से डरता हूं। अतः मैं जो कुछ हूं वैसा होने से भय मुझे रोकता है। मैं हमेशा नकल करता रहता हूं, मैं सदैव अनुकरण करता रहता हूं। मैं सदैव उन चीज़ों को करने का प्रयत्न करता हूं जो दूसरे लोग मुझसे करवाना चाहते हैं क्योंकि मैं भयभीत हूं। इसलिए जो मन डर के कारण अनुकरण करता है, दूसरों की नकल करता है, मेधावी नहीं होता। या होता है? आप क्या कहते हैं?

क्या शिक्षा का कार्य यह नहीं है कि इन भयों को समझने में छात्रों का सहयोग करे और वे देख सकें कि वे अपने शिक्षक से, अपने माता-पिता से कितने भयभीत हैं। ताकि वह यह न कह सकें, 'चूंकि मैं भयभीत हूं अतः मैं वही करूंगा जो मैं चाहता हूं'—यह कहना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है। इन भयों को समझने एवं इनसे मुक्त होने में शिक्षा को हमारी मदद करनी चाहिए। यह बहुत, बहुत कठिन है। इसे समझने, इसकी गहराई में जाने के लिए खासी जांच-पड़ताल की ज़रूरत होती है। आप जानते हैं कि 'तरल होने' का अर्थ क्या होता है? आप जानते हैं कि जब मौसम अत्यंत ठंडा हो जाता है तो पानी जमकर बर्फ हो जाता है और सूर्य के निकलने पर पिघलने लगता है।

आज की सुबह हम सभी अपने को जकड़ा हुआ सा महसूस कर रहे हैं क्योंकि हम एक दूसरे से परिचित नहीं हैं। आप लोग कुछ सहमे-सहमे हैं, क्योंकि हो सकता है कि आप कुछ ऐसे प्रश्न पूछना चाह रहे हों जिन्हें पूछने में आपको शर्म आ रही हो—हो सकता है आप कुछ ऐसा पूछ बैठें जिसके लिए बाद में आपके शिक्षक शायद आपसे कहें कि आपको वह सब नहीं

पूछना चाहिए था, या शायद आप अपने सहपाठियों से भयभीत हों। यह सब आपको फुर्तीलापन महसूस करने से, सहज-स्वाभाविक हो पाने से, सरल हो पाने से रोकता है जिससे कि आप कुछ पूछ सकें। मुझे यकीन है कि आपके भीतर अनेक प्रश्न उठ रहे हैं किंतु उन्हें पूछने का साहस आप नहीं जुटा पा रहे हैं क्योंकि आज की सुबह में—जो हम लोगों के परस्पर परिचय की पहली सुबह है—आप थोड़े से सशंकित हैं। शायद कल का सूरज हमें द्रवित करेगा, हममें गर्मजोशी आएगी और हम एक दूसरे से प्रश्न पूछ सकेंगे।

4 जनवरी 1954

भय

आज की सुबह मैं एक ऐसे विषय पर चर्चा करना चाहूंगा जो हो सकता है थोड़ा कठिन जान पड़े पर हम उसे समझने की कोशिश करेंगे, यथासंभव सरल रूप में और स्पष्टतापूर्वक। आप जानते हैं कि हममें से अधिकांश लोग किसी-न-किसी बात से भय रखते हैं, क्या प्रायः ऐसा नहीं होता है? क्या आप जानते हैं कि आप किस खास भय से ग्रस्त रहते हैं? शायद आपको अपने शिक्षक से, अपने माता-पिता से, अपने से बड़े लोगों से डर लगता होगा, या आप सांप या भैंस से डरते होंगे या इस बात से डरते होंगे कि कोई आपके बारे में क्या बात करता होगा, शायद आप मृत्यु आदि से डरते होंगे। प्रत्येक व्यक्ति डरा करता है लेकिन कम उम्र के लोगों का भय अपेक्षाकृत साधारण तरह का होता है। हम ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों हमारे डर अधिक जटिल, अधिक सघन और सूक्ष्मतर होते चले जाते हैं। मान लें कि मैं किसी विशिष्ट क्षेत्र में सफल होना चाहता हूं। आप जानते ही हैं कि 'सफल' होने का अर्थ क्या होता है। मैं एक महान लेखक बनना चाहता हूं। मैं महसूस करता हूं कि यदि मैं लेखन कर सकूं तो मेरा जीवन सुखी हो जाएगा। इसलिए मैं लेखन करने लगता हूं। पर मेरे साथ कोई अनहोनी घट सकती है, हो सकता है मुझे ज़िंदगी भर के लिए लकवा मार जाए और अब यह सोचकर मैं भयभीत रहने लगता हूं। इसलिए जैसे-जैसे हम बड़े होने लगते हैं अनेक प्रकार के भय हममें उठने लगते हैं, जैसे—अकेले छूट जाने का भय, कोई मित्र न होने का, संपत्ति खो बैठने का भय, प्रतिष्ठा खो देने का भय और दूसरे तमाम भय हैं।

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि हम—आप युवा लोग और मैं—भय के इस प्रश्न पर विचार करें क्योंकि समाज सोचता है, बड़े सोचते हैं कि आपके आचरण को ठीक रखने के लिए भय का होना ज़रूरी है। यदि आपको अपने शिक्षक अथवा अपने माता-पिता से डर लगता है तो वे आप पर बेहतर ढंग से नियंत्रण कर सकते हैं। वे आपसे यह कह सकते हैं "यह करो और वह मत करो" और आपको उनकी बात खुशी-खुशी माननी होगी। इस प्रकार नैतिक रूप से दवाब डालने के लिए भय का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए बड़ी कक्षा में छात्रों को नियंत्रित करने के लिए शिक्षक भय का सहारा लेते हैं। ऐसा होता है न? समाज कहता है भय का होना आवश्यक है नहीं तो नागरिक, जनता नियंत्रण से बाहर हो जाएगी और उग्र हो उठेगी। इस प्रकार भय मनुष्य को नियंत्रण में रखने के लिए आवश्यक सा बन गया है।

आप जानते हैं कि मनुष्य को सभ्य बनाने के लिए भी भय का उपयोग किया जाता है। संसार भर के धर्मों ने मनुष्य को नियंत्रित करने के लिए

भय को हथियार के रूप में उपयोग किया है, किया है कि नहीं? वे कहते हैं कि यदि इस जन्म में तुम अमुक-अमुक चीज़ें नहीं करते हो तो अगले जन्म में तुम्हें इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। हालांकि सारे धर्म प्रेम का उपदेश देते हैं, मनुष्यों के बीच भाईचारे और एकता की बात करते हैं फिर भी सूक्ष्म रूप से अथवा क्रूरता एवं असभ्य तरीकों से भय को बनाए रखते हैं।

यदि किसी कक्षा में छात्रों की संख्या बहुत अधिक हो तो शिक्षक आपको कैसे नियंत्रित करेंगे? नहीं कर सकेंगे। आपको नियंत्रित करने के लिए उन्हें अनेक उपाय एवं तरीके खोजने होंगे। इसलिए वे कहेंगे, 'प्रतिस्पर्धा करो, उस छात्र जैसे बनो जो तुमसे बहुत अधिक चतुर है।' इस तरह आप संघर्ष करते हैं, आप डर जाते हैं, आपके भय का उपयोग प्रायः आपको नियंत्रित करने के लिए एक साधन के रूप में किया जाता है। क्या आप इसे समझते हैं? क्या यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण नहीं है कि शिक्षा भय का समूल नाश करने और छात्रों को भय से मुक्त होने में उनकी सहायता करे, क्योंकि भय मन को विकृत कर देता है। मैं समझता हूं कि यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि इस तरह के विद्यालय में हर तरह के भय को समझा जाए और उन्हें दूर किया जाए, उनसे मुक्त हुआ जाय। क्योंकि यदि आपके भीतर किसी प्रकार का भय है तो वह आपके मन को विकृत कर देगा और आप कभी भी प्रज्ञावान नहीं हो सकेंगे। भय काले बादल की तरह होता है और जब वह आपके भीतर होता है, तो आप मानो सूर्य के प्रकाश में चलते हुए भी अपने चित्त में काले बादल का अंधकार लिए हुए सदैव डरे-डरे से रहते हैं।

अतः क्या वास्तविक शिक्षा का कार्य यह नहीं है कि भय को समझने में और उससे मुक्त होने में आपकी मदद करे? थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि आप अपने छात्रावास-प्रभारी या शिक्षक को बिना कुछ बताए कहीं चले जाते हैं और वापस आने पर जब आपसे बाहर जाने का कारण पूछा जाता है तो आप बहाना बना देते हैं कि आप कुछ लोगों से मिलने गए थे जबकि आप सिनेमा देखने गए थे। इसका अर्थ यह कि आप भयभीत हैं। शायद आप यह सोच रहे होंगे कि यदि आप शिक्षक से भयभीत नहीं हों तो आप जो चाहे सो कर सकते हैं, और शिक्षक भी इसी बात से डरते हैं। परंतु भय को समझने का अर्थ यह नहीं है कि आप जो चाहे वह करें, भय को समझने के लिए इससे कहीं अधिक प्रयत्न करना ज़रूरी होता है। क्या आप जानते हैं कि शरीर की कुछ नैसर्गिक प्रतिक्रियाएं होती हैं? जब आप सांप को देखते हैं तो उछलकर दूर हट जाते हैं। यह भय नहीं है क्योंकि यह शरीर की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। खतरे को सामने देखकर शरीर प्रतिक्रिया करता है और उछल जाता है। जब आप रास्ते पर चलते हुए गहरी खाई के किनारे होते हैं तो आंखें बंद करके नहीं जाते। वह भय नहीं है। जब आप किसी खतरे को देखते हैं या तेजी से आती हुई किसी कार

को देखते हैं तो आप तत्काल मार्ग से हट जाते हैं। यह भय का सूचक नहीं है। ये सब सहज शारीरिक प्रत्युत्तर हैं जो खतरे से आपको सुरक्षित करते हैं, ऐसी प्रतिक्रियाएं भय नहीं होतीं।

जब आप किसी कार्य को करना चाहते हैं और उसे करने के लिए आपको मना किया जाता है तो वहां भय होता है। वह एक प्रकार का भय है। आप कोई सिनेमा देखना चाहते हैं या दिनभर के लिए बनारस से बाहर जाना चाहते हैं और शिक्षक कहता है : "नहीं, नियमों के अंतर्गत आपको इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती।" और आपको ये नियम अच्छे नहीं लगते, आप बाहर जाना चाहते हैं। अतः आप किसी-न-किसी बहाने से बाहर चले जाते हैं और फिर वापस आ जाते हैं। जब शिक्षक को पता चलता है कि आप बाहर गए थे तो आपको उसके लिए दंड मिलने का डर होता है। अतः जब आप यह महसूस करते हैं कि आपको दंड दिया जाने वाला है तो भय होता है। परंतु यदि शिक्षक सहजता से और शांतिपूर्वक आपसे इस पर बात करे कि आपको शहर में क्यों नहीं जाना चाहिए और यह स्पष्ट करे कि बाहर का खाना खाने से क्या नुकसान होता है, कि बाहर का खाना स्वच्छ नहीं होता या इसी तरह के अन्य खतरे भी हैं तो आप उसे समझ जाते हैं। फिर भी यदि इन सब बातों को विस्तार से समझाने के लिए शिक्षक के पास समय नहीं है तो आप स्वयं इस पर विचार करें, अपना विवेक जाग्रत करें और पता लगाएं कि आपको बाहर क्यों नहीं जाना चाहिए, तब कोई समस्या नहीं होती और आप बाहर नहीं जाते। यदि आप जाना ही चाहते हैं तो इस बारे में बात कर लें और यह पता कर लें कि ऐसा करना आपके लिए उचित है या नहीं।

मात्र यह दिखाने के लिए कि आप भय से मुक्त हैं आप जो चाहे सो करेंगे तो यह कोई बुद्धिमानी नहीं होगी। साहस भय का विपरीतार्थक नहीं है। आपको पता है कि लोग रणक्षेत्रों में बड़े साहसी हो जाते हैं। अनेक कारणों से वे शराब पीते हैं, साहस जगाने के लिए अनेकों उपाय करते हैं, परंतु वह भय से मुक्ति नहीं है।

क्या शिक्षा का काम विद्यार्थियों को हर प्रकार के भय से मुक्त कराने में सहायता देना नहीं है? इसका अर्थ यह है कि अब से आप जीवन की समस्त समस्याओं को, काम-भावना की समस्या को, मृत्यु की समस्या को, लोकमत की एवं अधिकारवादिता की समस्या को समझना आरंभ कर दें। मैं इन सारी समस्याओं पर चर्चा करने जा रहा हूं ताकि जब आप इस स्थान को छोड़ें तब भले ही संसार में अनेकों प्रकार के भय व्याप्त हों, भले ही आपकी अपनी महत्त्वाकांक्षाएं हों, अपनी कामनाएं हों, फिर भी आप उन्हें समझ लेंगे और भय से मुक्त रहेंगे, क्योंकि आप जानते हैं कि भय एक बड़ी ही खतरनाक चीज़ है। सभी लोग किसी-न-किसी वजह से भयभीत रहते हैं। अधिकांश लोग कोई भूल नहीं करना चाहते, विशेष रूप से जब वे युवा

होते हैं। इस प्रकार वे सोचते हैं कि यदि वे किसी का अनुसरण कर सकें या जो कुछ उन्हें कहा जाता है उसे ध्यान से सुनें और उसे करें तो उसे करने पर वे अंत में अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे।

हममें से अधिकांश बहुत ही रूढ़िवादी हैं। आप जानते हैं कि इस शब्द का क्या अर्थ है, 'रूढ़िवादी' होना क्या है? इसका अर्थ है पुरानी चीज़ों को पकड़े रहना, उनकी पहरेदारी करना। हममें से अधिकांश लोग सम्मानित बने रहना चाहते हैं और इसलिए हम सही चीज़ करना चाहते हैं, हम सही आचरण का अनुकरण करना चाहते हैं। यदि आप बहुत गहराई में जाएं तो आप यह देख पाएंगे कि वह भी भय की उपस्थिति का सूचक है। हम गलती क्यों न करें? हम इसका पता क्यों न लगा लें कि हमें गलती क्यों नहीं करनी है? किंतु जो भयग्रस्त होता है वह सदा सोचता है कि मुझे सही कार्य ही करना चाहिए, मुझे सम्मानित दिखाई पड़ना चाहिए, मुझे इस बात के लिए लोगों को मौका ही नहीं मिलने देना चाहिए कि मैं क्या हूं इसे वे जान पाएं। ऐसा व्यक्ति निश्चित रूप से भयग्रस्त होता है। एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति वास्तव में भयग्रस्त होता है और जो भयग्रस्त है उसमें न तो प्रेम होता है न सहानुभूति होती है। वह उस व्यक्ति की भांति होता है जो चारों ओर से दीवारों के पीछे कैद हो। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि हम अपनी युवावस्था में ही इस बात को समझ लें, हम भय को समझ लें। यह भय ही है जो मुझे आज्ञापालन के लिए बाध्य करता है किंतु यदि हम इस पर चर्चा कर सकें, परस्पर विचार-विमर्श कर सकें, आपस में बातचीत और विचार-विनिमय कर सकें, तो मैं इस चीज़ को समझ सकता हूं और जो करने के लिए मुझे कहा जाता है उसे कर सकता हूं। चूंकि मैं आपसे डरता हूं अतः जिसे मैं नहीं समझता और किसी मजबूरी या बाध्यता के कारण उसे करता हूं तो ऐसी शिक्षा क्या गलत शिक्षा नहीं है?

इसलिए मैं महसूस करता हूं कि इस तरह के स्थान पर शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों मिलकर इस समस्या को समझें यह बहुत ही महत्त्व रखता है। क्या आप जानते हैं कि सृजनशीलता का, सृजनशील होने का क्या अर्थ है? कविता करना, चित्र बनाना, किसी वृक्ष का अवलोकन करना, वृक्ष से प्रेम करना, नदी से, पक्षियों से, लोगों से, धरती से प्रेम करना एक तरह से सृजनात्मक होना ही है, यह धरती हमारी है यह भावना होना भी कुछ हद तक सृजनशीलता ही है। परंतु जब आपमें भय होता है, जब आप यह कहने लगते हैं कि यह मेरा है, मेरा देश है, मेरी जाति है, मेरा समुदाय है, मेरा दर्शन है, मेरा धर्म है तो वह भावना समाप्त हो जाती है। जब आपमें ऐसी भावना होती है तो आप सृजनशील नहीं रह जाते क्योंकि मेरा देश, मेरा, इस तरह की भावना भय की वृत्ति से ही पैदा होती है। जबकि यह धरती न आपकी है, न मेरी है—यह तो हम सभी की है और यदि हम इस तरह से सोच सकें तो हम एक बिलकुल भिन्न प्रकार की दुनिया निर्मित कर

पाएंगे—एक ऐसी दुनिया जो न तो अमेरिकी होगी, न रूसी होगी, न ही भारतीय होगी, बल्कि हम सबकी अपनी दुनिया होगी—आपकी होगी, मेरी होगी, अमीर की होगी, गरीब की भी होगी, जो सबकी होगी। परंतु कठिनाई यह है कि जब हम भयभीत होते हैं तो सृजनशील नहीं रह जाते। भयभीत व्यक्ति सत्य या ईश्वर को कभी नहीं पा सकता। हमारी सारी पूजाओं, हमारी सारी प्रतिमाओं और हमारे सारे अनुष्ठानों के पीछे भय ही होता है—यही कारण है कि आपके देवता, देवता नहीं पाषाण होते हैं।

अतः जब हम युवा हैं तब ही इसे समझ लेना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और आप इसे तब ही समझ सकते हैं जब आप यह जानें कि आप भयभीत हैं और अपने भय को ध्यान से देख सकें। परंतु इसके लिए गहरी अंतर्दृष्टि का होना आवश्यक है जिस पर फिलहाल हम कुछ नहीं कहेंगे। क्योंकि यह अति गंभीर समस्या है, जिस पर बड़े लोग चर्चा कर सकते हैं, हम शिक्षकों के साथ मिल कर इसकी चर्चा करेंगे। परंतु यह शिक्षक का कार्य है कि वह भय को समझने में शिक्षार्थियों की सहायता करे। अध्यापक को चाहिए कि वह भयों को समझने में आपकी सहायता करे—भयों का दमन करने में, उन्हें नियंत्रित करने में नहीं। ताकि जब आप इस स्थान को छोड़ कर जाएं तो आपका मन बहुत स्पष्ट तथा प्रखर हो और भय से बिलकुल विकृत न हो।

जैसा कि मैं कल बता रहा था कि पुराने लोगों ने सुंदर विश्व नहीं बनाया; वे अंधकार, भय, भ्रष्टाचार और प्रतिस्पर्धा से भरे रहे, उन्होंने कोई सुंदर विश्व निर्मित नहीं किया। जब आप लोग यहां से निकल कर बाहरी दुनिया में जाएंगे, उस समय यदि आप हर प्रकार के भय से मुक्त रहेंगे या यह समझ सकेंगे कि अपने तथा दूसरों के भयों का सामना कैसे किया जाता है, तब शायद आप पूर्णतः भिन्न संसार का निर्माण कर पाएंगे, जो साम्यवादियों या कांग्रेसियों का, या ऐसे अन्य किन्हीं लोगों का संसार नहीं होगा, अपितु वह पूर्णतः भिन्न संसार होगा। सही मायने में शिक्षा का यही कार्य है।

प्रश्न : दुख क्या है?

कृष्णमूर्ति : दस वर्ष का एक बालक पूछता है कि दुख क्या है! क्या आपको दुख के बारे में कुछ पता है? इसका महत्त्व नहीं है कि प्रश्न किसके द्वारा पूछा जा रहा है। परंतु एक छोटे से बच्चे द्वारा यह प्रश्न किया जाना कि दुख क्या है खेद की बात है, है कि नहीं?—यह अत्यंत भयानक बात है। वह दुख क्यों जाने? बूढ़े ही दुर्भाग्यवश दुख को जानते हैं। परंतु क्या आपको पता है कि दुख का अर्थ क्या होता है? जब आपकी नज़र किसी भिखारी पर पड़ती है और किसी धनी को पास से गुजरते हुए देखते हैं, जब आप मौत को देखते हैं, जलती हुई चिता को देखते हैं, जब आप किसी मृत पक्षी को देखते हैं, जब आप अपमान, दरिद्रता को, लोगों को रोते हुए,

परस्पर लड़ते-झगड़ते, गाली-गलौज करते हुए, मारपीट करते हुए देखते हैं तो दुख होता है। क्या यह सब दुख नहीं है? जब आपके माता या पिता की मृत्यु हो जाती है तब आप अकेले हो जाते हैं और दुखी हो जाते हैं। परंतु यहां पर हम मृत्यु के साथ-साथ विकसित होते हैं। मृत्यु के साथ-साथ बड़े होने की मेरी बात आप समझ रहे हैं? हम अच्छे, सुखी, खुशदिल लोग नहीं हैं। नदी की ओर ले जाए जाते किसी शव को आप देखते हैं और यदि आपके अभिभावक आपके साथ हैं तो वे कहते हैं, "उस ओर मत देखो, मृत्यु भयानक है।" इस प्रकार से दुख के एहसास की शुरुआत हो जाती है। जब आप भिखारी को देखते हैं—छोटा बच्चा भी भिखारी की ओर देखे बिना नहीं रह सकता—उसके चिथड़े कपड़े, उसकी बीमारी, उसके शरीर पर घाव देख कर आप उसके लिए बहुत दुखी हो जाते हैं जबकि आपके माता-पिता या आपसे बड़े लोग बिना कुछ समझाए आपको वहां से हटा देते हैं। समाज में ऐसे लोग होना अनर्थकारी है, दुखद है। अभिभावक ही इसके लिए उत्तरदायी हैं क्योंकि वे इन सब चीज़ों को स्पष्ट नहीं करते, वे आपकी सुरक्षा करना चाहते हैं और उस सबको आपसे छुपाते हैं। वे नहीं चाहते कि आप क्रांतिकारी बनें—इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि आप एक झक्की साम्यवादी बन जाएं—क्रांतिकारी होना इससे बिलकुल भिन्न बात है। वे आपसे यह सब स्पष्ट नहीं करते। वे भयभीत हैं और चाहते हैं कि आप सुरक्षित रहें।

दुख एक ऐसी चीज़ है जिसे समझा जाना चाहिए, आंसुओं को समझा जाना चाहिए। जब आप सुखी होते हैं तो उसे समझना ज़रा भी ज़रूरी नहीं होता। जब आप मुस्कराते हैं तो उसके लिए व्याख्या की ज़रूरत नहीं होती! पर आप देखते हैं कि दुर्भाग्य से यहां पर और अन्यत्र भी, हमारी शिक्षा-दीक्षा ऐसी होती है जिसमें हम यह नहीं जान पाते कि चिंतन कैसे किया जाता है, अवलोकन कैसे किया जाता है और इस प्रकार से हम दुख को बढ़ाते और मुसीबतों को अनेक गुना अधिक कर बैठते हैं। किंतु यदि हमारी शिक्षा के दौरान हमारे शिक्षक इन बातों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर सकें, उन पर खुलकर चर्चा कर सकें तो हम औसत स्तर के साधारण से मूढ़ माता-पिता या राजनीतिज्ञ अथवा क्लर्क नहीं बल्कि ऐसे सच्चे मानव हो सकते हैं जो सच में क्रांतिकारी हों और एक नये विश्व का निर्माण कर सकें। शायद तब हम समझ सकें, बदल सकें और दुख को मिटा सकें।

प्रश्न : सुंदर विश्व की क्या परिभाषा है?

कृष्णमूर्ति : आपको पता है जैसा कि मैंने कल कहा था, यह सभा मुख्य रूप से उन छात्रों के लिए है जो जिज्ञासु हैं, जो पता लगाना चाहते हैं, विचार-विमर्श करना चाहते हैं। यदि बड़े लोग समस्या को समझने में छात्रों की मदद करने के इच्छुक हैं, तो बेहतर यह होगा कि वे अपनी निजी

समस्याओं के बारे में प्रश्न न करें। संभवतः बच्चों की इस बारे में कोई रुचि नहीं है कि सुंदर विश्व की क्या परिभाषा है।

अच्छा, मन इस तरह के प्रश्न क्यों पूछता है? 'सुंदर विश्व की क्या परिभाषा है?' बात साफ है कि आप इसे शब्दकोश में देख सकते हैं और वहां आपको इसकी परिभाषा मिल जाएगी। हम सोचते हैं कि परिभाषा को समझ लेने पर हम इस समस्या को समझ लेंगे। इसी तरह से हमें प्रशिक्षित किया जाता है, हम सोचते हैं कि जब हमारे पास परिभाषा होती है तो हम चीज़ों को समझ जाते हैं। परंतु परिभाषा समझ नहीं होती, बल्कि इसके विपरीत यह तो सोचने का सर्वाधिक विनाशकारी तरीका है। आप सुंदर विश्व की परिभाषा क्यों जानना चाहते हैं? क्योंकि आप समस्या पर चिंतन नहीं कर पा रहे हैं, अतः आप किसी के पास जाते हैं—शंकर के, बुद्ध के, या मेरे या किसी और के पास, और कहते हैं, 'कृपया मुझे सुंदर विश्व का मतलब बताएं।' यदि आप इस पर चिंतन कर सकें, मनन कर सकें, इसकी गहराई में जा सकें, इसे समझ सकें, तो संभवतः आप इसके यथार्थ बोध को पा सकेंगे।

'सुंदर विश्व' से हम क्या अर्थ लेते हैं? इसकी तह में जाना सचमुच बहुत महत्त्व रखता है। किसी शब्द का अपना एक अर्थ होता है, होता है न? इसका कोई संदर्भ होता है। 'ईश्वर' या 'प्रेम' अथवा 'भारत' जैसे शब्द बड़ा महत्त्व रखते हैं। चूंकि आपका विचार है कि आप 'ईश्वर' में विश्वास करते हैं इसलिए 'ईश्वर' शब्द आपके लिए अर्थपूर्ण होता है, उस शब्द पर आप भावुक हो कर प्रतिक्रिया करते हैं, आप उस पर मानसिक रूप से प्रत्युत्तर देते हैं। यदि आप ईश्वर पर विश्वास नहीं रखते तो वह शब्द आपके लिए बेमानी होता है। यदि मुझे नास्तिकता या साम्यवाद का प्रशिक्षण दिया गया है जिसके फलस्वरूप मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता, तो मैं कुछ भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया करता। इसी प्रकार 'सुंदर विश्व' आपके लिए कुछ अर्थ रखता होगा, जबकि मेरे लिए हो सकता है यह एकदम बेमानी हो।

'सुंदर विश्व' से आपका क्या मतलब है? सुंदर विश्व जैसा कुछ नहीं होता। तथ्य तो यह है कि यह दुनिया एक सड़ी-गली दुनिया है, क्योंकि यहां युद्ध है, लोगों में विभाजन है—ऊंचे और नीचे लोग, प्रभुत्व वाले लोग, प्रधानमंत्री और गरीब रसोइया, बड़ा राजनीतिज्ञ और भूख से मरता आदमी, राजे-महाराजे जिनके पास सब कुछ है और दूसरे लोग जिनके पास कुछ भी नहीं है। यह एक भ्रष्ट, विकृत संसार है। हम 'सुंदर' और 'विश्व' जैसे शब्दों में उलझे हुए हैं। 'सुंदर' शब्द का क्या निहित आशय है इसे हमें समझना होगा और हमें एक ऐसे विश्व का निर्माण करना होगा जो सुंदर हो।

शब्दों के प्रवाह में बह जाना ठीक नहीं है। हमें बचपन से सदा यही सिखाया जाता है कि हम क्या सोचें, हमें यह कभी नहीं सिखाया जाता कि

हम कैसे सोचें। 'सिमैंटिक्स' नामक एक विज्ञान होता है, ग्रीक भाषा में इस शब्द का अर्थ है शब्दों के तात्पर्य का अध्ययन। अब जो नये शब्द अस्तित्व में आ रहे हैं उनके विकास के मूल में एक संपूर्ण विज्ञान है। चूंकि शब्द हमें मानसिक और साथ ही भौतिक रूप से भी प्रभावित करते हैं अतः यह महत्त्वपूर्ण है कि हम उन्हें समझें और उनसे अप्रभावित रहें। जिस क्षण 'साम्यवाद' शब्द का प्रयोग किया जाता है पूंजीवाद के पक्षधर को कंपकंपी छूटने लगती है। इसी तरह, धन-संपत्ति रखने वाले व्यक्ति को 'क्रांति' शब्द से डर लगता है। किसी गुरु के अनुयायी को यदि आप कहें, "दूसरे के अनुयायी मत बनो, अनुयायी होना नासमझी है" तो वह सिहर उठेगा और आपको वहां से भगा देगा। शब्दों से होने वाला यह सतत भय समझ के अभाव के कारण होता है। आखिरकार, शिक्षा शब्दों की और शब्दों के माध्यम से किए जाने वाले अर्थ के संप्रेषण की समझ ही तो होती है।

'सुंदर विश्व' जैसी कोई चीज़ नहीं होती। चीज़ें जैसी होती हैं, हम उन्हें उसी रूप में स्वीकार करें, न कि किसी आदर्श रूप में, विश्व कैसा होना चाहिए इस विषय में हम कोई आदर्श न रखें। सभी आदर्श—आदर्श विद्यालय, आदर्श राष्ट्र, आदर्श प्रधानाध्यापक, अहिंसा का आदर्श—बेतुके और हास्यास्पद होते हैं, वे सभी भ्रामक होते हैं। तथ्यतः वास्तविक वही है 'जो है'। यदि सही मायने में विभिन्न चीज़ों को—दरिद्रता, विभाजन, कटुता, आकांक्षा, लालच, भ्रष्टाचार, भयों आदि को— जैसी वे हैं, इन सबको मैं यथावत समझ सकूं तो मैं इन सबसे निबट सकता हूं, मैं इन्हें मिटा सकता हूं। किंतु यदि मैं कहता हूं 'मुझे यह अथवा वह होना चाहिए' तो मैं भ्रांतियों में भटकने लगता हूं। इस देश को सदियों से निरंतर जिन आदर्शों की घुट्टी पिलाई जाती रही है वे सभी भ्रम हैं। आपको अहिंसा का पाठ पढ़ा-पढ़ाकर बड़ा किया जाता है जबकि आप हिंसक हैं। अतः क्या यह उचित नहीं होगा कि अहिंसा की बातें करने की बजाय हिंसा को समझा जाए? यदि आप 'जो है' की समझ रखते हैं तो वास्तविक क्रांति होगी।

प्रश्न : क्या आप बताएंगे कि भय से छुटकारा कैसे पाएं?

कृष्णमूर्ति : आप यह जानना चाहते हैं कि भय से छुटकारा कैसे हो? क्या आप जानते हैं कि आप किस चीज़ से डरते हैं? धीरे-धीरे मेरे साथ आगे बढ़िए। भय एक ऐसी चीज़ है जिसका स्वयं का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता—किसी अन्य चीज़ से संबंध होने पर ही यह अस्तित्व में आता है। यह सांप के संबंध में हो सकता है, मेरे अभिभावक या शिक्षक क्या कहेंगे, इस बारे में हो सकता है, मृत्यु के विषय में हो सकता है। यह सदा किसी बारे में हुआ करता है। आप समझ रहे हैं न? भय स्वयं में कुछ नहीं होता, इसका अस्तित्व किसी अन्य चीज़ के संबंध में, संपर्क में, स्पर्श में हुआ

करता है। क्या आप इस बारे में जागरूक हैं, सचेत हैं कि आप किसी अन्य चीज़ के संबंध में भयभीत हैं? क्या आप अपने माता-पिता से, अपने शिक्षक से भयभीत नहीं हैं? मुझे उम्मीद है कि ऐसा नहीं है, परंतु हो सकता है आप उनसे डरते हों। क्या आप इस आशंका से भयभीत नहीं होते कि कहीं आप परीक्षा में अनुत्तीर्ण न हो जाएं? क्या आपको इस बात का डर नहीं होता कि कहीं लोग आपके बारे में अच्छी राय न रखें, वे आपको शालीन न समझें और यह न कहें कि आप बहुत महान हैं। मैं आपको यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि आपके पास कैसे-कैसे भय हैं। पर लगता है आपकी इसमें कोई दिलचस्पी ही नहीं रही है।

इसलिए सबसे पहले आपको यही समझना होगा कि आप डरते किससे हैं। मैं बहुत धीरे-धीरे इसे स्पष्ट करूंगा। शायद तब आप यह जान सकेंगे, मन यह जान पाएगा कि वह भयग्रस्त क्यों है। क्या भय मन से पृथक कोई वस्तु है? क्या मन स्वयं ही भय की उत्पत्ति नहीं करता—क्योंकि या तो वह अतीत को स्मरण रखता है अथवा अपने को भविष्य में प्रक्षेपित किया करता है। अच्छा होगा आप अपने शिक्षक से तब तक पूछते ही रहें जब तक वे आपसे ये सब चीज़ें स्पष्ट न करें। आप प्रतिदिन एक घंटे का समय गणित या भूगोल पढ़ने में बिताते हैं, लेकिन जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर चर्चा करने के लिए आप दो मिनट भी नहीं देते। केवल गणित की ही चर्चा करते रहने या पाठ्य पुस्तकें पढ़ने की बजाय क्या आपको अपने शिक्षकों से इस पर बातचीत करने के लिए अधिक समय नहीं देना चाहिए कि भयमुक्त कैसे हों? 'भय से कैसे छुटकारा हो'? यह प्रश्न आपने पूछा तो अवश्य है पर आपका मन इसे समझने के लिए पर्याप्त सक्षम नहीं है। शायद बड़े लोग इसे समझ पाएंगे, अतः बाद में हम शिक्षकों से इसकी चर्चा करने वाले हैं।

किसी भी प्रकार के भय पर आधारित विद्यालय भ्रष्ट विद्यालय होता है, उसका न होना ही बेहतर है। इस समस्या को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षकों और विद्यार्थियों में पर्याप्त विवेक शक्ति हो। भय विकारग्रस्त बना देता है तथा भय से मुक्त होने के लिए प्रत्येक को यह समझना होगा कि मन भय को किस प्रकार निर्मित करता है। यदि मन स्वयं ही भय को निर्मित न करे तो भय नामक कोई चीज़ होती ही नहीं। मन कहीं आश्रय चाहता है, मन सुरक्षा चाहता है, मन अनेकों प्रकार की सुरक्षात्मक महत्त्वाकांक्षाएं रखता है, और जब तक यह सब है तब तक भय भी रहेगा। महत्त्वाकांक्षा को समझना, वर्चस्व भावना को समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, यह दोनों ही इस विध्वंसकारी भय के ही मूर्त रूप हैं।

एक श्रोता : जैसा आपने कहा, यह सत्य है कि भय मन को विकारग्रस्त कर देता है विशेष रूप से वृद्धों के साथ ऐसा है। और विशेष रूप से उनके ही बारे में, यह भी सत्य है कि विकारग्रस्त मन ही भय की

उत्पत्ति करते हैं। लगता है समस्या यह है कि इस प्रकार के मनों का सफाया कैसे हो?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने प्रश्न को समझ लिया है? यह सज्जन कह रहे हैं, 'क्या हमें उन बूढ़े मनों का सफाया नहीं कर देना चाहिए जो भय से विकारग्रस्त हो चुके हैं?' इसका क्या मतलब है? क्या बूढ़े लोगों को खत्म कर दिया जाए, उन्हें यातना शिविर में डाल दिया जाए? सभी के मन चाहे वे बूढ़े हों या युवा, या तो बाहर से थोपे गए अथवा अपने ही द्वारा पैदा किए गए भयों के प्रभाव से विकारग्रस्त हो जाया करते हैं। यहां किसी से छुटकारा पाने का प्रश्न नहीं है। यही तो सारे विश्व में किया जा रहा है—यदि मैं आपसे सहमत नहीं हूं तो आप मुझे मिटा डालते हैं, आप मुझे यातना शिविर में डाल देते हैं। इससे समस्या हल नहीं होगी। समस्या का निराकरण सही ढंग की शिक्षा से ही हो सकेगा जिसमें मुझे भय की समस्या को—भय कैसे अस्तित्व ग्रहण करता है, कैसे यह अतीत से उभरकर वर्तमान में निरंतर निर्मित किया जाता है और भविष्य में प्रक्षेपित किया जाता है—इस सब को समझने में मदद की जाती है।

इस पर अवश्य ही विचार करें, यह आपकी सारी परीक्षाओं से, आपकी पाठ्य पुस्तकों से, आपके नाम के साथ लगी बी. ए. या एम. ए. की डिग्रियों से भी बढ़कर है, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आपकी डिग्रियां आपको कोई काम भले ही दिला दें पर उनका कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न यह नहीं है कि विकारयुक्त मन वाले बूढ़ों या युवजनों का सफाया कैसे करें। इस समय एक ऐसी आंतरिक क्रांति की, ऐसे मन की आवश्यकता है, जो इन समस्याओं पर अलग ढंग से सोच सके और एक नये विश्व का निर्माण करने में सक्षम हो।

5 जनवरी 1954

तुलना

आपको याद होगा कि कल हम लोग भय पर चर्चा कर रहे थे। हममें से अधिकांश लोग किसी-न-किसी चीज़ से भयभीत हैं और यदि हम भय को मिटा सकें, उससे छुटकारा पा सकें तो शायद हम मिलकर भिन्न प्रकार के विश्व का निर्माण कर सकते हैं। मुझे लगता है कि यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है—विशेष रूप से जब हम युवा हैं। चूंकि जैसे-जैसे हम बड़े होने लगते हैं, भय से छुटकारा पाना हमारे लिए और भी अधिक मुश्किल होने लगता है क्योंकि परिस्थितियां तब इतनी कठिन हो जाती हैं कि हममें से अधिकांश भय के आघातों को झेलने के काबिल ही नहीं रह जाते। मैं वास्तव में आपको इस बारे में कुछ बताना चाहता हूं और मुझे लगता है कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भय मन को विकृत कर देता है और जब हममें भय होता है तो प्रेम नहीं होता।

इस संसार में प्रेम कहीं नहीं है। हम प्रेम की चर्चा तो करते हैं, भाईचारे की बात तो करते हैं—उदारता की, जीवन के एक होने की बातें तो ज़रूर करते हैं पर वे सभी बातें कोरा ढकोसला होती हैं, उनमें कोई गहराई नहीं होती, वे लोगों को धोखा देने के लिए, बेवकूफ बनाने के लिए किया जाने वाला शाब्दिक छल भर होता है। वस्तुतः प्रेम कहीं नहीं होता। जब आप अपने आसपास घोर गरीबी और कष्टों को देखते हैं, अत्यंत शक्तिशाली लोगों को और गरीब लोगों को देखते हैं तो वहां प्रेम हो भी कैसे सकता है?

मेरी समझ से, प्रेम के न होने की एक वजह तो भय है। यदि आप अपने शिक्षक से, अपने अभिभावकों से, लोग क्या कहते हैं आदि बातों से भयग्रस्त हैं तो आप प्रेम कैसे कर सकते हैं? किंतु प्रेम के अभाव में जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, यह अत्यंत शुष्क, नीरस और बोझिल हो जाता है; प्रेमशून्य होने पर आप न तो वस्तुतः फूलों को, न वृक्षों को, न पक्षियों को और न जल पर पड़ रहे सूरज के प्रकाश को देख पाते हैं, आप वास्तव में जी ही नहीं रहे होते, जीवन का आनंद नहीं उठा रहे होते। 'आनंद उठाने' से मेरा आशय यह नहीं है कि आप सिनेमा देखने जाएं या आपके पास एक अच्छा-सा रोज़गार हो या कार हो—ये सब तो बाहरी बातें हैं। जीवन का सच्चा आंतरिक आनंद, आंतरिक समृद्धि की भावना, भौतिक धरातल पर आप चाहे निर्धन हों या संपन्न हों, इस भावना का हृदय में होना कि यह धरती हमारी अपनी है, इसे हम और भी सुंदर बनाएं, आपसी संबंधों को भिन्न आयाम तक ले जाने की तीव्र अभिलाषा का होना —यह सब महत्त्वपूर्ण है। परंतु यदि आपमें भय है तो आपमें ये सारी बातें नहीं हो सकतीं। यह तब ही हो सकता है जब आपके हृदय में प्रेम हो। प्रेम ऐसा कुछ नहीं है जिसे आप प्रयत्न से संवर्धित कर सकें, आप इसका

अभ्यास नहीं कर सकते। भले ही आप कहते रहें 'मुझे प्रेम करना चाहिए, मुझे दयालु होना चाहिए, मुझे नम्र होना चाहिए'। यह सब करने से प्रेम उत्पन्न नहीं होता है, यह तो तब आता है जब भय नहीं रहता। कृपया इसे बहुत सावधानी से, ध्यानपूर्वक सुनें; क्योंकि छोटी सी उम्र में ही यदि हम इसे समझ सकें और इसकी अनुभूति पा सकें तो हमें कोई भी चीज़ कभी नष्ट नहीं कर सकती। हो सकता है कि आप निर्धन हों, आपमें सामर्थ्य न हो, आप अच्छे अथवा सुंदर न दिखाई देते हों, पर जो बात जीवन को वैभवशाली बनाती है, सच में समृद्ध बनाती है वह है प्रेम की यह गुणवत्ता जिसमें भय का लेश भी नहीं है।

अतः इस प्रकार के शैक्षणिक स्थान पर केवल शिक्षकों की ही नहीं, बल्कि आपकी और फाउंडेशन के सभी सदस्यों की भी पहली चिंता यही होनी चाहिए कि भय के वास्तविक कारणों का उन्मूलन कैसे किया जाए। जब तक आप यहां हैं तब तक यह ज़रूरी है कि आपमें से प्रत्येक को भय के कारणों के बारे में उसी तरह स्पष्टतापूर्वक समझाया जाय जिस तरह से गणित, भूगोल या इतिहास आदि आपको समझाया जाता है। भले ही शिक्षक भयग्रस्त हों या फाउंडेशन के सदस्य भय से मुक्त न हों, परंतु आपके लिए यही महत्त्वपूर्ण है कि ये सारी बातें आपको स्पष्टतः बतलाई जाएं ताकि आप एक नये विश्व का, नयी शिक्षा का सृजन कर पाएं।

मुझे ऐसा लगता है कि तुलना भय के कारणों में से एक है। क्या आप जानते हैं कि 'तुलना' क्या है? किसी दूसरे से आपकी तुलना किया जाना, किसी चतुर बालक से आप की तुलना किया जाना, गांधी जी, बुद्ध या ईसा से आपकी तुलना किया जाना—और यदि आप कम्युनिस्ट हैं तो आपकी तुलना बुद्ध अथवा ईसा से नहीं बल्कि स्तालिन या लेनिन से की जा सकती है—किसी भी दूसरे से आपकी तुलना किया जाना भय की शुरुआत है। मैं आपसे इसे स्पष्ट करूंगा, ऐसा क्यों है यह आपको दिखाऊंगा, हम इस विषय में चर्चा करेंगे और तब आप देख पाएंगे कि भयरहित होना कितना महत्त्वपूर्ण है। हमारा सारा समाज तुलना पर आधारित है। हमें लगता है कि विकास करने के लिए तुलना करना आवश्यक है। मैं अपनी तुलना किसी दूसरे राजनीतिज्ञ से करता हूं और कहता हूं, 'अच्छा ठीक है, मैं उसे पीछे छोड़ दूंगा, मुझे उससे बेहतर बनना होगा।' जब कोई शिक्षक आपकी तुलना किसी अन्य बालक से करता है जो शायद आपसे अधिक चतुर है तो आप क्या महसूस करते हैं? क्या आपने गौर किया है कि जब आपकी तुलना किसी और से की जाती है तो आपको कैसा लगता है? शिक्षक जब आपसे कहता है, 'उस लड़के की तरह चतुर बनो' तो आप क्या अनुभव करते हैं? उस जैसा चतुर बनने के लिए, उसके जैसा मेहनती बनने के लिए, किसी अन्य लड़के या लड़की की तरह अध्ययनशील बनने के लिए वह आपको श्रेणी प्रदान करता है, आपको अंक देता है और इस तरह आप

संघर्ष जारी रखते हैं, प्रतिस्पर्धा करते हैं, उस दूसरे लड़के से ईर्ष्या करने लगते हैं। अतः तुलना ईर्ष्या को जन्म देती है, द्वेष की भावना जगाती है और द्वेष ही भय की शुरुआत है। जब आपकी तुलना किसी दूसरे लड़के से की जाती है तो स्वतंत्र बालक या बालिका के रूप में आपकी विशिष्टता महत्त्वहीन हो जाती है और वह दूसरा लड़का महत्त्वपूर्ण हो जाता है। है न? एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में आपकी क्षमताएं, आपकी प्रवृत्तियां, आपकी दिक्कतें, आपकी मुश्किलें, और आप स्वयं जो कुछ हैं महत्त्वपूर्ण नहीं होते बल्कि कोई दूसरा महत्त्वपूर्ण हो जाता है। और तब आप, अर्थात एक व्यक्ति-विशेष, उपेक्षित हो जाता है और आप किसी अन्य के बराबर होने के लिए संघर्ष करने लगते हैं। इस संघर्ष से ही ईर्ष्या और भय पैदा होते हैं। जब शिक्षक कक्षा में किसी दूसरे से आपकी तुलना करता है, आपको उससे भिन्न, कम या अधिक अंक देता है, भिन्न श्रेणी प्रदान करता है तो ध्यानपूर्वक स्वयं का निरीक्षण करें, इस प्रकार से आपको नष्ट किया जाता है, आपकी प्रतिभाएं, आपकी चेतना भीतर तक कुंठित हो जाती है। आप 'आत्मा' और 'स्वतंत्रता' एवं इस प्रकार की दूसरी तमाम बातें सुनते रहते हैं, पर वे बस शब्द-भर होते हैं क्योंकि जब भी आपकी किसी अन्य से तुलना की जाती है आपको खत्म किया जा रहा होता है। हो सकता है आप मंदबुद्धि हों या नासमझ हों, लेकिन तब भी आप उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना वह दूसरा लड़का या दूसरी लड़की जिसे आपके शिक्षक या माता-पिता मेधावी समझते हैं।

इसलिए प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार के शिक्षा संस्थान को, ऐसे विद्यालय को तुलना से पूरी तरह मुक्त नहीं कर देना चाहिए? क्योंकि अभी आप ही महत्त्वपूर्ण हैं न कि कोई अन्य। उस स्थिति में आपके शिक्षक के लिए यह ज़रूरी हो जाएगा कि वह प्रत्येक के प्रति, व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे। मुश्किल यह है कि इस सब के बारे में अभिभावकों की कोई रुचि नहीं होती, वे बस इतना ही चाहते हैं कि आप परीक्षा में पास हो जाएं, रोजगार पा लें। उनकी दिलचस्पी बस यहीं तक होती है। इसलिए वे क्या करते हैं? वे आपकी तुलना घर के किसी अन्य व्यक्ति से, आपके बड़े भाई से या भतीजे या भतीजी से करते हैं और आपसे कहते हैं, 'उसकी तरह होशियार बनो।' यह प्रेम नहीं है। जहां तुलना है वहां प्रेम नहीं होता। आप जानते हैं, जहां कई भाई-बहन होते हैं वहां उनकी माता, यदि सचमुच उसे अपने बच्चों से प्रेम है, उनकी आपस में तुलना नहीं करती। उनमें से प्रत्येक समान रूप से महत्त्वपूर्ण होता है। ऐसा होता है न? जब तक मां बिलकुल ही मूर्ख, निष्ठुर और नासमझ न हो तब तक वह उनमें से किसी को चुनकर यह नहीं कहेगी कि यह मुझे प्रिय है और तुम सभी को इसके जैसा होना होगा।

सच्ची मां, जिसके हृदय में वात्सल्य होता है, कभी तुलना नहीं करती। उसके लिए अपंग या मूर्ख बच्चे भी चतुर बच्चे की तरह महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसी तरह, यहां पर भी हमें कोई आदर्श निश्चित नहीं करना है जिसकी प्राप्ति में हमें लग जाना हो, हमें तो इस सारी प्रतिस्पर्धात्मक तुलना को पूरी तरह मिटाना है।

शिक्षक को प्रत्येक बालक का अध्ययन करना होगा और यह पता लगाना होगा कि वह कैसी प्रगति कर रहा है, वह किस ढंग से पढ़-लिख रहा है। शायद प्रगति शब्द का प्रयोग आप न ही करें तो अच्छा। कठिनाई यह है कि प्रत्येक बालक और प्रत्येक बालिका को किस प्रकार से मदद की जाए जिससे वह अध्ययनशील हो सके, सीख सके। वर्तमान में हम तुलना के द्वारा, प्रतिस्पर्धा के द्वारा, अंक और श्रेणी पाते हुए सीखते हैं, हमें इस प्रकार बाध्य किया जाता है, ऐसा ही है न? यदि कक्षा में आप सुस्त हैं तो क्या होता है? आपकी ओर संकेत कर आपको सुस्त कहा जाता है जबकि किसी अन्य को फुर्तीला कहा जाता है। शिक्षक कहता है, "आप उस जैसे क्यों नहीं हो? और आपको उस अन्य बालक या बालिका से कम अंक दिए जाते हैं, अतः और अधिक संघर्ष करते हुए, निरंतर संघर्ष में लगे रहकर आप गणित आदि सीखते हैं और इसका परिणाम क्या होता है? आपका मस्तिष्क, आपका अंतर्मन लगातार दवाब में रहता है, यह दवाब आपके चित्त को निरंतर तोड़ता-मरोड़ता रहता है क्योंकि गणित में आपकी बिलकुल रुचि नहीं है। पर हो सकता है कि आपकी रुचि किसी दूसरी चीज़ में हो जिसके माध्यम से आप गणित सीखना शुरू कर दें।

अतः भय का उन्मूलन करना अत्यधिक कठिन है, इसे तो बुनियाद से ही, बिलकुल प्रारंभ से ही, बचपन से ही जब आप किंडरगार्टेन में होते हैं तभी, यथासंभव छोटी उम्र में ही कर दिया जाना चाहिए—आप इस स्थान को छोड़ें तब तक अवश्य ही कर दिया जाना चाहिए। यह हमारा कार्य है, यह कोई 'आदर्श' नहीं है। इसे तो हर रोज़ किया जाना है और जिस तरह से हम इस समय यह कार्य कर रहे हैं उसी तरह से किया जाना है क्योंकि इस तथाकथित सभ्य संसार में आप देखते ही हैं कि प्रतिस्पर्धा हमें क्रूरता की दिशा में ले जा रही है। क्या आप उस शब्द का आशय समझते हैं? इसका अर्थ है बर्बरता, दूसरे की अवहेलना, दूसरे की उपेक्षा करना। चूंकि आप महत्त्वाकांक्षी हैं, प्रतिस्पर्धा की भावना से भरे हैं, आक्रामक हैं, इसलिए अधिक से अधिक पाना चाहते हैं, लेकिन आपकी ही तरह दूसरा मनुष्य भी यही सोचता है कि अधिक पाने का अधिकार उसे भी है और इसीलिए वह भी संघर्ष करने लगता है। इस नींव पर हमारे समाज का ढांचा बना है—ईर्ष्या पर, द्वेष पर, महत्त्वाकांक्षा पर—फिर यह सब भले ही राष्ट्र के नाम पर, लोगों के नाम पर और ऐसी तमाम बातों के नाम पर क्यों न हो—पर उसका केंद्र आप ही हैं।

यह प्रतिद्वंद्विता अंततः आपको युद्ध की ओर ले जाती है, लोगों के विनाश की ओर, और बड़े क्लेशों की ओर ले जाती है। यह देखने के बाद कि यही सारी दुनिया में हो रहा है, क्या यह उचित नहीं होगा कि हममें से कुछ लोग जो इस प्रकार की शिक्षा में रुचि रखते हैं, मिलकर बैठें और अध्यापन का, जीने का, शिक्षा का ऐसा तरीका खोज निकालें जिसमें कोई तुलना न हो, ऐसी कोई बात न हो कि आपसे ज़्यादा कोई दूसरा महत्त्वपूर्ण है। आप भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना कि कोई अन्य, परंतु शिक्षक अभी तक यह नहीं पता कर सका है कि आपकी रुचि को वह कैसे जगाए। और यदि शिक्षक किसी न किसी तरीके से आपकी रुचि को जगा पाता है तो आप भी औरों के समान ही होंगे।

इसलिए, मुझे यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है कि अभी जब आप छोटे ही हैं, तुलना की इस गतिविधि को भली-भांति समझ लें। हम समझते हैं कि तुलना होने पर हम सीखते हैं, पर वास्तव में तुलना होने पर हम कतई नहीं सीख सकते। सच्चा शोधकर्ता, एक वास्तविक सृजनशील मनुष्य तुलना नहीं करता, वह बस क्रियाशील होता है, जीता है, वह ऐसा नहीं कहता कि मुझे एडीसन या राम जैसा श्रेष्ठ होना है; वह कार्य करता है और जीता है।

जब आप कोई कविता लिख रहे हों, उस समय यदि आप अपने कार्य की तुलना किसी अन्य के कार्य से करें तो क्या होता है? यदि आप अपनी तुलना कीट्स, शेली या किसी दूसरे महान कवि से करते हैं तो आप कविता लिख ही नहीं पाते। आप केवल इसलिए लिखते हैं क्योंकि आपके पास कहने के लिए कुछ है। चाहे आपकी अभिव्यक्ति समृद्ध न हो, उसमें शायद छंद, लय आदि का ध्यान न रखा गया हो, और हो सकता है आपके पास खूब सारे शब्द न हों, वे सरल और प्रवाहपूर्ण न हों, पर आपके पास कहने के लिए कुछ अवश्य होता है। आप जो कुछ कहते हैं वह भले ही एकदम बेतुका हो, परंतु आपके लिए वह उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना कि कीट्स या शेली या शेक्सपीयर का लिखा हुआ। पर यदि आप तुलना करेंगे तो लिख ही नहीं सकेंगे।

क्या आपने कभी चित्रकारी की है? क्या आप कभी चित्र बनाते हैं? जब आप किसी वृक्ष का चित्र बनाते हैं तो वृक्ष आपसे कुछ कह रहा होता है। वृक्ष अपना अर्थ आपके सामने प्रकट करता है। इसका सौंदर्य, इसकी खामोशी, इसकी चंचलता, इसके रंग, इसकी गहनता, आकृति, किसी पत्ते के खड़कने की आवाज, ये सभी आपसे कुछ कह रहे होते हैं—और आप उसे चित्रित करते हैं; आप किसी पत्ते की नकल ही नहीं बनाते, बल्कि आप तो उस वृक्ष की भावना को ही अभिव्यक्त करते हैं। पर यह करते समय यदि आपका मन इसकी तुलना महान चित्रकारों से करने लगे, तो आपका चित्र बनाना रुक जाता है कि चलता रहता है? मुझे लगता है कि आपने यह

सब नहीं किया है। यह तो बड़े अफसोस की बात है! आपका जीवन कैसे इस सब से वंचित है! शायद गणित या विज्ञान विषय में आप बहुत अच्छे हों—हालांकि वे भी आवश्यक हैं, परंतु यदि आप बाकी सब से वंचित रह जाते हैं तो गणित आदि और कुछ परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लेना कोई मायने नहीं रखता। इस तरह तो आप मंद, सुस्त बन जाएंगे।

महत्त्व की बात यह समझना है कि भय क्या है और भय को मिटाया कैसे जाए। भय के कारणों में से एक है ईर्ष्या, और ईर्ष्या है तुलना। तुलना की, ईर्ष्या की बुनियाद पर बना समाज अपने लिए और दूसरों के लिए भी क्लेश ही पैदा करेगा। आपको पता है, एक संतुष्ट व्यक्ति वह नहीं है जिसने अपनी चाही हुई चीज़ को पा लिया है बल्कि संतुष्ट वह है जो सभी बातों को यथावत देख-समझ लेता है और उनसे पार निकल जाता है। पर वस्तुओं को वे जैसी हैं उसी रूप में समझने के लिए यह ज़रूरी है कि आपका मन निरंतर तुलना में, आंकने में, माप-तोल में न उलझा रहे। ऐसा मन चीज़ों को कभी नहीं समझ सकता। इसे सरल ढंग से ऐसे कह सकते हैं कि यदि आपकी तुलना किसी अन्य से की जाती है तो आपका कोई महत्त्व नहीं रहता, या रहता है? उस तुलना में प्रेम नहीं है—कि है? हमारा समाज, हमारे विद्यालय, हमारी शिक्षा, हमारे बड़े-बड़े लोग—उनमें प्रेम नहीं है। इसलिए, हमारा सारा समाज, हमारी सारी संस्कृति टूट कर बिखरती जा रही है, सब कुछ पतन की ओर जा रहा है। इसलिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि इस जगह पर, यहां राजघाट में शिक्षक, फाउंडेशन के सदस्यगण और विद्यार्थी इस नयी भावना का सृजन करें।

प्रश्न : शालीन व्यवहार क्या है?

कृष्णमूर्ति : आपके प्रश्न से पहले मैं जो कह रहा था क्या उसे आपने ध्यान से सुना या आप अपने प्रश्न में इतना डूबे थे कि मैं जो कह रहा था उसे सुन ही नहीं पाए?

आप यह जानना चाहते हैं कि शालीन व्यवहार क्या है। शालीन व्यवहार आदर से आता है। यदि मैं आपका आदर करता हूं तो मैं सहृदय हूं, सौम्य हूं। आदर और शालीनता साथ-साथ हुआ करते हैं, होते हैं न?—क्योंकि शालीनता आचरण का ही एक रूप है, और आचरण व्यवहार ही है तथा व्यवहार कर्म है। आशय यह है कि जब कोई बालक या बालिका या कोई बड़ा व्यक्ति आता है तो मैं उठकर खड़ा होता हूं—इसलिए नहीं कि वह वृद्ध व्यक्ति है, इसलिए भी नहीं कि वह राज्यपाल आदि है, और न इसलिए कि मुझे आपसे कुछ प्राप्त होने की आशा है—बल्कि ऐसा इसलिए करता हूं कि लोगों के प्रति मेरे मन में आदर की भावना है और वे गरीब हैं या संपन्न इससे मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता। शालीनता आचरण का, व्यवहार का ही ढंग होता है और शालीन होना ज़रूरी है, अच्छे ढंग से व्यवहार करना, नम्रता से पेश आना, ऊपर से ओढ़ी हुई अर्थात सतही नम्रता नहीं,

बल्कि सचमुच दूसरों के प्रति सद्‌भावना रखते हुए व्यवहार करना आवश्यक है। अन्य लोगों के प्रति मन में सद्‌भावना होने पर आप उनके प्रति आदरपूर्ण होते हैं, आप अच्छे ढंग से व्यवहार करते हैं, आप शांति से बातें करते हैं, आप दूसरों को महत्त्व देते हैं। क्या यह आवश्यक नहीं है? ऐसा किया जाना आवश्यक है क्योंकि जब किसी स्थान पर बहुत सारे लोग रह रहे हों और उनमें से सभी बिना सोचे-विचारे व्यवहार करने लगें तो सारी सामाजिक व्यवस्था अराजकतापूर्ण हो जाएगी। इसलिए जब शालीन व्यवहार मन में स्थित गहरी आदर भावना से उत्पन्न होकर आचरण का रूप लेता है, अपने भीतर की समझ तथा प्रेम से प्रकट होता है तो उसमें वास्तविक अर्थ होता है, और ऐसा व्यवहार इस धरती पर प्रकट सौंदर्य ही है।

दुर्भाग्यवश हम सतही ढंग का आचरण सीख लेते हैं। इस बात पर गौर करें कि आप अपने नौकर से किस प्रकार बोलते हैं और प्रधानाध्यापक से किस प्रकार से बात करते हैं। एक से आप अत्यंत आदरपूर्वक बोलते हैं; जिसके बारे में आपको विश्वास होता है कि आप उससे कुछ प्राप्त कर सकते हैं उसके प्रति आप अत्यंत सम्मान दिखाते हैं, उसके पैरों तक झुक जाते हैं। किंतु एक कुली या भिखारी के प्रति आप अवहेलनापूर्ण होते हैं, आप उसकी ओर से उदासीन होते हैं। परंतु यदि आपमें वास्तव में सम्मान की भावना है तो आप गरीब स्त्री या पुरुष का तथा संपन्न व्यक्ति का एक जैसा आदर करेंगे। यदि आप वस्तुतः आंतरिक रूप से समृद्ध हैं तो आपमें प्रीति होगी, दूसरों के प्रति उदारता होगी और इस बात का आपके लिए कोई महत्त्व नहीं होगा कि वह कुली है या राज्यपाल है।

क्या आपने कभी फूल को सूंघकर देखा है? फूल यह नहीं देखता कि पास से गुजरने वाला मनुष्य धनवान है या निर्धन है। उसके पास सुगंध होती है, सौंदर्य होता है और वह उसे बिखेरता है, उसे इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि आप एक बालक हैं कि राज्यपाल हैं या खाना बनाने वाले रसोइया हैं। उसके लिए फूल होना ही पर्याप्त होता है और इसमें ही उसकी सारी सुंदरता और सुगंध है।

यदि हममें आंतरिक सौंदर्य की, आंतरिक आदर की, आंतरिक प्रीति की इस तरह की समझ है, संवेदनशील होने की आंतरिक भावना है, तो बिना किसी बाध्यता के, हम सुंदर, शोभनीय और प्रसन्न आचरण करने लगते हैं। पर उसके अभाव में हम एकदम उथले होते हैं, शालीन व्यवहार तब पहने हुए उस कोट की तरह होता है, जो लगता तो बढ़िया है, पर भीतर तो अभी भी खोखलापन, खालीपन बना ही रहता है।

प्रश्न : वास्तविक प्रेम क्या है?

कृष्णमूर्ति : फिर वही बात। हम कोई परिभाषा चाहते हैं, शब्द चाहते हैं। जब तक आप भयग्रस्त हैं तब तक प्रेम कैसे हो सकता है? आप देख रहे हैं कि हम कितनी आसानी से शब्दों से संतुष्ट हो जाया करते हैं। यदि मैं आपको बतला भी दूं कि वास्तविक प्रेम क्या है तो इसका आपके लिए कोई अर्थ नहीं होगा। क्या अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि वास्तविक प्रेम क्या है इसका पता लगाने के बजाय हम इसका पता लगाएं कि हम प्रेम करते भी हैं या नहीं? क्या हमें किसी फूल के प्रति, किसी पिल्ले के प्रति, अपने पति, पत्नी या बच्चे के प्रति, प्रेम का एहसास है? क्या हमें इस धरती से प्रेम है? इसे जाने बिना ही हम सच्चे प्रेम की बात करने लगते हैं। जिस प्रेम के बारे में हम इस प्रकार से बातें करते हैं वह झूठ भी हो सकता है, वह प्रेम अवास्तविक है, एक भ्रांति है।

जब तक मुझमें भय है तब तक मैं प्रेम कैसे कर सकता हूं? सच में भय से मुक्त हो पाना सर्वाधिक कठिन कार्य है। यह सरल नहीं है। भय की संपूर्ण प्रक्रिया को समझे बिना, भय के सारे निहित तत्त्वों को समझे बिना —केवल चेतन स्तर के ही नहीं बल्कि बहुत गहराई में दबे सूक्ष्मतर भयों को—उस सबको समझे बिना, यह पूछने से कुछ नहीं होगा कि वास्तविक प्रेम क्या है। यह तो आप किसी शब्दकोश में भी देख सकते हैं और जान सकते हैं कि 'वास्तविक' का क्या मतलब है और 'प्रेम' का क्या मतलब है। देखिए कठिनाई यह है कि हमें हमेशा इसी बात की शिक्षा दी गई है कि हम क्या सोचें परंतु हमें मालूम नहीं कि हम किस प्रकार सोचें और सबसे मुश्किल मसला है 'क्या सोचा जाना चाहिए' से मुक्त होकर 'किस प्रकार से सोचा जाता है' में प्रवेश करना। 'क्या सोचा जाना चाहिए' से छूटने के लिए हमें यह जानना होगा, इस बारे में सचेत होना होगा, इस बात के प्रति बोधयुक्त होना होगा कि हमारी शिक्षा-दीक्षा, हमारा पालन-पोषण 'क्या सोचा जाना चाहिए' के माध्यम से हुआ है। आप भगवद्गीता या शेक्सपीयर को या बुद्ध को अथवा किसी अन्य शिक्षक को, किसी क्रांतिकारी नेता को पढ़ते हैं और जान लेते हैं कि क्या सोचा जाना चाहिए। वे आपको ठीक यही बताते हैं कि 'क्या सोचा जाना चाहिए' और आप उसी ढांचे के अनुसार सोचने लगते हैं। यह तो सोच-विचार नहीं है, यह तो किसी यंत्र द्वारा की जाने वाली पुनरावृत्ति भर है, किसी ग्रामोफोन के बार-बार बजने की तरह है। इस यंत्रवत प्रक्रिया को समझ लेना और इसे थाम देना ही 'किस प्रकार से सोचा जाना चाहिए' की शुरुआत है।

प्रश्न : क्या किसी चीज़ का अनुकरण करना उचित है?

कृष्णमूर्ति : आइए, इस बारे में हम धीरे-धीरे विचार करें। जब मैं अंग्रेजी का प्रयोग करता हूं तो मैं अंग्रेजी की नकल करता हूं, है न? जब आप हिंदी बोलते हैं तो आप शब्दों की नकल करते हैं, आप शब्दों को सीख रहे होते हैं, आप शब्दों को दोहरा रहे होते हैं और इस प्रकार यह एक

प्रकार का अनुकरण है। जब मैं यह कुर्ता, यह पाजामा पहनता हूं तो यह भी एक खास तरह का अनुकरण ही होता है। जब मैं लिखता हूं, मैं किसी गीत को दोहरा रहा होता हूं, पढ़ रहा होता हूं, जब मैं गणित सीख रहा होता हूं तो इस सब में अनुकरण का भी कुछ-न-कुछ स्थान होता ही है, होता है न? अतएव उस स्तर पर दोहराना, दूसरे का अनुकरण करना तो स्वाभाविक ही है। परंतु जीवन के एक अन्य स्तर पर केवल अनुकरण करने भर से काम नहीं चल सकता। इससे जुड़े अनेक मुद्दे हैं, अनेक समस्याएं हैं। हम धीरे-धीरे उन सब पर विचार करेंगे।

हम परंपरा की नकल करते हैं, परंपरा एक प्रकार का अनुकरण ही है। जब आप पूजा करते हैं, जनेऊ धारण करते हैं तो वह भी अनुकरण करना ही है। जब आप पूजा आदि का या इस तरह का कोई अन्य कार्य करते हैं तो क्या अपने आप से पूछते हैं, 'मैं इसे किसलिए करूं?' आप इस बारे में कभी प्रश्न नहीं करते। आप इसे केवल इसलिए स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि माता-पिता भी इसे करते हैं, समाज इसे करता है, और बस ऐसा ही करते-करते आप अनुकरण करने वाली मशीन भर बन कर रह जाते हैं। आप कभी यह नहीं पूछते, 'मैं पूजा आदि क्यों करूं? इसे करने का क्या प्रयोजन है? क्या इसका कोई मतलब है?' यदि इसे करने का कोई अर्थ है तो आपको इसका पता लगाना होगा, ऐसा नहीं कि कोई अन्य आपको इस बारे में बतलाए कि इसका यह मतलब है, यह अर्थ है। आपको ही इसका पता लगाना पड़ेगा और इसका पता लगाने के लिए आपको पूर्वाग्रहरहित होना होगा, आपको पक्ष-विपक्ष के पार जाना होगा। इसके लिए बहुत अधिक विवेक की ज़रूरत है, और साथ ही निडरता की।

बड़ी उम्र के अधिकांश लोगों के पास कोई गुरु होता है या कोई सहारा देने वाला। चूंकि उनका कोई गुरु है क्या इसलिए आपके लिए भी एक गुरु होना आवश्यक है? कहने का आशय यह है कि आपको इसका पता लगाना चाहिए कि उन्हें गुरु की आवश्यकता क्यों पड़ती है। वे इसलिए गुरु बनाते हैं क्योंकि वे भय से ग्रस्त हैं, वे सुरक्षित रूप से स्वर्ग पहुंचना चाहते हैं। न तो उन्हें पता है और न आपको पता है कि स्वर्ग होता भी है कि नहीं। उनका स्वर्ग उनकी कल्पना के अनुसार कल्पित होता है। अतः आपको अत्यधिक सतर्कतापूर्वक, न कि संदेहपूर्वक, इसका पता लगाना होगा कि वास्तविकता क्या है, क्या सही है और क्या गलत है; बड़ों से और वास्तविकता के बारे में उनकी धारणाओं से दबना नहीं है।

अनुकरण करना एक सीमा तक तो आवश्यक होता है, जैसे किसी गीत को या गणित आदि सीखने के लिए। किंतु अनुकरण करने की प्रवृत्ति को जैसे ही मनोवैज्ञानिक स्तर पर आचरण में लाया जाता है, जब भावना के स्तर पर अनुकरण किया जाने लगता है तो वह नुकसानदायक हो जाता है। क्या आप जानते हैं 'मनोवैज्ञानिक' का अर्थ क्या है? इसका अर्थ होता है

स्व, अहं, सूक्ष्मतर भावनाएं, अंतःकरण का स्वभाव। जब उस तल पर अनुकरण प्रारंभ हो जाता है तो सृजनात्मकता खो जाती है। यह एक अत्यंत जटिल समस्या है, क्योंकि अनुकरण करने का, अनुरूप होने का अर्थ है किसी तय सांचे के अनुसार कार्यरत होना। अनुसरण करने का, अनुरूप होने का अर्थ है स्मृति के अनुसार कर्म करने को सही मानना। अनुभव अनुकरण ही है क्योंकि अतीत ही अनुभव को निर्देशित करता है और अतीत अनुकरण ही है।

यहां कठिनाई इसे देख पाने में हो सकती है कि क्या अनुकरण बहुत ज़रूरी है, और आंतरिक धरातल पर किए जाने वाले अनुकरण से कैसे मुक्त हुआ जा सकता है? इसके लिए गंभीर चिंतन करने की ज़रूरत होती है—यही वास्तविक ध्यान है। जब मन स्वयं को उन सारी प्रतिमाओं और विचारों से मुक्त कर सके जो अनुकरण भर होते हैं केवल तभी वास्तविकता का, ईश्वर का या सत्य का आविर्भाव संभव होता है। नकल करने वाला चित्त वास्तविकता को कभी नहीं पा सकता।

प्रश्न : आलस्य से कैसे बचा जाए?

कृष्णमूर्ति : आइए मिलकर इसका पता लगाएं कि आलस्य करने से कैसे बचा जा सकता है। चूंकि यह आपका प्रश्न है इसलिए अकेला मैं ही इसका उत्तर दूं, ऐसा नहीं होगा। आपको तथा मुझे मिलकर इसका पता लगाना होगा।

आप शायद इसलिए आलस्य करते हैं क्यों कि आपका खान-पान उचित प्रकार का नहीं है, या शायद इसलिए क्योंकि अपने माता-पिता से जो शरीर आपने पाया है वह आनुवंशिक रूप से सुस्त है—या हो सकता है कि आपका लीवर ठीक ढंग से कार्य नहीं कर रहा हो या आप में कैल्सियम की कमी हो यानी आप दूध नहीं पीते हों। आपमें आलस्य होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि इसके ज़रिए आप उन चीज़ों से पलायन कर सकें जिनसे आप भयभीत हैं। आप इसलिए आलस्यपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि आप स्कूल जाना नहीं चाहते हों, क्योंकि आप पढ़ना-लिखना नहीं चाहते हों, क्योंकि आपकी पढ़ने-लिखने में रुचि ही न हो। पर जब बाहर जाकर खेलने का अवसर मिलता है तो आप बिलकुल आलस्य नहीं करते, किसी से झगड़ा करना हो तो आप आलस्य महसूस नहीं करते। आपके आलस्य का कारण उचित प्रकार का खान-पान न होना, या माता-पिता से प्राप्त आनुवंशिक प्रवृत्ति, या पलायन करना मात्र हो सकता है। 'पलायन' शब्द से मेरा क्या मतलब है, आप समझ रहे हैं? जिसे आप नहीं करना चाहते उससे आप पलायन करते हैं, भागते हैं और इस प्रकार आप आलस्य का शिकार हो जाते हैं। आप पढ़ना-लिखना नहीं चाहते क्योंकि पढ़ने-लिखने में आपकी बिलकुल दिलचस्पी नहीं है, पढ़ना ऊब पैदा करता है

और फिर आपका शिक्षक भी कुछ खास अच्छा नहीं है, वह भी उबाऊ है। इसलिए आप कहते हैं ‘ठीक है’ और आप आलसी हो जाते हैं।

अतः शिक्षक को तथा आपको इस बारे में जानना होगा कि क्या आपका भोजन उचित ढंग का है, शायद ठीक ढंग का भोजन आपको स्फूर्तिवान बनाए। आपके शिक्षक को इस बारे में पता लगाना होगा कि वास्तव में आपकी रुचि किसमें है—गणित में, भूगोल में या किसी चीज़ को बनाने में। तब उसे करते-करते आपमें स्फूर्ति आने लगेगी। इन सभी पहलुओं के बारे में सोचा जाना आवश्यक है। शिक्षक का यह कहना ‘आप बहुत सुस्त हैं, आपको इसकी सज़ा मिलेगी, आपको कम अंक दिए जाएंगे’ ठीक नहीं है।

प्रश्न : यदि हममें डर न हो तो हमारे मन में अभिभावकों के प्रति आदर की भावना भी नहीं रहेगी। आप ऐसा क्यों कहते हैं कि भय होना विनाशकारी है?

कृष्णमूर्ति : आप अपने अभिभावकों का आदर भय के कारण करते हैं या प्रेम के कारण? मैं यह कह रहा हूं कि यदि मन में किसी के प्रति भय है तो उसके प्रति आदर कैसे हो सकता है? इस प्रकार का आदर, आदर तो कदापि नहीं होता, यह डर का ही एक रूप है, भय ही है। परंतु यदि आपके मन में प्रेम है तो आपमें आदर भी अनायास होता है, फिर वह आपके पिता के प्रति हो या राज्य के बड़े से बड़े अधिकारी के प्रति हो या किसी निर्धन कुली के ही प्रति क्यों न हो। क्या यह समझना मुश्किल है? जो सम्मान भय के कारण होता है वह हानिकर होता है, नकली होता है और बेमानी होता है।

प्रश्न : जब हमें सफलता नहीं मिल पाती तब हममें भय की भावना क्यों आ जाती है?

कृष्णमूर्ति : आप सफल होना क्यों चाहते हैं? आप कुछ करते हैं, और इसे करना ही अपने-आप में सुंदर है, पर्याप्त है। आप यह भावना मन में रखना ही क्यों चाहते हैं कि आपको सफलता पानी ही है? आपमें गर्व है और फिर आप यह कहने लगते हैं, “मुझमें गर्व होना ठीक नहीं हैं”। और तब आप नम्र होने की चेष्टा करने लगते हैं—जो कि बिलकुल ही निरर्थक बात है। परंतु यदि आप यह कहें ‘यह मैं इसलिए कर रहा हूं क्योंकि ऐसा करना मुझे प्रिय है’ तो समस्या पैदा ही नहीं होती।

प्रश्न : एक आदर्श विद्यार्थी में कौन-कौन सी योग्यताएं होती हैं?

कृष्णमूर्ति : कोई आदर्श विद्यार्थी न ही हो तो बेहतर है। आप इस पर ज़रा गौर कीजिए कि आप क्या पूछ रहे हैं! आप एक आदर्श विद्यार्थी चाहते हैं, आप उसकी प्रतिमा को, उसके आचरण करने के तौर-तरीके को,

उसके व्यवहार करने को अपनी कल्पना में चित्रित करते हैं और आप उसकी नकल करना चाहते हैं। आप यह नहीं कहते, “मैं इस प्रकार का हूं, मैं अपने बारे में पता लगाना चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि जिया कैसे जाता है, पर किसी काल्पनिक चित्र के अनुरूप नहीं।” कृपया देखिए जैसे ही आप किसी आदर्श को अपने समक्ष रखते हैं आप तत्क्षण झूठे हो जाते हैं, तब आप कहते हैं, “मेरी शिक्षा-दीक्षा कितने गलत ढंग से हुई है।” आपके द्वारा रखा गया आदर्श ही तब जो आप वस्तुतः हैं उसकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

महत्त्व इस बात का है कि आप क्या हैं—महत्त्व इसका नहीं है कि आदर्श क्या है, या कि आदर्श विद्यार्थी कौन है या उसमें क्या योग्यता होनी चाहिए। आप महत्त्वपूर्ण हैं, आदर्श नहीं। अपने आपको समझ लेने के साथ ही आप यह भी जान लेंगे कि ये आदर्श कितने अवास्तविक हैं। वस्तुतः जो है, उससे पलायन करने वाला मन ही आदर्शों का आविष्कार किया करता है। आदर्श महत्त्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि महत्त्वपूर्ण यह है कि *जो है* उसे समझा जाए। एक भिखारी आपके पास आता है। उससे किसी आदर्श की चर्चा करने का क्या अर्थ है? अच्छा तो यह होगा कि आप उसे समझें। उसकी प्रत्यक्ष रूप से मदद करें। किसी परिपूर्ण समाज के आदर्शों की चर्चा करना काल्पनिक और अवास्तविक है, और इन आदर्शों की बात करना बूढ़े लोगों का प्रिय खेल है। *जो है* वह प्रत्यक्ष है और उसका सामना किया जाना चाहिए और उसे समझा जाना चाहिए।

6 जनवरी 1954

सुरक्षा

क्या आपको यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण नहीं लगती कि जब आप विद्यालय में हों तब आप किसी भी तरह की व्याकुलता अनुभव न करें, आपको अनिश्चितता की भावना महसूस न हो, बल्कि आपमें इस तरह की भावना दृढ़ रहे कि आप यहां पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं? क्या आप जानते हैं कि सुरक्षित अनुभव करना क्या होता है? सुरक्षा अनेक तरह की होती है। आप सुरक्षित हैं, इस भावना के कई रूप होते हैं। जब आप बहुत छोटे होते हैं तब आप इस रूप में सुरक्षित होते हैं कि आप अपने से बड़ों पर आश्रित होते हैं, आपमें यह भावना होती है कि कोई आपकी देखभाल कर रहा है और आपको ठीक तरह से भोजन दिया जा रहा है, उचित प्रकार के वस्त्र आदि मिल रहे हैं, आपके आसपास का वातावरण अनुकूल है, आपको महसूस होता है कि आपका ध्यान रखा जा रहा है, आपकी देख-रेख की जा रही है—जो कि बिलकुल ज़रूरी है। यह उस समय परम आवश्यक है जब आप छोटे होते हैं। जैसे-जैसे आप बड़े होते जाते हैं और धीरे-धीरे स्कूल से कॉलेज की ओर और फिर जीवन में आगे की ओर बढ़ते हैं, सुरक्षित होने का यह भाव, यह एहसास कि आप भौतिक रूप से पूर्णतः सुरक्षित हैं, शारीरिक स्तर पर आपकी समुचित देखभाल की जा रही है, यह सारी भावना एक अन्य क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है। आप यह चाहने लगते हैं कि अंतस में, आध्यात्मिक धरातल पर, मनोवैज्ञानिक रूप से भी आप सुरक्षित रहें। आप यह चाहने लगते हैं कि उस धरातल पर कोई आपकी मदद करे, आपका मार्गदर्शन करे, आपका ध्यान रखे जिसे आप गुरु अथवा पथप्रदर्शक की तरह मान सकें, या फिर आप किसी मत-विशेष या सिद्धांत या आदर्श की शरण खोज लेते हैं क्योंकि आप किसी का सहारा पाना चाहते हैं।

मानसिक धरातल पर सुरक्षित होने की चेष्टा की समस्या एक बहुत जटिल समस्या है और फिलहाल हम उस पर चर्चा नहीं करेंगे। मैं सोचता हूं कि जिस समय आप स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे होते हैं उस समय आपको शारीरिक, भावनात्मक तथा मानसिक सुस्थिरता अवश्य ही प्राप्त होनी चाहिए, मन और शरीर के तल पर यह महसूस होना चाहिए कि आपकी देखभाल की जा रही है, आप पर ध्यान दिया जा रहा है, आपके भविष्य को बनाया-संवारा जा रहा है, उस पर चौकसी रखी जा रही है, ताकि जब आप कम उम्र के हैं, जब आप स्कूल में हैं, तो आपको किसी तरह की बेचैनी, किसी तरह का भय अनुभव न हो। यह बिलकुल ज़रूरी भी है, क्योंकि व्याकुलता, भय, आशंका से ग्रस्त होना, भविष्य में आपका क्या होगा इस बारे में चिंता करते रहना बहुत बुरा है। यह आपके सोच-

विचार के लिए बहुत नुकसानदायक सिद्ध होता है, उस दशा में आप प्रज्ञाशील नहीं हो पाते। ऐसा केवल तब ही हो पाता है जब आपको यह महसूस हो कि आपके शिक्षक सचमुच आपकी देखभाल कर रहे हैं, शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से आपका पूरा-पूरा ध्यान रख रहे हैं, जीवन में आप क्या करना चाहते हैं इसका पता लगाने में वे आपकी सहायता कर रहे हैं—और अपनी राय या आचरण के तौर-तरीके आप पर थोप नहीं रहे हैं—तभी आपको महसूस हो पाता है कि आप विकसित हो रहे हैं, जीवन को जी रहे हैं। और यह केवल तब संभव है जब आप विद्यालय में अध्ययनरत रहते समय समुचित परिवेश में और उपयुक्त अध्यापकों के साथ होते हैं।

सुरक्षा के एहसास में आड़े आने वाली बातों में से एक है तुलना। पढ़ने-लिखने में, खेलों में, या आप कैसे दिखाई देते हैं आदि बातों में जब आपकी तुलना किसी और से की जाती है तो आपमें व्याकुलता की, भय की, दुविधा की भावना पनपने लगती है। अतः, जैसा कि हम कल कुछ शिक्षकों से चर्चा कर रहे थे, यह बहुत ज़रूरी है कि हमारे विद्यालय से इस प्रकार से होने वाली तुलना को पूरी तरह समाप्त किया जाए, अंक और श्रेणी के प्रचलन को और अंततः परीक्षा के भय को पूरी तरह से मिटा देना आवश्यक है।

आपको परीक्षाओं से डर लगता है, लगता है न? इसका मतलब क्या हुआ? यही कि आपको सारे समय यही चिंता सताती रहती है कि कहीं आप फेल न हो जाएं, कहीं आप दूसरों की तरह परीक्षा में कुछ विशेष अच्छा न कर पाएं, इस प्रकार इन सारे वर्षों में जो आप अध्ययन करते हुए बिताते हैं आपके सिर पर परीक्षा रूपी काला डरावना बादल मंडराता ही रहता है। कल हम कुछ शिक्षकों से इस बारे में बातचीत कर रहे थे कि क्या यह संभव है कि परीक्षाएं रखी ही न जाएं और इस प्रकार की कोई व्यवस्था हो जिसमें आपका दिन-प्रति-दिन ध्यान रखा जा सके, प्रति मास नियमित रूप से यह निश्चित किया जा सके कि आप सहज ही, खुशी-खुशी, आसानी से सीख रहे हैं, यह पता किया जा सके कि आपकी रुचि किस बात में है, और उस रुचि में आपका उत्साह बढ़ाया जाए, ताकि जब आप विद्यालय छोड़कर जाएं तो अत्यंत प्रज्ञावान होकर यहां से बाहर निकलें और आपकी योग्यता केवल परीक्षा पास कर लेने तक सीमित न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि आपने अध्ययन किया है या आपको किसी ऐसे विषय का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया गया है जिसमें आपकी रुचि भी है क्योंकि वह आपको प्रिय है, जिसमें आपको ज़रा भी डर नहीं लगता—यदि आपने केवल परीक्षा पास करने के उद्देश्य से दो या तीन मास तक डट कर पढ़ाई करने के बदले पूरी शिक्षा अवधि में लगातार नियमित अध्ययन किया है—और यदि इस पूरी अवधि में आप पर पर्याप्त ध्यान

दिया गया है, आपकी लगातार परवाह की गयी है, तो जब भी परीक्षा होती है तो आप उसमें सरलता से उत्तीर्ण हो सकते हैं।

जब आप स्वतंत्रता का, खुशी का अनुभव करते हैं, जब आप रुचि लेते हैं तो आप बेहतर ढंग से अध्ययन करते हैं। आप सभी जानते हैं कि जब आप खेल आदि खेलते हैं, जब नाटक-अभिनय आदि करते हैं, जब आप भ्रमण करने निकलते हैं, जब आप नदी को देख रहे होते हैं, जब प्रसन्नता की सामान्य भावना, अच्छा स्वास्थ्य इत्यादि मौजूद होते हैं, तो आप अधिक आसानी से सीखने लगते हैं। परंतु जहां तुलना किए जाने का, श्रेणी का, परीक्षाओं का डर होता है वहां आप उतनी अच्छी तरह से अध्ययन नहीं कर पाते या सीख नहीं पाते, लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि आपके अधिकतर अध्यापक पुराने ढर्रे पर ही चलते हैं। यदि सुख-सुविधा पूर्ण समुचित वातावरण दिया जाए, जहां भय न हो, जहां कुछ करने की बाध्यता न हो ताकि विद्यार्थी प्रसन्न रहे और उस स्थिति में जीवन को आनंदपूर्वक जी सके तो वह अवश्य ही अधिक बेहतर अध्ययन करेगा। लेकिन एकमात्र कठिनाई यही है कि इस ढंग से न तो शिक्षक, न ही छात्र कभी सोचते हैं। शिक्षक की दिलचस्पी यहीं तक होती है कि आप परीक्षाएं पास कर लें और अगली कक्षा में पहुंचें, और आपके अभिभावक भी चाहते हैं कि आप अगली कक्षा में पहुंचें। उनमें से किसी को इसमें दिलचस्पी नहीं है कि आप प्रज्ञावान मनुष्य की तरह निर्भय होकर विद्यालय से बाहर आएं।

शिक्षक एवं अभिभावक इस धारणा के आदी हैं कि उनके विद्यार्थी, बालक-बालिकाएं किसी भी तरह से परीक्षाएं उत्तीर्ण करते चलें, और उन्हें यह डर होता है कि यदि छात्र-छात्राओं को किसी तरह से बाध्य नहीं किया गया, यदि प्रतियोगिता की भावना, श्रेणी-क्रम आदि न हो तो वे पढ़ाई-लिखाई नहीं करेंगे। उन्हें यह बात बनिस्बत नयी लगती है कि लड़के-लड़कियों का पालन-पोषण और शिक्षा उनमें भय की भावना जगाए बिना भी, तुलना का सहारा लिए बिना भी, बाध्य किए बिना भी और भविष्य की आशंका से डराए बिना भी हो सकती है।

यदि परीक्षा प्रणाली समाप्त कर दी जाए, श्रेणी देना बंद कर दिया जाए तो उसका परिणाम क्या होगा? आप छात्रगण स्वयं इस बारे में वास्तव में क्या सोचते हैं? यदि आपकी तुलना किसी दूसरे से न की जा रही होती तो आपकी पढ़ाई-लिखाई की स्थिति क्या होती? क्या आप यह सोचते हैं कि उस स्थिति में आप अभी की अपेक्षा कम पढ़ते?

एक श्रोता : हां, ऐसा ही होता।

कृष्णमूर्ति : मैं ऐसा नहीं सोचता। यह आश्चर्यजनक बात है कि अभी आप लोग छोटे ही हैं पर पुराने सिद्धांत को स्वीकार कर चुके हैं! यह एक विडंबना ही है। देखिए अभी आप छोटे हैं और आप सोचते हैं कि आप तब

ही पढ़ेगे जब आपको इसके लिए बाध्य किया जाएगा। पर ज़रा सोचिए अगर आपको उचित वातावरण मिले, यदि आपको उत्साहित किया जाए, तो आप अवश्य ही अच्छी तरह से पढ़ाई करेंगे—और इसका कोई महत्त्व नहीं है कि आप परीक्षाएं पास करते हैं या नहीं।

दूसरे देशों में इस संबंध में प्रयोग किए गए हैं। यहां पर हमने अभी तक इस सब के बारे में सोच विचार नहीं किया है, और इसलिए एक छात्र के रूप में आप कहते हैं, "बाध्य किया जाना ज़रूरी है, तुलना करना, बलपूर्वक पढ़ाया जाना आवश्यक है, यदि ऐसा न किया जाए तो मैं पढ़ूंगा ही नहीं"। अतएव आप पुराने ढांचे को पहले ही से मान रहे हैं। क्या आप जानते हैं कि ढांचा शब्द का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है विचार प्रणाली, पुराने लोगों द्वारा स्थापित परंपरा। आपने इस बारे में कभी नहीं सोचा है। देखिए इस ओर ध्यान दीजिए। अभी आप तरुण हैं, यही क्रांति-काल है, इन सारी समस्याओं पर सोच-विचार कर लेने का समय है; बड़े क्या कहते हैं केवल उसे ही स्वीकार नहीं कर लेना है। परंतु ये लोग आप पर दबाव डालते रहेंगे कि आप परंपरा का अनुसरण करें क्योंकि वे यह नहीं चाहेंगे कि आप उनके लिए बाधा खड़ी करें, और आप उनके इस दबाव को स्वीकार कर लेते हैं। अतएव कठिनाई तो बनी ही रहने वाली है क्योंकि शिक्षकगण, और आप लोग भी यही सोचते हैं कि किसी-न-किसी प्रकार का दबाव, प्रलोभन, धमकी, तुलना, श्रेणी दिया जाना, परीक्षाएं बनाए रखना ज़रूरी है। इस सब को समाप्त करना अत्यंत कठिन होगा, ऐसे तरीके और उपाय खोजना अत्यधिक कठिन होगा जिनसे आप सहज रूप से, सरलतापूर्वक और प्रसन्नतापूर्वक अध्ययन करने लगें। आप सोचते हैं कि ऐसा संभव नहीं है। पर हमने कभी इसका प्रयास करके नहीं देखा है। इस प्रणाली ने—परीक्षाओं की, मूल्यांकन की, तुलना करने की, बाध्यता की प्रणाली ने महान सृजनशील लोगों को उत्पन्न करने में कोई सहायता नहीं की है। इसने जिन मनुष्यों को उत्पन्न किया है, उनमें उत्साह का अभाव है, वे जैसे-तैसे मशीनी ढंग से काम करने वाले बाबू बन गए हैं, शासन-प्रमुख, राज्यपाल आदि बन गए हैं या क्षुद्र-तुच्छ और बुझे मन-मस्तिष्क वाले मुंशी-मुनीम आदि बन कर रह गए हैं। आपने कभी इस ओर ध्यान दिया है? आप इस सबको ध्यानपूर्वक नहीं सुन रहे हैं क्योंकि आपको यह असंभव लग रहा है। परंतु हमें प्रयास तो करना ही होगा। नहीं तो आप भय के वातावरण में, आशंकाग्रस्त माहौल में जीते रहेंगे और ऐसे वातावरण में कोई भी सुख से नहीं रह सकता है। जब कोई सोचने-विचारने के, जीवन को जीने के, अध्ययन आदि करने के परंपरागत तरीके का आदी हो जाता है तो उसे त्यागकर, पूर्ण रूप से बदलना और शिक्षा की कोई ऐसी प्रणाली खोजना जिसमें आप सचमुच आनंद पूर्वक अध्ययन कर सकें, बहुत ही दुष्कर होता है। यह तब ही किया जा सकता है जब सारे छात्र एवं शिक्षक, सभी मिलकर इस बारे में सहमत हों कि भय नहीं होना चाहिए,

और ऐसा होना बहुत आवश्यक है ताकि हम सभी इस छोटी आयु में ही भावनात्मक, मानसिक और शारीरिक रूप से सुरक्षित अनुभव कर सकें। लेकिन जब तक इन खतरों की आशंका बनी रहती है तब तक इस प्रकार की सुरक्षा संभव नहीं है। कठिनाई यह है कि हममें से कोई भी जीवन की गहनतर समस्याओं की परवाह नहीं करता। शिक्षकों को चिंता केवल यही रहती है कि आपको परीक्षाएं पास कराने में सहायता कैसे करें, आपको अध्ययन करने के लिए कैसे राज़ी करें, अपनी संपूर्णता में आप जो हैं उसमें उनकी रुचि नहीं है। क्या आप मेरी बात का आशय समझते हैं? आप किस तरीके से विचार करते हैं, आपकी भावनात्मक प्रतिक्रियाएं किस प्रकार की होती हैं, आपका दृष्टिकोण, परंपराएं आदि कैसी हैं, एक संपूर्ण मनुष्य के रूप में आप क्या हैं, सचेतन एवं अचेतन स्तर पर आप क्या हैं—इन सारी चीज़ों में किसी की रुचि नहीं है।

निश्चित ही शिक्षा का सरोकार आपके समग्र अस्तित्व से है। आप केवल एक विद्यार्थी ही नहीं हैं जिसे कुछ परीक्षाएं पास करवा देने से शिक्षा का कार्य पूरा हो जाए। आपकी अपनी कुछ रुचियां हैं, कुछ भय हैं। ज़रा अपनी भावनाओं को ध्यान से देखें, आप क्या करना चाहते हैं इसे देखें, अपनी काम भावना को देखें। यहां पर, विद्यालय में, शिक्षकों की एकमात्र चिंता यह होती है कि आप जैसे भी हो सके किसी विषय की पढ़ाई कर लें, चाहे उस विषय में आपकी तनिक भी रुचि नहीं हो और उसमें पास हो जाएं, और यदि वे इसमें सफल हो जाते हैं तो उन्हें लगता है कि आप शिक्षित कर दिए गए हैं। शिक्षित होने का अभिप्राय है कि आपने अपने समग्र अस्तित्व को, जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया को, अपने आपको समझ लिया है। उसे समझने के लिए आपमें तथा शिक्षक के भीतर भी ऐसी भावना होना आवश्यक है जिससे आप एक दूसरे पर भरोसा कर सकें, आपमें परस्पर स्नेह हो, सुरक्षा की भावना हो और भय न हो। देखिए! यह कोई असंभव बात नहीं है, काल्पनिक आदर्शवाद या ध्येय नहीं है। यह असंभव नहीं है। यदि हम सभी साथ बैठकर मिलजुल कर विचार करें तो हम तय कर सकते हैं। विद्यालय के स्तर पर ही इसे तय किया जा सकता है, और यदि ऐसा नहीं किया जा सकता है तो विद्यालय पूरी तरह से असफल कहा जाना चाहिए—उसी तरह से जैसे किसी दूसरे विद्यालय को असफल कहा जाता है। अतएव आपको यह समझना होगा कि एक ऐसे वातावरण में जहां भय न हो, जिसमें आपको पुराने ढंग से बलपूर्वक बाध्य करके, तुलना का सहारा ले कर, पुरानी प्रणाली में धकेल न दिया जाता हो, आप ऐसे माहौल में सचमुच बेहतर ढंग से अध्ययन कर सकेंगे, अधिक अच्छी तरह से सरलतापूर्वक पढ़ सकेंगे। परंतु इस बारे में हमारा पूरी तरह से सुनिश्चित होना आवश्यक है। हम दोपहर बाद शिक्षकों से इसी पर चर्चा करने वाले हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि आप इस विद्यालय को छोड़ते समय यंत्रवत बनकर नहीं, बल्कि एक ऐसे मानव के रूप में यहां से

जाएं कि आपका समूचा अस्तित्व सक्रिय रहे, प्रज्ञापूर्ण रहे ताकि आप किसी परंपरा के अनुसार प्रतिक्रिया न करते हुए जीवन की समस्त कठिनाइयों का उपयुक्त रीति से सामना कर पाएं।

प्रश्न : हम गरीबों से घृणा क्यों करते हैं?

कृष्णमूर्ति : क्या आप गरीबों से घृणा करते हैं? सराय-मोहाना से बनारस के पूरे रास्ते भर सिर पर भारी टोकरी ढोकर ले जाती हुई उस गरीब स्त्री से आप घृणा करते हैं? क्या आप उससे और उसके फटे-पुराने मैले वस्त्रों से घृणा करते हैं? या आप इस बात के लिए शर्मिंदगी की भावना महसूस करते हैं कि आप अच्छे कपड़े पहनते हैं, साफ-सुथरे हैं, भरपेट खाना खाते हैं जबकि दूसरे लोगों को आप अत्यंत गरीब और दिन-रात, वर्ष-प्रतिवर्ष मेहनत करता हुआ देखते हैं? आपमें सच में कौन सी भावना जाग्रत होती है? अंतर्मन में यह संवेदनशीलता, यह भावना, 'मेरे पास सब कुछ है जबकि उस स्त्री के पास कुछ भी नहीं है' उठती है या उससे घृणा का भाव उठता है? शायद यहां पर हम घृणा शब्द का प्रयोग भूलवश कर रहे हैं। शायद ऐसा होता होगा कि आप अपने आप से शर्मिंदा अनुभव करते हों और शर्म अनुभव करने के कारण आप उस चीज़ से भागने का प्रयास करने लगते हैं, जो आपको विचलित कर रही होती है।

प्रश्न : क्या चतुराई और समझदारी में कोई भेद है?

कृष्णमूर्ति : क्या आपको यह नहीं लगता कि इन दोनों के बीच व्यापक अंतर है? यह संभव है कि आप अपने विशिष्ट विषय में दक्ष हों, उसमें उत्तीर्ण होने की क्षमता आपमें हो, आप उस पर बहस कर जीत सकते हों, दूसरे किसी लड़के से तर्क कर सकते हों। लेकिन हो सकता कि आप डरे हुए हों—आपको यह भय सताता हो कि आपके पिता क्या कहेंगे, आपके पड़ोसी, आपकी बहन, या कोई अन्य व्यक्ति आपके बारे में क्या कहता है। हो सकता है आप बहुत चतुर हों पर भयभीत रहते हों और भय का अर्थ है प्रज्ञा का अभाव। आपकी चतुराई वास्तव में समझदारी नहीं है। विद्यालय में पढ़ने वाले, हममें से अधिकांश जैसे-जैसे बड़े होते हैं वैसे-वैसे और भी अधिक चतुर, और भी अधिक चालाक होने लगते हैं क्योंकि हमें उसी प्रकार से प्रशिक्षित किया जाता है, ताकि हम व्यापार, व्यवसाय में या कालाबाजारी करने में दूसरों से आगे निकल जाएं, हमें महत्त्वाकांक्षा से इतना भर दिया जाता है कि हमें कैसे भी दूसरों से आगे निकलना, दूसरों को पीछे धकेलना चाहते हैं। परंतु प्रज्ञा इससे बिलकुल भिन्न बात है। यह ऐसी अवस्था है जिसमें आपका संपूर्ण अस्तित्व, आपका समूचा मन और आपकी भावनाएं समेकित होती हैं, समवेत होती हैं, एक होती हैं। इस प्रकार का समेकित मानव प्रज्ञाशील होता है, वह केवल एक चतुर व्यक्ति नहीं होता।

प्रश्न : क्या प्रेम सौंदर्य एवं आकर्षण पर निर्भर होता है?

कृष्णमूर्ति : शायद। आप जानते हैं प्रश्न पूछना बहुत आसान है, लेकिन उन प्रश्नों से जुड़ी समस्याओं पर विचार करना अत्यंत कठिन होता है। उन पर चिंतन करना, मुझसे उत्तर की प्रतीक्षा न करते हुए सचमुच उससे जुड़ी विभिन्न बातों पर क्रमपूर्वक विचार करना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। इन प्रश्नों से क्या यही प्रकट नहीं होता कि हमें जो कुछ सोचने को कहा जाता है, जो कुछ करने के लिए कहा जाता है हम उसी को सोचने के, उसी को करने के आदी हो चुके हैं, और स्वयं कैसे सोचें या कैसे करें इस ओर हमारा ध्यान ही नहीं है। इन बातों पर हमने विचार ही नहीं किया है, हमें यही नहीं पता कि सोच-विचार किस प्रकार किया जाता है।

जब हम छोटे होते हैं तभी से यह जान लेना आवश्यक है कि विचार कैसे किया जाता है, किसी प्रोफेसर या विद्वान के ग्रंथों के उद्धरण देते रहने के बजाय अपने आप से ही किसी भी समस्या के मर्म को, तात्पर्य को और उसमें निहित बातों को समझ लेना। इसीलिए यह ज़रूरी है कि जब हम इस विद्यालय में हैं तभी इन सभी बातों पर, इन सारी समस्याओं पर चर्चा की जाय, बातचीत की जाय ताकि हमारे मन-मस्तिष्क क्षुद्र, संकुचित और उथले ही न रह जाएं।

प्रश्न : घबराहट की भावना को हम अपने मन से कैसे हटाएं?

कृष्णमूर्ति : यदि परीक्षाएं न ली जातीं तो क्या उनके लिए आपके मन में घबराहट होती? इस पर शांतिपूर्वक विचार कीजिए और आप यह समझ जाएंगे। मान लीजिए कि हम भ्रमण करने के लिए जा रहे हैं और इस समस्या पर चर्चा करते हैं। यदि अगले दो माह में आपकी परीक्षा होने वाली हो तो क्या आप व्याकुल अनुभव करेंगे? यदि आपकी बी. ए. या किसी अन्य परीक्षा के हो जाने के पश्चात आपको किसी नौकरी को पाने के लिए संघर्ष करना पड़े तो क्या आपमें घबराहट पैदा होगी? क्या आप व्यग्र हो उठेंगे? आपकी घबराहट का कारण है कि आपको कोई नौकरी ढूंढ़नी है। एक ऐसे समाज में जहां प्रतिस्पर्धा करना कठिन है, जहां प्रत्येक व्यक्ति संघर्षरत है, प्रयासरत है, एक छात्र के रूप में बचपन से ही आप घबराहट से भरे वातावरण में प्रशिक्षित किए जाते हैं, हैं न? आपको पहले प्रथम कक्षा उत्तीर्ण करनी होती है फिर दूसरी कक्षा और इसी प्रकार आगे भी चलता रहता है। इस प्रकार आप पूरी सामाजिक संरचना का एक हिस्सा बन जाते हैं, कि नहीं बनते हैं? इस तरह की कोई बात हम इस विद्यालय में नहीं करने जा रहे हैं। यहां हम ऐसा वातावरण निर्मित करने जा रहे हैं जिसमें आपके लिए घबराहट की कोई वजह न हो, जिसमें आपको परीक्षाएं न देनी पड़ें, जिसमें आपकी किसी अन्य से तुलना नहीं की जाए —भले ही इस सब की वजह से हमें विद्यालय बंद भी क्यों न करना पड़े। क्योंकि आप मनुष्य होने के नाते महत्त्वपूर्ण हैं। यदि इस तरह का

वातावरण निर्मित किया जा सके तो परीक्षाओं का जरा भी महत्त्व नहीं रह जाएगा। आप स्वतंत्रता से लिख-पढ़ सकेंगे और तब आपके लिए विश्वविद्यालय द्वारा ली जाने वाली परीक्षाएं पास करना भी कठिन नहीं होगा क्योंकि यदि इन सारे वर्षों के दौरान विद्यालय और कॉलेज में अध्ययन करते समय आप प्रज्ञापूर्ण रहे हों तो चार-पांच महीने कठिन परिश्रम कर आप विश्वविद्यालय की किसी भी परीक्षा को पास कर लेंगे। अंतिम परीक्षा पास करने के बाद जब आप सांसारिक जीवन में प्रवेश करेंगे तो आप कोई रोजगार पाना चाहेंगे। लेकिन तब आप जो भी काम करेंगे उससे आपको भय नहीं लगेगा, आपके अभिभावक, आपका समाज आपको डरा नहीं सकेगा, आप कुछ-न-कुछ अवश्य कर लेंगे, शायद भीख ही मांग लेंगे, पर घबराएंगे नहीं।

फिलहाल आपका जीवन घबराहट से भरा है क्योंकि बचपन की शुरुआत से ही आप प्रतिद्वंद्विता के जाल में फंस गए हैं। हम सभी सफलता पाना चाहते हैं, और हमसे लगातार कहा जाता है, "उस व्यक्ति को देखो, उसने बहुत बड़ी सफलता पाई है"। परंतु जब तक आप सफलता के लिए प्रयत्नरत हैं तब तक घबराहट, व्याकुलता तो रहेगी ही। लेकिन यदि आप कोई कार्य इसलिए करना चाहते हैं कि आपको कार्य करने से प्रेम है, इसलिए नहीं कि आप सफल होना चाहते हैं तो व्याकुलता नहीं होगी। जब तक आप सफलता पाने की चाह रखते हैं, जब तक आप सामाजिक प्रतिष्ठा रूपी सीढ़ी पर चढ़ना चाहते हैं तब तक घबराहट तो रहेगी ही। जबकि आप वह कार्य कर रहे हैं जिससे आपको प्रेम है—भले ही वह एक पहिये को सुधारना भर हो या छोटी-मोटी कारीगरी हो, या चित्रकारी अथवा प्रशासक का कार्य हो—और आप उसे इसलिए नहीं कर रहे क्योंकि आपको उससे पद-प्रतिष्ठा या सफलता मिल रही है—तो घबराहट बिलकुल नहीं होगी।

प्रश्न : इस संसार में हम आपस में लड़ते-झगड़ते क्यों हैं?

कृष्णमूर्ति : हम लड़ते-झगड़ते क्यों हैं। आप किसी चीज़ को पाना चाहते हैं और मैं भी उसे पाना चाहता हूं इसलिए उसे पाने के लिए हम एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं। आप होशियार हैं, मैं होशियार नहीं हूं और इस पर हम झगड़ते हैं। आप मुझसे ज्यादा सुंदर हैं और मैं महसूस करता हूं कि मुझे भी सुंदर होना चाहिए इसलिए हमारे बीच कहा-सुनी होती है। आप महत्त्वाकांक्षी हैं और मैं भी हूं, आप कोई खास काम करना चाहते हैं और मैं भी उसी काम पर लगना चाहता हूं और यह सिलसिला चलता चला जाता है। जब तक हम कुछ पाना चाहते हैं, तब तक झगड़े का अंत नहीं हो सकता। यह बहुत कठिन है। जब तक हमें कुछ चाहिए, हम लोग आपस में झगड़ते रहेंगे। जब तक आप यह कहना जारी रखेंगे कि भारत सबसे सुंदर है, सबसे अधिक महान है, संसार में सबसे अधिक सभ्य राष्ट्र है तब तक

झगड़े होते ही रहेंगे। शुरुआत छोटे स्तर पर होती है—आप एक शॉल पाना चाहते हैं और उसे पाने के लिए संघर्ष करने लगते हैं। यही प्रक्रिया जीवन में अनेक रूपों में, अनेक स्तरों पर चलती रहती है।

प्रश्न : जब कोई शिक्षक अथवा कोई अधिकारी हमें किसी ऐसे कार्य को करने के लिए विवश करता है जिसे हम नहीं करना चाहते, तो हमें क्या करना चाहिए?

कृष्णमूर्ति : ऐसे समय आप सामान्यतया क्या किया करते हैं? आप भयभीत होते हैं अतः आप वही करते हैं जिसे करने के लिए आपसे कहा जाता है, क्या ऐसा ही नहीं होता? मान लीजिए यदि आप बिना डरे अपने से बड़े व्यक्ति से, अध्यापक से यह कहते हैं कि वे इस बारे में आपको ठीक से सब समझाएं, तो क्या होगा? मान लीजिए आप बिना अभद्रता या अनादर किये नम्रतापूर्वक कहते हैं—'मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि आप मुझे यह कार्य करने के लिए क्यों कह रहे हैं जबकि मैं इसे करना नहीं चाहता हूं, कृपया मुझे समझाएं कि आप मुझसे यह कार्य क्यों करवाना चाहते हैं।' तब उस स्थिति में क्या होगा? जैसा सामान्यतः हुआ करता है शायद शिक्षक या वरिष्ठ व्यक्ति धैर्य खो देगा। वह कह देगा, 'मेरे पास समझाने का समय नहीं है, जाओ और इसे करो।' यह भी संभव है कि शिक्षक या बड़ा व्यक्ति यह महसूस करे कि बतलाने के लिए उसके पास कोई कारण नहीं है और वह बस यही कहे, 'जाओ और इसे करो', शायद उसने इस बारे में सोच-विचार ही नहीं किया हो। जब आप शांतिपूर्वक, आदरपूर्वक उससे निवेदन करेंगे, 'कृपया मुझे बताएं', तो शिक्षक, और जो भी आपके बड़े हैं, आप उन्हें समस्या पर मिलजुलकर सोच-विचार करने के लिए तैयार कर ही लेंगे। क्या आप समझ रहे हैं? तब यदि आपको औचित्य स्पष्ट हो जाता है, यदि आप देखते हैं कि वह ठीक कह रहा है, उसकी बात सार्थक है तो आप उसे सहज रूप से करेंगे ही, उसे करने के लिए आपको बाध्य नहीं होना पड़ेगा। लेकिन डर के कारण अगर आप उनकी बात सुनते हैं तो उसके कोई मायने नहीं है। उस स्थिति में आप केवल इसलिए उस कार्य को करते रहेंगे क्योंकि आप डरते हैं, और आप उनकी अनुपस्थिति में भी व्यर्थ ही उस काम को करते रहेंगे।

प्रश्न : पूजा करना एक प्रकार का अनुकरण ही होता है, फिर हम इसे क्यों करते हैं?

कृष्णमूर्ति : आप पूजा करते हैं क्या? आप पूजा क्यों करते हैं? क्योंकि आपके अभिभावक, माता-पिता इसे किया करते हैं। आपने इस बारे में सोच-विचार नहीं किया है, इस सब का अर्थ क्या है आप नहीं जानते। आप इसे इसलिए करते हैं क्योंकि आपके पिता, माता, दादी या नानी इसे करते हैं। हम सभी इस मामले में एक जैसे हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ करता है तो मैं उसकी नकल करने लगता हूं, मुझे आशा होती है कि ऐसा करने से मुझे

कोई लाभ होगा। इसलिए मैं भी औरों की देखा-देखी पूजा-पाठ करने लगता हूं। यह एक प्रकार का अनुकरण ही होता है। इसमें मौलिकता कहीं नहीं होती। मैंने इसे समझ-बूझकर नहीं किया होता। मैं इसे बस इस आशा से करता हूं कि इसका कोई शुभ फल मुझे प्राप्त होगा।

अब यह तो आप स्वयं ही देख सकते हैं कि यदि आप किसी चीज़ को बारंबार दोहराते हैं तो आपका मन जड़ होने लगता है। यह बिलकुल ही साफ बात है, जैसा कि गणित में होता है, यदि आप किसी चीज़ को बार-बार दोहराएंगे तो वह चीज़ अपना अर्थ खो देती है। इसी प्रकार किसी धार्मिक कृत्य को बारंबार किए जाने से मन जड़ होने लगता है। और ऐसा मन, मंद होने से, संवेदनशीलता के कम होने से सुरक्षित महसूस करता है। वह कहता है, 'अब मेरे लिए कोई समस्या नहीं रही, भगवान मेरी देखभाल कर रहे हैं, मैं पूजा करता हूं, सब कुछ ठीक चल रहा है।' लेकिन ऐसा मन अभी भी जड़ ही है। मंद मन के लिए तो कोई समस्या होती नहीं। पूजा करना, किसी मंत्र का बारंबार उच्चारण करना, या किन्हीं शब्दों को निरंतर दोहराते रहने से मन असंवेदनशील होता चला जाता है। हममें से अधिकांश यही चाहते हैं, हममें से अधिकतर लोग असंवेदनशील होना चाहते हैं ताकि किसी प्रकार की रोक-रुकावट से वास्ता न पड़े। यह सच में हितकर है या नहीं यह एक अलग बात है। आप जानते हैं कि पुनरावृत्ति के माध्यम से आप अपने मन को खामोश कर सकते हैं—पर यह मरघट की खामोशी होती है, जीवंत निश्चलता नहीं होती—और तब मन कहता है, 'मैंने अपनी समस्या को सुलझा लिया है।' परंतु एक मृत मन, एक असंवेदनशील मन अपनी समस्याओं से छुटकारा नहीं पा सकता। केवल एक सक्रिय मन ही, जो अनुकरण में न उलझा हो, जो भयग्रस्त नहीं हो, समस्या को देख-समझ कर उसके पार जा सकता है, उससे मुक्त हो सकता है।

आप किसी अन्य के वक्तव्य का उल्लेख इसलिए करते हैं क्योंकि आपने समस्या पर स्वयं चिंतन नहीं किया होता है। आप शेक्सपीयर, मिल्टन अथवा डिकेंस को पढ़ते हैं या किसी और को, और फिर आप उसमें से कोई कथन उद्धृत कर कहते हैं, 'मुझे इसका मतलब मालूम होना चाहिए।' परंतु पढ़ते समय यदि आप विभिन्न बातों पर ठीक से विचार करते, अपनी मन-बुद्धि को प्रयोग में लाते हुए उसके साथ-साथ चलते, तो आप कुछ भी उद्धृत न करते। दूसरों के कहे को दोहराते रहना सीखने का एक बेहद घटिया तरीका है।

प्रश्न : जोखिम लिए बिना कुछ भी पाया नहीं जा सकता, भय न हो तो विवेक जाग्रत नहीं होता और विवेक के बिना विकास संभव नहीं। तब प्रगति क्या है?

कृष्णमूर्ति : प्रगति क्या है? बैलगाड़ी है और जेट विमान है, बैलगाड़ी से जेट विमान तक पहुंचना प्रगति है। इसमें प्रगति है। जेट विमान 1300 से

1500 मील प्रति घंटे की रफ्तार से उड़ता है और बैलगाड़ी दो मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलती है। इस प्रकार यह प्रगति तो अवश्य है। परंतु क्या इससे भिन्न किसी दिशा में कहीं प्रगति हो रही है? वैज्ञानिक रूप से मनुष्य ने हालांकि बहुत प्रगति की है—उसे तारों और धरती के बीच की दूरी पता है, वह जानता है कि परमाणु विखंडन कैसे किया जाता है, वह जानता है कि हवाई जहाज कैसे उड़ाया जाता है, पनडुब्बी में बैठकर जल में कैसे उतरा जाता है, पृथ्वी की गति को नापने का तरीका उसे मालूम है। उस दिशा में तो प्रगति हो रही है। क्या इसके अतिरिक्त किसी अन्य दिशा में प्रगति हो रही है? क्या युद्धों में कमी आ रही है? क्या लोग अधिक दयालु, अधिक विचारशील और अधिक सौम्य हो रहे हैं? इसलिए प्रगति कहां हो रही है? एक दिशा में तो प्रगति अवश्य है, परंतु दूसरी दिशा में कोई प्रगति नहीं हो रही है।

आप कहते हैं जोखिम लिये जाने पर प्रगति होगी। सारे निहितार्थों को समझे बिना ही हम वक्तव्य दे देते हैं। फिर हम कुछ उक्तियां पढ़ते हैं और विद्यार्थी उन्हें दोहराते हैं, वे उन्हें लिख लेते हैं उन्हें दीवारों पर प्रदर्शित करते हैं और उनका बारंबार ज़िक्र करते रहते हैं।

प्रश्न : प्रसन्नता क्या है और इसे कैसे पाया जा सकता है?

कृष्णमूर्ति : प्रसन्नता एक आनुषंगिक परिणाम है। यदि आप इसे सीधे ही पाना चाहें तो यह आपको नहीं मिलने वाली। परंतु यदि आप ऐसा कोई कार्य कर रहे हैं जो आपकी दृष्टि में शुभ है, तो प्रसन्नता उसके पीछे-पीछे चलकर अनायास ही आ जाती है। परंतु यदि आप प्रसन्नता को पाने की चेष्टा करते हैं तो यह सदैव आपसे दूर भागती रहेगी, यह कभी आपके पास न आएगी। मान लीजिए आप कुछ ऐसा कार्य करने जा रहे हैं, जिससे आपको सचमुच लगाव है—चित्रकारी करना, अध्ययन करना, भ्रमण के लिए जाना, सूर्य की धूप को, छायाओं को देखना—ऐसा कोई कार्य करते हैं जिसमें आपको यह महसूस होता है कि इसे करना कितना अच्छा लगता है। तो उसे करने में आपको प्रसन्नता मिलेगी। परंतु यदि आप इस कार्य को यह सोचकर करते हैं कि इसे करने से आपको प्रसन्नता मिलेगी, तो आप प्रसन्नता से वंचित रह जाएंगे।

7 जनवरी 1954

आदत

पिछले कुछ दिनों से हम भय और उन विभिन्न कारणों पर बातचीत करते आ रहे हैं जो भय को जन्म देते हैं। मैं सोचता हूं कि सर्वाधिक कठिन बातों में से जिस एक बात को हममें से अधिकतर शायद नहीं समझ पाते हैं वह है आदत की समस्या। आप जानते हैं हममें से अधिकतर लोग यही मानते हैं कि अपनी छोटी उम्र में ही हमें बुरी आदतों के स्थान पर अच्छी आदतों को अपना लेना चाहिए और हमें लगातार यह बताया जाता है कि बुरी आदतें क्या हैं और अच्छी आदतें क्या हैं। हमें सदैव उन आदतों के बारे में बताया जाता है जिन्हें विकसित कर लेना अच्छा है और उन आदतों के बारे में भी जिनसे हमें बचना चाहिए या जिन्हें हमें छोड़ देना चाहिए। हमें ऐसा बता दिए जाने के बाद क्या होता है? हममें वे आदतें होती हैं जो तथाकथित रूप से बुरी होती हैं और हम यह चाहने लगते हैं कि हममें अच्छी आदतें हों। इसलिए हममें *जो है* और हममें *जो होना चाहिए* उन दोनों के बीच संघर्ष होने लगता है। हममें *जो है* उसे बुरी आदत समझा जाता है और हमें लगता है कि हमें अच्छी आदतें विकसित करनी चाहिए। अतः एक द्वंद्व, एक संघर्ष छिड़ जाता है, अच्छी आदतों की दिशा में जाने के लिए निरंतर एक दबाव पड़ने लगता है, बुरी आदतों को बदलकर उनके स्थान पर अच्छी आदतें ग्रहण करने के लिए लगातार दबाव बना रहता है।

अब आपके विचार से अधिक महत्त्वपूर्ण क्या है? अच्छी आदतें? यदि आप अच्छी आदतों का संवर्धन करते हैं तो इसका क्या परिणाम होता है? क्या आपका मन अधिक सजग, अधिक लचीला, पहले से अधिक संवेदनशील होता है? क्योंकि आदतें होने का मतलब ही है एक ऐसी निरंतरता की स्थिति जिसमें मन अपनी शांति भंग नहीं होने देना चाहता। यदि मुझमें अच्छी आदतें हैं तो मेरे मन को अब उस बारे में चिंता करने की ज़रूरत नहीं रही, और मैं अब अन्य चीज़ों के बारे में सोच सकता हूं। इसलिए हम कहते हैं कि हममें अच्छी आदतें होनी चाहिए। किंतु अच्छी आदतें अर्जित करने की प्रक्रिया में क्या हमारा मन असंवेदनशील नहीं होने लगता? यदि आपमें अच्छी आदतें हों और यदि आप अपने मन को इनके अनुसार गति करने दें, इन तथाकथित अच्छी आदतों वाली पटरी पर चलने दें, तो क्या आपका मन लचीला रह पाता है? तब आपका मन अपनी लोच, नम्यता खो देता है और जड़ हो जाता है। इसलिए अच्छी आदतों या बुरी आदतों का होना नहीं बल्कि विचारशील होना अधिक महत्त्वपूर्ण बात है, और विचारशील होना कहीं अधिक कठिन है। जैसे ही आप विचारशील, सजग, सतर्क होते हैं अच्छी आदतों के संवर्धन का प्रश्न ही नहीं रहता। विचारशील मन संवेदनशील होता है अतएव यह सामंजस्य करने में सक्षम

होता है। जबकि आदत के अनुसार चलने वाला मन संवेदनशील नहीं रह जाता, वह प्रसंग के अनुसार लचीला नहीं होता, विचारशील नहीं होता। सामान्य कोटि के, क्षुद्र, तुच्छ मन की एक कठिनाई यह भी होती है कि यह आदत से बंधकर कार्य करता है, और जब मन एक बार आदत से बंध जाता है तो उसे इससे मुक्त करना सर्वाधिक कठिन होता है। अतः आदतों का, अच्छी व बुरी आदतों को सीख लेना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना यह कि विचारशील कैसे हों—किसी विशेष दिशा में नहीं बल्कि समग्र रूप से। क्योंकि किसी विशेष दिशा में विचारहीनता ही आदत है।

मुझे उम्मीद है कि आप इसे ठीक से समझ रहे होंगे। शायद यह थोड़ा कठिन लग रहा होगा और यदि यह आपको कठिन प्रतीत हो रहा हो तो अपने शिक्षकों से इस बारे में अवश्य पूछिए, और अगली बार जब वे अच्छी आदतें विकसित करने के बारे में कहें तो उनसे चर्चा कीजिए, उन्हें विवाद में उलझाने की दृष्टि से नहीं बल्कि यह समझने हेतु कि अच्छी आदतों से उनका क्या अभिप्राय है।

अच्छी आदतें भी विचारहीनता ही दर्शाती हैं। आदत से बंधा हुआ मन त्वरित तालमेल करने में सक्षम नहीं होता है, त्वरित विचार करने में, सजग हो पाने में समर्थ नहीं होता है। केवल सतही तौर पर नहीं बल्कि आंतरिक तल पर भी विचारशील होना अच्छी आदतें सीखने की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व रखता है। मन एक चेतन वस्तु है परंतु तमाम तरह की आदतों के दबाव में आकर यह बंध जाता है, अटक-सा जाता है, घिर-सा जाता है, नियंत्रित और विशिष्ट आकार में सीमित हो जाता है। मत-विश्वास, परंपरा आदत है। मेरे पिता का कोई मत-विश्वास होता है और वे मुझ पर ज़ोर डालते हैं कि मैं भी उस मत-विश्वास को मान लूं। वे यह बात प्रत्यक्षतः नहीं कहते परंतु इस प्रकार का परिवेश, ऐसा वातावरण निर्मित कर देते हैं कि मुझे उनका अनुसरण करना ही पड़ता है। वे पूजा करते हैं जो एक आदत है और स्वाभाविक रूप से मैं भी उनकी नकल करने लगता हूं और इस आदत को पाल लेता हूं।

आपका मन सदैव आदत के सहारे जीते रहने की चेष्टा करता है ताकि उसे असुविधा न हो, ताकि उसे नये सिरे से, नये ढंग से सोचने की मुसीबत न झेलनी पड़े, समस्याओं को भिन्न दृष्टि से न देखना पड़े। इसलिए मन को अर्द्ध-जाग्रत अवस्था में रहना अच्छा लगता है, और इसमें परंपरा की ही तरह आदतें भी बहुत सहयोगी हुआ करती हैं, क्योंकि तब आपको विचार करने की ज़रूरत नहीं होती, तब आपको संवेदनशील होने की आवश्यकता नहीं होती। परंपरा आपसे कुछ कहती है और आप तदनुसार चलते हैं—जैसे कि मस्तक पर तिलक या चंदन आदि लगाने की परंपरा, सिर पर पगड़ी या साफा बांधने की रूढ़ि या दाढ़ी रखने की परंपरा। जब आप किसी परंपरा को स्वीकार कर उसका पालन करने लगते हैं तो

आपको कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती है, आपका मन संवेदनारहित होता है और वैसा ही बना रहना चाहता है। हमारी शिक्षा यही है। हम गणित, भूगोल या विज्ञान आदि इसलिए सीखते हैं ताकि हमें कोई नौकरी मिल जाए और उस नौकरी को करते हुए हमारा शेष जीवन आराम से बीते। आप ईसाई हैं, हिंदू हैं या मुसलमान हैं या जो कुछ भी आप अपने को कहते हों, आप उसी ढंग से किसी यंत्र की भांति निर्बाध रूप से कार्य करते रहते हैं। हालांकि बाधाएं आती हैं परंतु अपनी अभ्यासगत सोच के द्वारा उनकी व्याख्या कर आप उनसे पलायन कर जाते हैं, इसलिए आपका मन कभी विचारशील नहीं होता, सतर्क नहीं होता, कभी प्रश्न नहीं उठाता, कभी अनिश्चित नहीं होता, सदैव अर्ध-सुषुप्त रहता है—परंपराओं, आदतों, रिवाज़ों के द्वारा सुला दिया जाता है। इसलिए यदि आप ध्यान दें तो आप पाएंगे कि जब आप विद्यालय में होते हैं तो लोगों की भीड़ में आसानी से खो जाते हैं। आप भी ऐसे ही हो जाते हैं जैसे बाकी सब। फिर चाहे आप शिक्षित हों, आप बी.एस-सी. या एम.ए. हों। आपके बच्चे होते हैं, पति होता है, आपके पास कार होती है या शायद न हो तो आप एक कार चाहते हैं। आप इसी रीति से सब कुछ करते रहते हैं, इसी ढंग से जीते हैं और क्रमशः जीते-जीते एक दिन मर जाते हैं और घाट पर ले जा कर आपको जला दिया जाता है। यह है आपका जीवन, है न? आपको विचारहीन होने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, विद्रोह करने के लिए, प्रश्न उठाने के लिए नहीं। यदि कभी संयोग से संशय की कोई तरंग आप में उठती भी है तो उसे उसी समय किसी व्याख्या से शांत कर दिया जाता है। इसे ही आप शिक्षण की प्रक्रिया समझते हैं।

यकीनन यह बेहद ज़रूरी है कि जब तक आप इस विद्यालय में हैं, इन तमाम पहलुओं के साथ प्रयोग करें ताकि जब यहां से आपका जाना हो तो आप आदतों, परंपराओं और भय के दबाव में कार्य करने वाले मन को लेकर न जाएं, बल्कि एक ऐसे मन के साथ यहां से विदा हों जो विचारशील हो। यह विचारशील होना किसी खास रुझान के, साम्यवाद, कांग्रेस या समाजवाद के अनुरूप होने वाली विचारप्रणाली नहीं है। जैसे ही इसे किसी नाम से जोड़ दिया जाता है यह विचारशील होना नहीं रह जाता। जैसे ही आप किसी समाज से, किसी वर्ग से, किसी राजनीतिक दल से जुड़ जाते हैं आप विचार करना बंद कर देते हैं, क्योंकि तब आप आदत से बंध कर विचार करते हैं और इस प्रकार से विचार करना वस्तुतः विचारशील होना है ही नहीं। इस तरह के किसी विद्यालय के लिए खास महत्त्व इस बात का होता है कि एक ऐसा परिवेश निर्मित किया जाए जहां भय न हो, जहां छात्रों को बाध्य न किया जाता हो या उन्हें धमकाया न जाता हो, उनकी आपस में तुलना न की जाती हो, ताकि वहां स्वतंत्रता बनी रहे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वहां छात्र जो चाहे करने के लिए स्वतंत्र हैं, इसका तात्पर्य यह है कि विकास करने की, समझ बढ़ाने की, विचार करने की,

जीवन को इस तरह से जीने की स्वतंत्रता वहां उन्हें मिले, जिसमें मन कभी आदत से बंधकर काम नहीं करे, जिसमें मन परिपूर्ण रूप से सक्रिय रह सके—वह सक्रियता केवल गपशप करने की गतिविधि या पढ़ते रहने की गतिविधि भर न होकर जिज्ञासा की गतिविधि हो, पता लगाने की प्रक्रिया हो, वास्तविक को खोजने और सत्य क्या है इसे जानने के लिए हो। तब मन आश्चर्यजनक रूप से सृजनशील हो जाता है।

निश्चित ही, शिक्षा का कार्य यही है, है कि नहीं?—आपमें अच्छी या खराब आदतें डालना या आपके मन को परंपरा से बंधकर जीने देना नहीं, बल्कि इस दिशा में आपकी मदद करना कि आप सारी आदतों और रूढ़ियों को तोड़कर उनसे मुक्त रह सकें ताकि आपका मन शुरू से आखिर तक स्वतंत्र रहे, अत्यंत सक्रिय, जीवंत रहे, सारी चीज़ों को नये सिरे से देख सके। आप जानते ही हैं कि जब आप प्रतिदिन सुबह या शाम के समय नदी को देखते हैं तो हफ्ते भर बाद आपको उसमें सौंदर्य दिखाई देना बंद हो जाता है, क्योंकि आप उसके अभ्यस्त हो चुके होते हैं। आपका मन, उसका आदी हो जाता है और हरे-भरे खेतों और हवा में हिलते-डुलते वृक्षों के प्रति आपका मन उतना संवेदनशील नहीं रह जाता जैसा शुरू में था, आप उन पर दृष्टि डाल कर गुजर जाते हैं। आप पहले की तरह से संवेदनशील नहीं रहते हैं, पहले की तरह सतर्क नहीं होते हैं। आप प्रतिदिन उन गरीब स्त्रियों को वहां से गुजरते देखते हैं और आपका ध्यान इस ओर कभी नहीं जाता कि उनके वस्त्र फटे हुए हैं और वे कितना बोझ ढोती हैं। उन पर आपकी दृष्टि तक नहीं पड़ती क्योंकि आप उन्हें देखने के आदी हो चुके हैं। किसी भी चीज़ का आदी होने पर उसके प्रति असंवेदनशीलता बढ़ जाती है। यह एक विनाशकारी प्रक्रिया होती है, क्योंकि इसमें रहने वाला मन, मंदबुद्धि, जड़बुद्धि मन हो जाता है। इसीलिए शिक्षा का कार्य यह है कि मन को संवेदनशील होने में, सतर्क होने में सहायता करे ताकि यह आदत या परंपरा में बंधकर कार्यरत न रहे, ताकि यह किसी भी चीज़ का अभ्यस्त न हो जाए, ताकि यह सदैव ताज़ा और जीवंत रहे। इसके लिए बहुत अधिक अंतर्दृष्टि होना, बहुत ज़्यादा समझ होना आवश्यक है।

प्रश्न : हमें क्रोध क्यों आता है?

कृष्णमूर्ति : इसके कई कारण हो सकते हैं। स्वास्थ्य की गड़बड़ी के कारण ऐसा हो सकता है, पर्याप्त नींद न होने से ऐसा हो सकता है, उचित प्रकार का भोजन न करने से ऐसा हो सकता है। यह शारीरिक प्रतिक्रिया का एक प्रकार हो सकता है, उत्तेजना के कारण संभव है या इसका कोई अधिक गहरा कारण भी हो सकता है। चूंकि आप किसी कारण से घुटन का अनुभव करते हैं—आप कुंठित, अवरुद्ध, बंधा-बंधा सा अनुभव करते हैं, और आपको उससे मुक्त होने का रास्ता नहीं दिखाई देता है इसलिए आप उस तनाव को दूर करने की चेष्टा करते हैं, आप क्रोधित हो उठते हैं।

क्रोध केवल नियंत्रण से दूर नहीं होता। जैसे ही आप इस पर नियंत्रण करने लगते हैं आप एक आदत निर्मित कर लेते हैं। आपको मालूम है कि अधिकांश लोगों द्वारा किया जाने वाला तथाकथित ध्यान आदत डाल लेने का ही एक रूप होता है। जिस समय वे ध्यान करने में लगे होते हैं वे एक ऐसे मन का निर्माण कर रहे होते हैं जिसे परेशान न किया जा सके, जो आदत के ढांचे में कार्य करता रहे, परंतु ऐसा मन यह कभी न जान पाएगा कि सत्य क्या है, ईश्वर क्या है। जब आप क्रोध पर मात्र नियंत्रण पाने का यत्न करते हैं तो यह प्रक्रिया आदत बनाने का ही एक रूप होती है। मैं जो कह रहा हूं शायद उसे आप समझ नहीं पा रहे हैं। यदि बड़े लोग इसे समझ पा रहे हों, तो शायद वे बच्चों को इसके बारे में सावधानी से, सोच-समझकर, धीरे-धीरे प्यार से समझा सकेंगे। वे उन्हें स्पष्ट कर पाएंगे कि नियंत्रण करने की प्रक्रिया समूचे रूप में क्या होती है, और यह आदत का रूप कैसे ले लेती है, जिसके फलस्वरूप मन असंवेदनशील हो जाता है; वे यह समझा सकेंगे कि क्रोध क्यों उत्पन्न होता है, उसके केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक कारण भी होते हैं; मन जो कि संभवतः संवेदनशील होता है, किस प्रकार भय, इच्छाओं और अनेक प्रकार की तुष्टियों की वजह से अपने आप को असंवेदनशील, मंद बना डालता है, ओर ऐसा मन किस प्रकार केवल आदत, नियंत्रण और दमन की भाषा में ही सोचा करता है।

एक ऐसा मन जो अत्यंत सतर्क है, सजग है, वह भी किसी अवसर पर धैर्य छोड़ सकता है पर उसका महत्त्व नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मन के प्रति सजग रहा जाए, इस बात पर ध्यान रखा जाए कि यह आदत में बंध कर कार्यरत न हो, यह असंवेदनशील, मंद, थका हुआ, मृतप्राय न हो।

एक श्रोता : व्यर्थ के विचार चलते रहने के कारण मैं एकाग्र नहीं हो पाता और एकाग्रता न हो पाने से मैं पढ़ नहीं सकता।

कृष्णमूर्ति : व्यर्थ के विचार चलते रहने के कारण आप पढ़ नहीं पाते ऐसा नहीं है, बल्कि आप जो कुछ पढ़ रहे हैं उसमें आपकी रुचि नहीं होती इसलिए आप पढ़ नहीं पाते। जब आप कोई जासूसी कहानी, या उपन्यास पढ़ रहे होते हैं उस समय तो आपके विचार इधर-उधर नहीं भटकते—कि भटकते हैं? आप जो कुछ पढ़ रहे होते हैं यदि उसमें आपकी रुचि हो तो कोई भी दूसरा विचार आपको तंग नहीं करता—या करता है? इसके विपरीत होता यह है कि उस पुस्तक को छोड़ पाना ही कठिन होता है। क्या आप जासूसी कथाएं पढ़ते हैं? क्या आप उपन्यास पढ़ते हैं? नहीं पढ़ते? फिर आप क्या पढ़ते हैं? वही जिसे पढ़ने के लिए आपसे, आपकी कक्षा में कहा जाता है? उन सारी चीज़ों में यदि आपका मन न लगता हो तो ऐसा होना स्वाभाविक सी बात है, आप उन्हें पढ़ने के लिए अपने आपको मजबूर कर रहे हैं। जब आप पढ़ने के लिए स्वयं को बाध्य करते हैं तो

आपका मन उचट जाता है—शिक्षा का यह एक गलत तरीका है। लेकिन यदि बिलकुल बचपन से ही आपको इस बात का पता लगाने का अवसर मिलता रहे कि आपकी रुचि किस बात में है, तो आप एकाग्रता के लिए प्रयास किए बिना ही, स्वाभाविक रूप से, सरलतापूर्वक एकाग्र हो सकेंगे। किंतु पुराने छात्रों के लिए दुर्भाग्यवश यह न हो सका क्योंकि उन्हें पुरानी विधि से पढ़ने और अध्ययन के लिए मजबूर किया गया और उस रीति से उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई।

अब, जब आपका मन इधर-उधर भटकता है, तब यह समस्या आती है : मैं अपने विचारों को नियंत्रण में कैसे रखूं? आप ऐसा नहीं कर सकते हैं। अपने विचारों पर काबू पाने की कोशिश मत कीजिए, बल्कि इसका पता लगाएं कि आपकी दिलचस्पी किस बात में है। दुर्भाग्यवश आपको अपनी परीक्षाएं भी पास करनी हैं। आपसे इसकी उम्मीद की जाती है। किंतु यदि आप सचमुच अपने मन के तौर-तरीकों को समझना चाहते हैं, तो मन को इस बात का पता लगाना होगा कि उसे किस बारे में दिलचस्पी है, कुछ दिनों के लिए या कुछ वर्षों के लिए ही नहीं, बल्कि जीवनपर्यंत गहरी रुचि। जब मन को यह मालूम हो जाएगा कि इसकी रुचि किसमें है तो एकाग्रता की समस्या नहीं रहेगी; यह स्वभावतः एकाग्र हो जाएगा।

प्रश्न : ध्यान करने का परिणाम क्या होता है?

कृष्णमूर्ति : इसका परिणाम प्रायः वही होता है जो हम इससे चाहते हैं। आप समझ रहे हैं? यदि मैं शांति के लिए ध्यान करता हूं तो मुझे शांति मिलेगी। लेकिन यह शांति वास्तविक शांति न होगी, यह एक ऐसी चीज़ होगी जिसे मेरे मन ने निर्मित किया होगा। यदि मैं एक ईसाई हूं, यदि मैं ईसाई की तरह से ध्यान करता हूं तो मेरा मन एक प्रकार का चित्र बनाएगा। यदि मैं एक हिंदू भक्त हूं और ध्यान करता हूं तो मेरा मन एक प्रतिमा बनाएगा और उसे मैं एक जीती-जागती प्रतिमा की तरह देखूंगा। मेरा मन अपनी इच्छा के अनुरूप कुछ प्रक्षेपित करता है और उसे मैं जीवित वस्तु की भांति देखता हूं, लेकिन यह आत्म-सम्मोहन ही है। मन अपने आप को ही धोखा देने लगता है। यदि मैं हिंदू हूं और मुझे असंख्य बातों पर विश्वास है, तो मेरे विश्वास ही मेरी विचार-प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं, करते हैं न? मान लीजिए मैं एक भक्त हूं और मैं एक स्थान पर बैठ कर कृष्ण का ध्यान करने लगता हूं, इसका क्या परिणाम होता है? मैं मन ही मन कृष्ण की एक प्रतिमा बना लेता हूं। हिंदुत्व में पला-बढ़ा मेरा मन कृष्ण की प्रतिमा से अच्छी तरह से परिचित है, उसमें कृष्ण की कोई छवि होती है और उस छवि पर मैं ध्यान करता हूं और वह ध्यान मेरी संस्कारित विचारधारा की ही एक प्रक्रिया हुआ करता है। अतः यह ध्यान नहीं बल्कि विचार करने की निरंतर आदत ही होता है। हो सकता है मुझे नृत्य करते हुए कृष्ण का दर्शन होने लगे, परंतु इस तरह से होने वाला दर्शन मेरी परंपरा का ही परिणाम है।

जब तक मैं इस परंपरा में रहता हूं तब तक मुझे यथार्थ वस्तु का बोध नहीं हो पाएगा। इसलिए मेरे मन को चाहिए कि वह परंपरा से अपने को मुक्त कर ले। वही वास्तविक ध्यान है।

मन द्वारा अपने आपको हर प्रकार की संस्कारबद्धता से मुक्त कर लिए जाने की प्रक्रिया ध्यान है, फिर वह संस्कारबद्धता हिंदू या ईसाई, मुस्लिम या बौद्ध अथवा कम्युनिस्ट, किसी भी परंपरा का परिणाम क्यों न हो। तब, जब मन मुक्त हो जाता है, वास्तविकता का आविर्भाव हो पाता है। अन्यथा ध्यान केवल अपने आप को धोखा देना हो जाता है।

प्रश्न : जब कोई भिखारी हमारी ओर आता है तब हम उसके लिए दुखी क्यों होते हैं और जब वह हमारे पास से जाने लगता है तो हमें क्रोध क्यों आता है?

कृष्णमूर्ति : मुझे इस बारे में संदेह है कि आप प्रश्न के दूसरे हिस्से को ठीक से व्यक्त कर पा रहे हैं। जब आप यह कहते हैं कि आपके पास से उसके चले जाने पर आपको क्रोध आता है तो शायद आपका तात्पर्य कुछ और है। क्या आप उसके वहां से चले जाने पर गुस्सा होते हैं या इसलिए गुस्सा होते हैं कि आपसे उसे कुछ न मिलने पर वह आपको भला-बुरा कहता है? मैं एक भिखारी की तरह से आपके पास आता हूं और आप मुझे कुछ दे देते हैं और इस प्रकार से देने में आप प्रसन्नता अनुभव करते हैं, आप महसूस करने लगते हैं कि आप भी कुछ हैं, क्योंकि आपने किसी को कुछ दिया है। हममें से ज़्यादातर लोगों के लिए दान करना गर्व की बात होती है, है न? मान लीजिए आप उसे कुछ भी नहीं देते हैं तो क्या होगा? वह आपसे रुष्ट हो जाता है और उसके फलस्वरूप आप भी रुष्ट हो जाते हैं। शायद आप परेशान होना नहीं चाहते इसलिए आप क्रुद्ध हो जाते हैं।

आपके प्रश्न को मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा। क्या आप यही कहना चाहते हैं? जब आप किसी व्यक्ति को, एक भिखारी को देखते हैं तो आपमें दया की भावना आती है, क्योंकि उसके प्रति आपमें सहानुभूति उमड़ने लगती है और आप महसूस करने लगते हैं कि ऐसी स्वाभाविक सहानुभूति होना एक अच्छी बात है, लेकिन उसी समय आपको उलझन भी होने लगती है, क्योंकि वह दरिद्र है जबकि आप संपन्न हैं, आपको यह भी अच्छा नहीं लगता कि वह आपको परेशान करे, अतः आप क्रुद्ध हो जाते हैं। क्या आपका मतलब यह है? यहां पर कई बातें हो रही हैं—कुछ देने की स्वाभाविक सहानुभूति की भावना का हृदय में उठना, व्याकुलता महसूस होना; रोष की, झुंझलाहट की भावना पैदा होना क्योंकि आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं, यह महसूस होना कि समाज सड़ रहा है और आप कुछ नहीं कर सकते, आपके अपने ही स्वभावगत भय कि कहीं उसकी बीमारी आपको न लग जाए। जब आप यह कहते हैं कि भिखारी के आपके पास

से जाने पर आपको क्रोध क्यों आता है तो इससे आपका क्या तात्पर्य है मैं नहीं समझ पा रहा हूं।

प्रश्न : क्रोध करने की आदत एवं प्रतिशोध लेने की आदत—क्या ये दो परस्पर भिन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं हैं या मौलिक रूप से एक होते हुए भी उनकी तीव्रता भिन्न होती है?

कृष्णमूर्ति : क्रोध तो तत्काल ही कार्य करने लगता है, परंतु यह जल्दी ही बीत जाता है और इसे भुला भी दिया जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिशोध लेने की प्रवृत्ति में एक प्रकार के संग्रह का होना देखा जा सकता है, चोट पहुंचने की स्मृति बनी रहती है, यह अनुभूति भीतर बनी रहती है कि आपके रास्ते में बाधा डाली गई है, आपके रास्ते में रुकावट डाली गयी है, रोड़े अटकाए गए हैं। उसी अनुभूति को स्मृति में जमा कर रखा जाता है और अवसर मिलते ही आप उस व्यक्ति से बदला लेने के लिए तैयार हो जाते हैं, आप हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। मुझे लगता है कि इन दोनों में भेद है। क्रोध तात्कालिक रूप से उठता है और उसे भुला दिया जाता है जबकि प्रतिशोध लेने की प्रवृत्ति इस बात की सूचक है कि वस्तुतः क्रोध इकट्ठा किया गया है, रोष एकत्र होता गया है, बदले में चोट पहुंचाने की भावना जमा होती चली गई है। यदि आप मुझसे अधिक ताकतवर हैं और आप मुझसे कठोर वचन कहते हैं तो मैं आप पर क्रोध नहीं कर सकता क्योंकि तब मुझे नौकरी जाने का खतरा महसूस होता है। इसलिए मैं इसे एकत्र कर रखता हूं, आपके द्वारा किया जाने वाला सारा अपमान मैं चुपचाप सह लेता हूं और जैसे ही मुझे मौका मिलता है मैं आपको चोट पहुंचाकर बदला ले लेता हूं।

प्रश्न : मैं भगवान को कैसे पा सकती हूं?

कृष्णमूर्ति : एक छोटी सी बच्ची पूछ रही है कि वह भगवान को कैसे पा सकती है। शायद वह कोई दूसरा प्रश्न पूछना चाहती है पर उसे इस समय वह भूल गई है।

इस प्रश्न का उत्तर देते समय हम उस छोटी सी बच्ची से एवं बड़े लोगों से बातें कर रहे हैं। शिक्षक कृपया मन लगाकर ध्यानपूर्वक सुनें और इस बालिका को इसका उत्तर हिंदी में बताएं क्योंकि उसके लिए यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है।

क्या आपने सूरज की धूप में किसी पत्ते को, किसी अकेले पत्ते को नृत्य करते देखा है? क्या आपने जल की सतह पर चंद्रमा की चांद्रनी को देखा है और क्या किसी रात्रि में आपने पूर्णिमा के नवोदित चंद्र को देखा है? क्या आपने चिड़ियों को उड़ते हुए देखा है? क्या आपको अपने माता-पिता से गहन प्रेम है? मैं भय, बेचैनी या आज्ञाकारिता की बात नहीं कर रहा हूं, मैं तो उस भावना के बारे में कह रहा हूं, उस सहानुभूति के बारे में कह रहा हूं

जो किसी भिखारी को देखकर, किसी पक्षी को मरता हुआ देख कर या किसी शव को जलाया जाता देख कर आपके मन में उठती है। यदि आप इन सब बातों का अवलोकन करते हैं और आपमें गहरी सहानुभूति और समझ हैं—बड़ी-बड़ी कारों में बैठकर धूल उड़ाते चले जाने वाले संपन्न लोगों और उस दीन भिखारी के प्रति, उस मरियल अस्थि-पिंजर से घोड़े के प्रति जिसे इक्के में जोता गया है, इस सबको जानते-महसूस करते हुए आपमें ऐसी कोई भावना उठती है जो केवल शाब्दिक न होकर आपके हृदय में होती है, यह भावना कि यह विश्व हमारा है, आपका और मेरा है, न कि केवल किसी समृद्ध व्यक्ति का या कम्यूनिस्ट का, इस विश्व को हमें सुंदर बनाना है—यदि आपको यह सब महसूस होता है तो उसके मूल में कोई अधिक गहरी बात छिपी है। पर उस गहराई को जो मन से भी परे है —उसे समझने के लिए मन को मुक्त, मौन होना होगा और मन इन तमाम बातों को समझे बिना मौन नहीं हो सकता। इसलिए आपको ईश्वर क्या है इसकी खोज करने के बजाय अपने आसपास से ही इस बारे में शुरुआत करनी होगी।

प्रश्न : हम अपने दोषों को हमेशा के लिए कैसे दूर कर सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : आप यह देख सकते हैं कि मन किस प्रकार से सुरक्षित रहना चाहता है। यह किसी प्रकार का व्यवधान नहीं चाहता। यह सदा-सदा के लिए पूर्ण रूप से सुरक्षित बना रहना चाहता है, और ऐसा मन जो पूरी तरह से सुरक्षित बना रहना चाहता है, जो हमेशा के लिए अपनी कठिनाइयों को मिटा देना चाहता है, अवश्य ही इसके लिए कोई उपाय खोज लेगा। यह किसी गुरु के पास जाएगा, किसी मत और विश्वास की शरण लेगा, यह किसी आश्रय को खोज लेगा और उसके सहारे रहेगा, उससे बंध जाएगा, और इस तरह मन असंवेदनशील, मृत और क्लांत, जर्जर हो जाएगा। जैसे ही आप कहते हैं, “मैं अपनी सारी कठिनाइयों पर सदा-सदा के लिए विजय पा लेना चाहता हूं” आप उन्हें जीत तो लेंगे परंतु आपकी सारी चेतना, आपका मन मृत हो चुका होगा।

हम कठिनाइयां नहीं चाहते, हम सोच-विचार करना नहीं चाहते, हम खोजना, पता लगाना नहीं चाहते। मैं चाहता हूं कि कोई मुझे बताए कि मुझे क्या करना है। चूंकि मैं नहीं चाहता कि मुझे कठिनाई हो इसलिए मैं किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाता हूं जिसे मैं महापुरुष या महान स्त्री या संत आदि समझता हूं और वह मुझसे जैसा कहे वैसा मैं यथावत करता हूं जैसे कोई बंदर नकल करता है, जैसे कोई ग्रामोफोन बार-बार दोहराता है। ऐसा करने पर ऊपरी तौर पर मुझे कोई कठिनाई नहीं रह जाती क्योंकि मैं सम्मोहित सी अवस्था में होता हूं। लेकिन अचेतन तल पर, अपने भीतर की गहराइयों में, आखिरकार इनका विस्फोट सुनिश्चित ही है, भले ही मैं आशा करता रहूं कि ऐसा कभी न होगा। देखिए मन कोई आश्रय, कोई शरण चाहता है,

कोई ऐसी वस्तु जिसका सहारा वह ले सके—कोई विश्वास, कोई दिव्यात्मा, गुरु, कोई दार्शनिक सिद्धांत, कोई गतिविधि, कोई राजनीतिक विचार, कोई धार्मिक सिद्धांत इत्यादि। किसी भी तरह का विघ्न सामने आते ही यह उनकी शरण में जाना या ऐसे ही किसी सहारे को पकड़े रखना चाहता है। परंतु मन के अशांत होने में समस्या क्या है? विघ्न आने पर, अशांत होने पर ही, अवलोकन और जांच-पड़ताल करते हुए मन समस्या को समझ पाएगा।

एक महिला पूछती हैं, 'क्या बखेड़ों से घबराए हुए मन के लिए समझ पाना संभव है?' एक ऐसा मन जो अशांत है और जो उस अशांति से भागने की चेष्टा कर रहा है, उसके लिए समझना कभी संभव नहीं होगा। पर वह मन जो अशांत है और जानता है कि वह अशांत है, और जो धैर्यपूर्वक इस अशांति के कारणों की छानबीन करने लगता है, बिना स्पष्टीकरण का सहारा लेते हुए, बिना कोई निंदा किए उनकी जांच करता है, अवश्य समझ पाता है। परंतु जो मन कहता है, 'मैं अशांत हूं, मैं अशांत नहीं होना चाहता इसलिए मैं अशांत न होने के लिए ध्यान करूंगा', ऐसा मन अवश्य ही सतही है, मूढ़ है।

प्रश्न : आंतरिक सौंदर्य क्या है?

कृष्णमूर्ति : क्या आप बाहरी सौंदर्य से परिचित हैं? जब आप किसी सुंदर भवन को या खूबसूरत वृक्ष को देखते हैं, जब आप एक सुंदर पत्ती को, खूबसूरत पेंटिंग को, किसी सुंदर व्यक्ति को देखते हैं तो क्या महसूस करते हैं? आप कहते हैं यह 'सुंदर' है। 'सुंदर' से आपका क्या अभिप्राय होता है? बाह्य सुंदरता को आप देख सकें इसके लिए यह आवश्यक है कि आपके भीतर भी कुछ-न-कुछ सुंदर हो, होना चाहिए न? आप समझ रहे हैं न? कृपया प्रश्न पूछने वाले बालक को यह बताएं। जो संबंधित शिक्षक, छात्रावास के प्रभारी आदि हों कृपया ध्यान से सुनें और इतना कष्ट उठाएं कि इन बालक-बालिकाओं से इन सब बातों के बारे में चर्चा करें। प्रतिदिन लगने वाली कक्षाओं से यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

कृपया ध्यान दें। एक बालक यह जानना चाहता है कि सारी तकलीफों से हमेशा के लिए मुक्त होने का क्या उपाय है। दूसरा यह जानना चाहता है कि आंतरिक सुंदरता क्या होती है, और जब मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आप बाहरी सुंदरता को जानते हैं तो आप सभी हंसने लगते हैं। परंतु यदि आप सुंदर और सौम्य की पहचान रखते हैं, यदि आपमें सुंदरता की भावना विद्यमान है, तो आपमें सहानुभूति होती है, आपमें संवेदनशीलता होती है, आप जो कुछ भी देखते हैं उसकी प्रशंसा का भाव आपमें होता है—फिर वह चाहे कोई भव्य पर्वत हो या कोई रमणीय दृश्य हो। सौंदर्य की प्रशंसा कर पाने के लिए आपके अपने ही भीतर कुछ ऐसा होना चाहिए जो उसको परख सके, और संभवतः आंतरिक सौंदर्य वही है। जब आप अपने से

बाहर भलाई का, उदारता का दर्शन कर पाते हैं, कोई प्यारी वस्तु देख पाते हैं तो आपके भीतर भी उसे होना चाहिए। जब आप गंगा पर बने रेल पुल के मेहराब की खूबसूरती निहारते हैं तो आपके भीतर भी निश्चित ही ऐसा कुछ होता है जो उस मेहराब का सौंदर्य देख रहा होता है। हममें से अधिकांश भीतर या बाहर कहीं भी सौंदर्य नहीं देख पाते हैं क्योंकि यह हमारे भीतर ही नहीं होता; अपने भीतर हम नीरस, रिक्त और बोझिल होते हैं और इसलिए हमें किसी भी चीज़ में कोई सौंदर्य नहीं दिखाई देता, पुल पर से गुज़रती रेलगाड़ी का शोर हम नहीं सुनते जिसकी अपनी ही एक खास सुंदरता होती है। जब आप किसी बात के आदी हो जाते हैं तो उसकी अर्थवत्ता आपके लिए मानो खो जाती है।

8 जनवरी 1954

पहल

हम लोग भय के बारे में चर्चा करते रहे हैं और मेरा विचार है कि यदि हम इसमें और गहराई तक जा सकें, तब शायद हममें पहलकदमी के बारे में समझ उजागर हो पाए। क्या आप जानते हैं कि पहल करने का अर्थ क्या होता है? पहल करना यानी अपनी ओर से शुरुआत करना। जैसे-जैसे मैं इस पर बातचीत करूंगा, मैं इसे और भी स्पष्ट करता चलूंगा।

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि भारत जैसे प्राचीन देशों में—जलवायु, जनसंख्या, गरीबी आदि कारणों से—परंपरा और सत्ता-प्रामाण्य का सोच-विचार पर नियंत्रण रहा है? क्या आपने खुद ही इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि कैसे आप अपने शिक्षक, माता-पिता और अभिभावक की आज्ञा के अनुसार चलना चाहते हैं, किसी आदर्श, किसी गुरु का अनुसरण करना चाहते हैं? आज्ञापालन करने की यह गहरी भावना, अनुकरण की यह प्रवृत्ति, इस बात की ज़रूरत महसूस करना कि कोई हमें बताए कि हमें क्या करना है—क्या यही सत्ता को जन्म नहीं देता है? क्या आप जानते हैं कि 'सत्ता' क्या है? इसका तात्पर्य है कोई ऐसा जिससे आप दिशा-निर्देश पाने की उम्मीद करते हों, जिसकी आज्ञा को पूरा करना चाहते हों, जिसका अनुकरण करना चाहते हों। चूंकि आप खुद ही भयभीत हैं, क्योंकि आप खुद दुविधा में हैं, इसलिए आप किसी सत्ता का निर्माण कर लेते हैं। और एक बार इस प्रकार की कोई सत्ता खड़ी कर लेने के बाद आप केवल उसका अनुकरण ही नहीं करते बल्कि आप यह चाहने लगते हैं कि अन्य लोग भी वैसा ही करें, स्वयं अनुकरण करने में तथा दूसरों को भी अनुकरण करने के लिए बाध्य करने में आपको एक तरह का आनंद आने लगता है।

मैं नहीं जानता कि आपने कभी अपने आपमें दस बात पर ध्यान दिया है या नहीं, कि आज्ञापालन करने की इस इच्छा के मूल में, अनुकरण करने, नकल करने, किसी अन्य की इच्छाओं को यथावत पूर्ण करने के पीछे भय छिपा होता है—यह भय कि कहीं अनुचित कार्य न हो जाए, मूल न हो जाए। इसलिए सत्ता-प्रामाण्य किसी भी प्रकार की स्वतःप्रेरणा को, पहलकदमी को, खत्म कर देता है। पहलकदमी का अर्थ होता है यह जानना कि किसी भी कार्य को सरलतापूर्वक, स्वाभाविक तरीके से, स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं ही कैसे किया जाए। हममें से अधिकांश में यह कमी इसलिए होती है क्योंकि हमारे अंदर की सृजनात्मकता को निरंतर खत्म किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, आप जिन अधिकार संपन्न लोगों से घिरे हैं, पुरानी पीढ़ी के वे लोग, जो यह समझते हैं कि उन पर जो उत्तरदायित्व है और जिसे वे बखूबी निभाना जानते हैं—हालांकि वे कुछ भी नहीं जानते—और जो आपको नियंत्रित कर रहे होते हैं, उन्हें यह लगता

है कि यदि आपको अपने से कुछ करने दिया जाए तो आप कुछ-न-कुछ शैतानी करेंगे, तोड़-फोड़, बरबादी, उपद्रव करेंगे, नुकसान करेंगे। लेकिन इस प्रकार अपनी ओर से कुछ करने की जो सहज प्रेरणा आपमें होती है, बिना किसी से पूछे, बिना किसी के द्वारा आपको यह बताए जाने के कि आपको क्या करना है—कुछ करने की जो उमंग आपमें होती है वह खो जाती है। इसलिए धीरे-धीरे, किसी भी कार्य को करने की जो भावना आपमें इसलिए होती है कि आपको उन कामों को करना अच्छा लगता है, लुप्त होने लगती है, खत्म हो जाती है।

क्या सड़क पर चलते हुए ऐसा हुआ है कि रास्ते पर पड़े किसी पत्थर को, कागज के टुकड़े को या फटे-पुराने कपड़े को आपने उठाकर एक ओर रख दिया हो, या अपनी ही खुशी से कोई पौधा लगाया हो और उसकी देखभाल की हो? हालांकि यह सब करने के लिए आपसे कोई कहता नहीं पर आप अपनी रुचि से इसे करने लगते हैं, यही है पहल करना। जब आपको ऐसा लगता है कि किसी चीज़ को ठीक करना ज़रूरी है तो आप उसे ठीक करने लगते हैं, जब आपको लगता है कि कोई काम किया जाना है तो बिना इसके कि कोई आपको बताए कि क्या करना है आप उसे करते हैं, भले ही वह काम आपके रसोईघर का हो, बगीचे का हो या सड़क का ही क्यों न हो। धीरे-धीरे आपका मन भय से मुक्त होने लगता है, सत्ता से मुक्त होने लगता है, फिर आप बहुत से काम अपने आप ही करना शुरू कर देते हैं। मैं सोचता हूं कि जीवन में ऐसा करना बहुत महत्त्व रखता है, अन्यथा आप केवल ग्रामोफोन बन कर रह जाते हैं—एक ही धुन को बार-बार दोहराते चले जाते हैं और स्वतंत्रता की भावना को पूरी तरह खो देते हैं।

लेकिन पुरानी पीढ़ी, अतीत की पीढ़ी, अपनी भावुक इच्छाओं के कारण, अपने भयों के कारण, असुरक्षा की आशंकाओं के चलते आपको सुरक्षा देना चाहती है—वे लोग आपको मार्गदर्शन देना चाहते हैं, आपको भयग्रस्त रखना चाहते हैं और भय के माध्यम से वे इस प्रकार अनेक कार्यों को स्वयं करने की, भूलें करने की, खोज-बीन करने की आपकी सहज स्वतंत्रता को धीरे-धीरे नष्ट कर डालते हैं, जिसके चलते आप इस असाधारण गुण को, पहलकदमी के साहस को, खोने लगते हैं। कृपया अपने अध्यापकों से इस सब के बारे में पूछिए। यह तो आप देख ही पा रहे होंगे कि हममें से कितने कम लोग वैसी स्वतंत्रता का लाभ ले पाते हैं—केवल तमाम तरह की गतिविधियों की स्वतंत्रता ही नहीं बल्कि उस स्वतंत्रता का भी जिसमें कुछ नया करने की चाह पैदा होती है। जब आप देखते हैं कि कोई व्यक्ति अकेला ही भारी बोझ लाद कर ले जा रहा है तो आप उसकी मदद करना चाहते हैं, चाहते हैं न? जब आप यह देखते हैं कि बर्तनों को साफ किया जा रहा है तो कभी-कभी आप स्वयं भी यह काम

करना चाहते हैं। आप अपने कपड़े खुद धोना चाहते हैं, आप स्वतंत्र होकर काम करना चाहते हैं। क्या आपको मालूम है कि इसका मतलब क्या है? यदि आप इस संबंध में सावधानी से अन्वेषण करें तो आप पाएंगे कि एक असाधारण सृजनशीलता आपमें जन्म ले रही है।

सत्य कोई बहुत दूर स्थित वस्तु नहीं है, जिसे खोजने की ज़रूरत हो, जिसे पाने के लिए संघर्ष किया जाय, जिसे इधर-उधर ढूंढ़ा जाय। यदि बिलकुल शुरू से ही, बचपन से ही आपको स्वतंत्रता प्राप्त है तो आप पाएंगे कि जैसे-जैसे आप परिपक्व होते हैं, विकसित होते हैं, वैसे-वैसे आपमें सभी बातें करने की उमंग बिना किसी के यह बताए कि क्या करना है, अपने आप, सरलता से, नैसर्गिक रूप से आने लगती है। कविता लिखना, निर्भीक रहना, तारों को देखना, अपने मन को भटकने देना, धरती के सौंदर्य को देखना और इस धरती के अद्‌भुत घटनाक्रम को देखना सृजनशीलता है। इस सब को महसूस कर पाना सचमुच एक असाधारण क्रियाशीलता है, और इसे आप उस स्वतंत्रता के बिना, उमंग की उस भावना के बिना नहीं महसूस कर सकते जिसमें किसी सत्ता और अधिकारवादिता के लिए कोई जगह नहीं होती, जिसमें आप बस आज्ञापालन करने के लिए कोई काम नहीं करते, बल्कि सब कुछ अपने से, सहज ढंग से, स्वतंत्रतापूर्वक, सरलता और प्रसन्नता से करते हैं।

जब आप इस बारे में गहराई से विचार करेंगे तो देखेंगे कि आप प्रत्येक चीज़ में गहन अभिरुचि लेने लगे हैं : आप किस प्रकार चलते हैं, किस प्रकार बातचीत करते हैं, लोगों को किस तरह देखते हैं और आपके हृदय में कौन सी भावनाएं उठती हैं—क्योंकि इन सभी बातों का बहुत अधिक महत्त्व है। यदि विद्यालय में पढ़ते समय आप में मेधा उपजी है, स्वतंत्रता की ऐसी भावना जन्मी है, तो कुछ महीनों के श्रमपूर्वक अध्ययन से ही आप अपनी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर पाएंगे। लेकिन वर्तमान स्थिति यह है कि आप सारा समय अपनी पढ़ाई और पुस्तकों की चिंता करने में ही बिता देते हैं और आपको पता ही नहीं रहता है कि आपके आस-पास क्या-क्या हो रहा है।

अपने सिरों पर गोबर के कंडों का, लकड़ियों का, घास-चारा इत्यादि का भारी बोझ लादकर आनेवाली उन ग्रामीण स्त्रियों की ओर आपने कभी देखा है? उनकी चाल में कैसी असाधारण सुंदरता होती है! क्या आपने तथाकथित खुशहाल लोगों को ध्यानपूर्वक देखा है? आपने कभी इस पर ध्यान दिया है कि वे कैसे बेडौल और मोटे हो जाते हैं, क्योंकि वे कभी किसी बात का अवलोकन नहीं करते। क्योंकि उन्हें केवल अपनी छोटी-मोटी चिंताओं से और अपनी इच्छाओं से मतलब होता है, उन्हें केवल यही चिंता रहती है कि वे अपने भयों और लालसाओं पर कैसे संयम रखें और इसलिए वे भयभीत रहते हैं, और भय में जीते हुए किसी-न-किसी मनुष्य

का अनुसरण करने के लिए, उसकी आज्ञा पर चलने के लिए मजबूर होते हैं, और इसी कारण वे सत्ता का निर्माण कर लेते हैं—एक ऐसी सत्ता जो एक तरफ पुलिस, कानूनी सलाहकार, सरकार आदि के रूप में होती है तो दूसरी तरफ आध्यात्मिक सत्ता के रूप में, ग्रन्थों, नेताओं और गुरुओं के रूप में होती है—और इस प्रकार से, अपने स्वयं के भीतर उनमें जीवन की, पीड़ाओं की और समझने-बूझने की सारी सुंदरता खो जाती है।

इसलिए यह बात अत्यंत ज़रूरी है कि इस विद्यालय में रहते हुए आप इन सभी चीज़ों को समझें। किसी दिन समय निकाल कर एक पौधा लगाइए और जब तक यहां हैं उसकी देखभाल कीजिए। इसका पता लगाएं कि किस प्रकार का पौधा यहां लगाया जाना चाहिए, उसे किस प्रकार की खाद आदि दी जानी होगी और उसकी ध्यान से देखभाल करें। तब आप पाएंगे कि आपके भीतर कुछ होने लगा है, आप केवल किन्हीं किताबों के ही नहीं, बल्कि धरती के भी निकट संपर्क में हैं। किसी काम में लग जाने के बाद पुस्तकों में आपकी रुचि शेष नहीं रहेगी, आपकी परीक्षाएं हो जाने के बाद आप उन पर नज़र तक न डालेंगे। लेकिन ये वृक्ष, ये ढेर सारे फूल, और जीवंत पशु-पक्षी सदैव आसपास रहते हैं। यदि आपमें इन सब के लिए संवेदनशीलता नहीं है तो आपमें उमंग नहीं होगी और आपके मन अत्यंत क्षुद्र, तुच्छ, सतही, ईर्ष्यालु और द्वेषपूर्ण हो जाएंगे। जब तक आप इस विद्यालय में हैं, तब तक यह बहुत आवश्यक है कि आप इन सभी चीज़ों पर ध्यान दें, ताकि आपके मन उनके प्रति खुल सकें।

वैज्ञानिक कहते हैं कि हम अपनी क्षमता का 15 प्रतिशत ही इस्तेमाल करते हैं। हम अपनी कुल सामर्थ्य का 15 प्रतिशत ही सोचने में लगा पाते हैं, और यदि हम अपनी क्षमता का 50 प्रतिशत इस्तेमाल करना सीख जाते तो शायद हम बहुत बड़ी मुसीबत खड़ी कर लेते। लेकिन यदि हम संवेदनशीलता, समझ, स्नेह और उदारता का पोषण न करें तो इस 15 प्रतिशत क्षमता से भी हम बहुत अधिक नुकसान और उपद्रव कर बैठेंगे, और यदि 50 प्रतिशत क्षमता हो जाए और हममें दयालुता न रहे तो हम न जाने क्या-क्या भयावह कृत्य कर डालेंगे।

यदि आप यह सब समझ रहे हैं तो आपमें भय से मुक्ति की भावना जाग्रत होगी। लेकिन यदि आप बस इन वार्ताओं को सुनते पर हैं और भूल जाते हैं, तो यह सब आप कैसे समझ पाएंगे? इन्हें आप इस तरह मत सुनिये। इन्हें इस प्रकार सुनिये कि आप निर्भयतापूर्वक जी सकें, किसी का अनुसरण किए बिना जी सकें, इस प्रकार सुनिये ताकि आप अभी से अपने को मुक्त पाएं, न कि बुढ़ापे में जाकर।

स्वतंत्र हो पाने के लिए बहुत अधिक प्रज्ञावान होना पड़ता है। यदि आप मूर्ख हैं तो आप स्वतंत्र नहीं हो सकते। इसलिए बहुत महत्त्वपूर्ण है कि जब आप बहुत छोटी उम्र के हों तब ही अपनी प्रज्ञा को जाग्रत हो जाने दें।

लेकिन जब आप डरे हुए हैं, जब किसी का अनुसरण कर रहे हैं या किसी की आज्ञा के अनुसार चल रहे हैं तो प्रज्ञा का जागना संभव नहीं है। यह सब समझने के लिए अत्यधिक विचार करने की ज़रूरत है और यही वास्तविक शिक्षा है। इस समय जैसी शिक्षा हममें से अधिकांश पा रहे हैं वह बेहद सतही है।

प्रश्न : जब तक चारों ओर इतना दुख है, तब तक हम सुखी संसार कैसे बना सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : जो कुछ अभी कहा जा रहा था उसे आपने ध्यान से सुना नहीं। आप अपने ही प्रश्न में उलझे रहे। जिस समय मैं बोल रहा था आपका मन इस उधेड़-बुन में खोया था कि अपना प्रश्न किस प्रकार से पूछा जाए, किन शब्दों का प्रयोग किया जाए। इस प्रकार आपका मन सवाल बुनने में खोया था और वास्तव में आपने कुछ सुना ही नहीं। मेरी बात के खत्म होने और आपके प्रश्न पूछे जाने के बीच कोई विराम, कोई अंतराल नहीं था। आप तुरंत प्रश्न ले कर आ गए—इसका मतलब है कि आपने सचमुच कुछ सुना नहीं, मैं उस समय जो कुछ कह रहा था वह आपको महत्त्वपूर्ण नहीं लगा और आप उस पर ध्यान नहीं दे पाए। यह जानना वास्तव में अत्यंत आवश्यक है कि लोगों को किस प्रकार ध्यान से सुना जाता है—किसी बूढ़े व्यक्ति के शब्दों को या आपके भाई व आपकी बहन के शब्दों को या सड़क से जा रहे किसी व्यक्ति की आवाज़ को। इसका तात्पर्य है कि जब आप सुन रहे हों तो आपका मन शांत हो, ताकि कोई नयी कल्पना, नयी अनुभूति, नयी समझ आपके भीतर जा सके। मैं जो कुछ कह रहा था वह सचमुच बहुत जटिल और कठिन है। उसे आपने यह अवसर नहीं दिया कि आपके मन को भेदकर वह भीतर आ सके, क्योंकि आपका मन तो इस उधेड़बुन में था कि मुझे एक सवाल तो ज़रूर पूछना चाहिए, उसे मैं किन शब्दों में रखूं। आप खिड़की के बाहर कुछ देख रहे थे। वहां देखना बहुत अच्छी बात है क्योंकि वहां से दिखाई पड़ने वाले वृक्ष सुंदर हैं—पर तभी आपने देखा कि कोई कमरे में आ रहा है, और आपका मन भी उस पेड़ पर लगी पत्तियों जैसा चंचल हो उठा। इसलिए, जैसा कि मैं अनुरोध कर चुका हूं, आप कृपया अपने प्रश्नों को लिख कर रख लिया करें और जब मेरा बोलना समाप्त हो जाय तो एक मिनट इंतज़ार करें और फिर अपना प्रश्न पढ़ें। तब मैं जो कह रहा हूं उसे आपका मन ठीक से सुन सकेगा और इस प्रकार आप सचमुच ध्यानपूर्वक सुन सकेंगे। मुझे लगता है कि यदि हमें ध्यानपूर्वक सुनना आ जाए तो हमें ध्यान देने के लिए हर समय प्रयास नहीं करना पड़ेगा और हम बहुत कुछ सीख सकेंगे।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया है, "एक सुंदर संसार क्या है, और जब चारों ओर इतना दुख है तो इसे किस प्रकार सुंदर बनाया जा सकता है?" हम इस बारे में मिलकर सोचें कि हम सभी लोग कुछ-न-कुछ करना क्यों चाहते

हैं? हमें लगता है कि सक्रिय रहना, कुछ-न-कुछ करते रहना, समस्या को समझने से कहीं अधिक ज़रूरी है। आप एक भिखारी को देखते हैं और आपमें यह प्रेरणा जागती है कि उसे आप कुछ दे दें। प्रायः यही होता है कि उसे कुछ देने के बाद आप इस बारे में सब कुछ भूल जाते हैं। आप गरीबी के प्रश्न को उसके समूचे रूप में नहीं समझते, आप उस बारे में, यहां और संसार में हर तरफ व्याप्त गरीबी के बारे में खोजबीन नहीं करते। आप जानते हैं कि लोग गरीब हैं, और आपको पता है कि हमारे भीतर भी गरीबी होती है। हो सकता है आपके पास ढेर सारा पैसा हो, आप सुख-सुविधापूर्ण घर में रहते हों, पर फिर भी यह संभव है कि भीतर में आप किसी भिखारी की तरह ही दरिद्र हों। यदि आपको इसकी अनुभूति होती है, तो आप भयभीत हो जाते हैं और किताबें पढ़ने लगते हैं, ज्ञान एकत्र करने लगते हैं। यह वैसी ही बात है जैसे कोई अपने शरीर को आभूषणों से लादे रहता है, महलों में रहता है और सोचता है कि वह समृद्ध है।

आप अनेक महान आध्यात्मिक शिक्षकों के वचन और भगवद्गीता आदि पढ़ना सीखते हैं और उनके उद्धरण देने लगते हैं। आप कुछ भला करना चाहते हैं पर उतने पर ही नहीं रुकते। आप सारे संसार की मदद करना चाहते हैं और उसके क्लेशों को समाप्त कर देना चाहते हैं। इसलिए आप किन्हीं समूहों आदि से जुड़ जाते हैं, आप किसी समाज से जुड़ जाते हैं, या कोई संस्था खड़ी करते हैं। आप किसी संस्था के सचिव हो जाते हैं, उसकी सदस्यता की निश्चित राशि जमा करते रहते हैं और धीरे-धीरे पूर्णतः उसमें खो जाते हैं। वस्तुतः आप संसार में नाम मात्र का ही कुछ भला कर पाते हैं।

वस्तुतः भलाई करने के लिए, भला करने की प्रक्रिया के दौरान आप जो हैं उसे गहराई से समझना होगा। आप जो भी काम करते हैं, उससे आपको स्वयं को समझने में मदद मिलनी चाहिए, अपने भीतर जाने में सहायता मिलनी चाहिए। तब, आपके रूपांतरण के साथ, आपके भीतर बदलाव आने के साथ एक अलग तरह के संसार के निर्माण की संभावना होती है। केवल कुछ भलाई कर लेना, या भलाई करने के लिए किसी समाज से जुड़ जाना उथली बात लगती है। लेकिन भला करने के काम में ही यदि आप जीवन की जटिलताओं को समझने लगते हैं तो उस समझ से बदलाव आ सकता है, एक ऐसा संसार सामने आ सकता है जहां दुख हो ही न।

प्रश्न : चोरी करने को बुरा क्यों समझा जाता है?

कृष्णमूर्ति : आप चोरी करने को बुरा क्यों समझते हैं? आपके पास एक घड़ी है और मैं उसे छीन लेता हूं। क्या आपकी दृष्टि में यह ठीक है? मैं आपसे आपकी कोई चीज़ ले लेता हूं, जो आपके पिता ने आपको दी है, या कहीं और से आपको मिली है। मैं इसे आपसे कहे बिना, आपको पता चले बिना ले लेता हूं। क्या यह सही काम है? हो सकता है कि लोभवश ही

आपने इस घड़ी को कहीं से पाया हो। किंतु मैं भी इतना ही लालची हूं, इतना ही लोभी हूं इसलिए मैं आपसे इसे छीन लेता हूं। इसे चोरी कहा जाता है। जाहिर सी बात है कि यह कोई अच्छा काम नहीं है, कि अच्छा काम है? आप देखते हैं कि कुछ लड़के-लड़कियों में चोरी करने की आदत होती है। बड़े लोग भी ऐसा किया करते हैं, हालांकि उनके पास रुपये-पैसे होते हैं, और वे सभी चीज़ें होती हैं जिनकी उन्हें ज़रूरत है, लेकिन चोरी करने की आदत उन पर हावी हो जाती है। वह एक तरह की बीमारी ही होती है। यह एक तरह का मनोविकार, मानसिक उलझन या गुत्थी ही है। उस उलझन को समझे बिना ही बड़े लोग आपको दंड देते हैं या आपको चोट पहुंचाते हैं और कहते हैं कि आपको चोरी नहीं करनी चाहिए, यह एक बहुत बुरी बात है और इसके लिए आपको जेल में भेजा जा सकता है। वे आपको भय दिखाते हैं और भय से यह उलझाव और जटिल हो जाता है और धुंधला, गहरा होने लगता है। यदि आपको इस बारे में समझाया जाता, यदि माता-पिता या शिक्षक थोड़ा कष्ट उठाकर आपको ठीक से स्पष्ट करते और इसकी निंदा न करते हुए, आपको डराए-धमकाए बिना समझाते तो शायद यह उलझाव दूर हो सकता है। एक कठिनाई यह है कि शिक्षकों और माता-पिता के पास इतना समय नहीं होता, उनमें इतना धीरज भी नहीं होता, उनके पास और भी कई बच्चे हैं, वे अच्छा परिणाम चाहते हैं, और उसे यथासंभव शीघ्र ही पाना चाहते हैं और इसलिए वे डराते हैं और उम्मीद करने लगते हैं कि बच्चे चोरी करना बंद कर देंगे। लेकिन प्रायः ऐसा नहीं होता। बच्चे चुपके-चुपके चोरी करना जारी रखते हैं।

मुझे लगता है कि इस तरह के विद्यालय में शिक्षकों को आपको ये सारी चीज़ें समझानी चाहिए। आप अपनी कक्षा में गणित या भूगोल पढ़ते हुए घंटे भर का समय बिता देते हैं। उसमें से दस मिनट निकाल कर आप उनसे इन समस्याओं की चर्चा क्यों नहीं करते? जब आप उनसे इन सारी चीज़ों पर गंभीरता से बात करने लगेंगे तो शिक्षकों और छात्रों की समझ बढ़ेगी, वे समझदार होने लगेंगे। मैं यह नहीं कहता कि शिक्षक समझदार नहीं हैं, पर वे इससे और भी अधिक समझदार होंगे।

प्रश्न : आत्मा क्या है?

कृष्णमूर्ति : आप सोचते हैं आपमें आत्मा है। आपको कैसे पता? देखिए, यही आपकी समस्या है। आप अपने माता-पिता से अनेक बातें सीख लेते हैं और उन्हें बार-बार दोहराते रहते हैं और फिर आप कहने लगते हैं, "हां, मेरे भीतर आत्मा है"।

आत्मा क्या है? आइए इस बारे में धीरे-धीरे पता लगाएं, और तब आपको यह स्पष्ट होने लगेगा। बनारस में, जो महाश्मशान कहलाता है, कितने ही लोग मरते हैं। आपने भी कभी कोई मृत पक्षी देखा होगा। एक पेड़ पर लगी हरी पत्ती, जो अभी सुंदर है, नाज़ुक है और नृत्य कर रही है,

सूखकर झर जाती है। इस सब को देख कर मनुष्य कहता है : 'सब कुछ विदा हो जाता है, सब कुछ खो जाता है, कुछ भी स्थायी नहीं है।' काले बाल सफेद हो जाते हैं, उम्र की शुरुआत में आप दस मील तक या उससे भी अधिक चल सकते हैं, लेकिन बाद में आप बस तीन मील ही चल पाते हैं। दौ सौ या तीन सौ बरसों से जीवित वृक्ष पर बिजली गिरती है और वह समाप्त हो जाता है।

कैलीफोर्निया में ऐसे भी कई वृक्ष हैं जो तीन से पांच हजार साल की आयु के हैं, पर वे भी मर जाएंगे। सब कुछ मिट जाता है, इनी-गिनी चीज़ें ही स्थायी रह पाती हैं।

अस्थायित्व की ऐसी आश्चर्यजनक दशा को देख कर मनुष्य कहता है, 'कुछ-न-कुछ तो ऐसा होना चाहिए जो कि स्थायी हो, जिसकी मृत्यु न हो, जो काल के स्पर्श से दूषित न होता हो।' और फिर वह ऐसी चीज़ों का आविष्कार करने लगता है जिनमें स्थायित्व हो, अपने स्वयं के मन से वह ईश्वर, आत्मा, परमात्मा आदि की सृष्टि कर लेता है। उसे यह दिखाई देता है कि वह तो अस्थायी है, इसलिए वह किसी ऐसी चीज़ की अभिलाषा करने लगता है जो स्थायी हो, जिसकी कभी मृत्यु न हो, जिसे कोई चुरा न सके। इस प्रकार उसका मन तरह-तरह के अनुमान लगाता है, और भय के चलते वह कल्पनाएं करने लगता है, चीज़ों को गढ़ने लगता है। वह कहने लगता है, आत्मा ही एक ऐसी चीज़ है जिसे मिटाया नहीं जा सकता। वह कहता है, 'मेरा शरीर तो मिट जाएगा, मैं मर जाऊंगा, मुझे शायद कीड़े-मकोड़े खा जाएंगे, पर मुझमें कोई ऐसी चीज़ अवश्य है जो अविनाशी है।' वह ऐसा वक्तव्य देता है, और वह अपने ही उस आविष्कार की पूजा करता है, वह उसके बारे में सिद्धांत रचता है, वह उस बारे में किताबें लिखता है, वाद-विवाद करता है, लेकिन वह इसका पता लगाने की कोशिश कभी नहीं करता कि क्या सचमुच कहीं कुछ स्थायी है? वह ऐसा कभी नहीं कहता, 'मैं जानता हूं कि प्रत्येक चीज़ अस्थायी है। मैं भी मरूंगा। मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा, रोग और जरा से सामना होगा। लेकिन मैं यह अवश्य पता लगाना चाहता हूं कि क्या इससे परे भी कुछ है या नहीं।'

अतः मैं कल्पनाएं न करूं, मैं यह न कहूं कि कोई आत्मा है या जीवात्मा या कुछ और। बल्कि इस बारे में खोजबीन करूं, पता लगाऊं। यदि खोजबीन करने के लिए मैं तैयार हूं तो इस अन्वेषण के जरिए, अपने डर और लोभ आदि को समझकर, अपने आप को समझकर, मैं और गहरे, अधिक गहराई तक जा सकता हूं और किसी ऐसी चीज़ का पता लगा सकता हूं जो केवल शब्दों में नहीं बंध सकती।

आप कहते हैं कि चरित्र ऐसी ही एक चीज़ है, और चरित्र ही आत्मा हो सकता है। परंतु आप क्या हैं? आपमें कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां हैं, हैं कि नहीं? कुछ खास व्यक्तिगत स्वभाव आदि हैं, कुछ अलग तौर-तरीके, पसंद-

नापसंद और इच्छाएं यह सभी आपमें है। आप कहते हैं, 'मैं वह सब कुछ हूं, पर जब मैं मर जाऊंगा तो मेरा क्या होगा? कुछ तो ऐसा होना चाहिए जो हमेशा जीवित रहे।' किंतु बिना पूरी खोजबीन किये, बिना इस विषय में खुद से पता लगाए आप किसी भी बात को स्वीकार मत कीजिए। दुर्भाग्य से आपका मन इधर-उधर उलझा हुआ है और आप अपने मन को जाग्रत नहीं कर रहे हैं ताकि वह इस समस्या की जांच-पड़ताल अपने आप कर सके। जब आप किसी बात को मान लेते हैं, जब आप विश्वास करने लगते हैं तो आप जांच-पड़ताल करना छोड़ देते हैं। इसलिए, सच्चे अर्थों में खोजबीन करने के लिए यह आवश्यक है कि मन प्रखर रूप से जागा हुआ हो। लेकिन यदि आप किसी सत्ता के पीछे चल रहे हैं, या आप भयभीत हैं तो मन का इस दशा में होना संभव नहीं है। यदि आप मान्यताओं पर रुक जाते हैं तो आप खोज नहीं सकते।

प्रश्न : खुशी क्या है?

कृष्णमूर्ति : एक छोटा बालक पूछ रहा है 'खुशी क्या है?' मुझे आश्चर्य हो रहा है कि उसने ऐसा प्रश्न क्यों पूछा है! या तो वह नहीं जानता कि खुशी क्या चीज़ होती है, और यदि ऐसा है तो यह बड़ी ही दुखद बात होगी, या फिर वह जानता है कि खुशी क्या है और उस बारे में और अधिक जानने के लिए उत्सुक है। मैं जो कहने जा रहा हूं उसे वह बालक नहीं समझ पाएगा क्योंकि मुझे अफसोस है कि मुझे हिंदी बोलना नहीं आता, लेकिन उस बालक की देखभाल की ज़िम्मेदारी जिन लोगों पर है वे मेहरबानी करके ध्यान से उसे यह सब समझाएं, और प्रश्न को समझने में उसकी मदद करें।

वह बच्चा यह जानना चाह रहा है कि खुशी क्या होती है। जब आप किसी फूल को देखते हैं तो आपमें एक भावना उठती है, उठती है न? जब आप सूर्यास्त देखते हैं, जब आप किसी भले मनुष्य को देखते हैं, जब आप कोई सुंदर चित्र देखते हैं, जब आप उत्साहपूर्वक किसी पहाड़ पर चढ़ जाते हैं और उसकी चोटी पर खड़े होकर नीचे घाटी की ओर देखते हैं तथा विभिन्न वर्णों को, सूर्य की रोशनी को, घरों आदि को देखते हैं, जब आप किसी का मुस्कराता चेहरा देखते हैं तो ऐसी कोई भावना आपमें नहीं जाग उठती जिसे आप खुशी कहते हैं? पर जैसे ही आप कहते हैं, 'मैं खुश हूं, मुझे खुशी हो रही है', वैसे ही यह भावना जा चुकी होती है। आप समझ रहे हैं न? जिस पल आप यह कह देते हैं, 'मैं प्रसन्न हूं', आप प्रसन्न नहीं रह जाते हैं।

देखिए हम बीते हुए समय में जीते हैं। हम वैसे भी सारे समय मर रहे होते हैं; मौत हमारे साथ हमेशा रहती है। समय का अंतराल छाया की तरह हमसे लगा रहता है क्योंकि हम सदा बीते हुए क्षण में जिया करते हैं। इसलिए हम कहते हैं, 'मैंने खुशी को महसूस किया है, पर अभी यह जा

चुकी है, अब मैं इसे फिर से पाना चाहता हूं।' अतः समस्या सचेत होने की है, 'अनुभव' से खाली होकर जागने की है क्योंकि 'अनुभव करना' अतीत में चले जाना है।

क्षमा करें मैंने ज़रा मुश्किल सवाल ले लिया है। जब आपको किसी चीज़ में आनंद आए, आप कोई कविता लिखें या कोई किताब पढ़ें, जब आप नाच उठें तो उसे वैसा ही रहने दें, यह न कहें, 'मुझे और ज्यादा आनंद लेना चाहिए।' तब वह लोभ हो जाएगा और वह खुशी चली जाएगी। बस उस क्षण में प्रसन्न रहिए। यदि सूर्य की रोशनी आ रही है तो उसका आनंद लीजिए, यह मत कहिए, 'मुझे और मिलनी चाहिए।' यदि बादल आ रहे हैं तो आने दीजिए, उनका भी अपना एक विशेष सौंदर्य है। ऐसा न कहें, 'काश आज का दिन थोड़ा और सुंदर होता।' 'और' की मांग आपको उदास कर देती है।

आप यह सब सुनते हैं और समझदार की तरह अपना सिर हिला देते हैं, पर यह सब आपके भीतर नहीं जा पाता, हृदय की गहराई तक नहीं पहुंच पाता। जब आप सचमुच और-और की मांग करना बंद कर देते हैं, जब आप लोभी नहीं रह जाते तो खुशी आपके पास खुद-ब-खुद, बिना आपके प्रयास किए आने लगती है।

प्रश्न : कारुणिकता क्या है?

कृष्णमूर्ति : एक बालक जानना चाहता है कि कारुणिकता क्या है। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि वह ऐसा सवाल क्यों पूछ रहा है। शायद किसी और ने उसके माध्यम से यह प्रश्न पूछा है। मुझे उम्मीद है कि बड़े लोग ऐसा नहीं करेंगे, इस तरह तो वे युवाओं के मन को सचमुच दूषित कर देंगे। बच्चों की इस सब में कोई रुचि नहीं है, दुख की अनुभूति, दयनीय होने की भावना, हताशा आदि बातों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चे इन सारी बातों को महसूस नहीं करते। किसी बच्चे की अपनी कुछ समस्याएं ज़रूर होती हैं। वह यह जानने की इच्छा रखता है कि चिड़िया उड़ती क्यों है, जल चमकता क्यों है, उसके शिक्षक या माता-पिता उससे कठोर व्यवहार क्यों करते हैं, उसे कोई क्यों नहीं चाहता, उसे पढ़ना क्यों चाहिए, उसे किसी कमअक्ल बूढ़े व्यक्ति की आज्ञा क्यों माननी पड़ती है, इत्यादि। ये सब उसकी समस्याएं होती हैं, न कि उसके हृदय में उठने वाली करुणाएं। ईश्वर के बारे में वह केवल इसलिए जानना चाहता है क्योंकि इस बारे में उसे बहुत कुछ सुनते रहना पड़ता है। उनकी अपनी समस्याओं के बारे में प्रश्न पूछने के लिए उन्हें उत्साहित ज़रूर करें।

और यदि आप कारुणिकता का अर्थ जानना ही चाहते हैं, तो किसी शब्दकोश में ढूंढ़ कर जान लें, वहां आपको इसका अर्थ मिल जाएगा, इसकी व्याख्या या परिभाषा कृपया मुझसे मत पूछिए। परिभाषाओं से

हमारा मन कितनी जल्दी संतुष्ट हो जाया करता है, और हमें लगने लगता है कि हमने समझ लिया। इस प्रकार का मन बहुत उथला होता है।

प्रश्न : किसी मनुष्य की बातें ध्यानपूर्वक सुनने का क्या तरीका है?

कृष्णमूर्ति : जब आपकी रुचि होती है तो आप ध्यानपूर्वक सुनते हैं। यदि आप सचमुच यह जानना चाहते हैं कि किसी की बातों को ध्यानपूर्वक कैसे सुना जाता है तो आप अवश्य ही इसका तरीका ढूंढ़ लेंगे। इस समय आप सुन रहे हैं, सुन रहे हैं न? मैं यह जानना चाहता हूं कि ध्यानपूर्वक कैसे सुना जाता है। मैं आपसे यह पूछता हूं और ध्यानपूर्वक आपकी बातें सुनता हूं क्योंकि आप मुझे कुछ बता सकते हैं, और उससे मैं कुछ सीख सकता हूं। यह सीख सकता हूं कि ध्यानपूर्वक कैसे सुना जाता है। यह करने में ही, इस सवाल को पूछने में ही, आप सुनना शुरू कर देते हैं।

आप मुझसे पूछते हैं कि ध्यानपूर्वक सुनने का क्या तरीका है। अब मैं जो कह रहा हूं उसे आप ध्यान से सुन रहे हैं? क्या आपने कभी किसी चिड़िया की आवाज को ध्यान से सुना है? क्या आप इस तरह सुन सकते हैं कि आपको बहुत जोर न लगाना पड़े, बहुत अधिक कोशिश न करनी पड़े और आप बस आसानी से, खुशी-खुशी, मन लगा कर सुन सकें—इस तरह आपका सारा ध्यान उधर हो?

हम इस तरह से कभी नहीं सुनते, हमारी उत्सुकता किसी से कुछ पाने तक ही रहती है। जब आप पढ़ते हैं, जब आप बातें करते हैं तो आपकी चेष्टा यही रहती है कि उससे कुछ हासिल हो जाए। इसलिए आप कभी भी सहजता से, प्रसन्नता से नहीं सुन पाते। और यदि कभी सुन पाते हैं तो इसे ऐसे शब्दों में ढाल देते हैं जो आपके मन के हों, या ऐसे शब्दों में जिन्हें आपने पहले ही कहीं पढ़ा होता है। इस तरह आप और भी उलझते चले जाते हैं, और कभी शांति से, सहजता से, चुपचाप नहीं सुन पाते। क्या आपने कभी थोड़े समय के लिए भी चांद को देखा है?—बस निहारा पर है? या बहते हुए पानी को देखा है? ऐसे नहीं कि आप तैयार होकर आलथी-पालथी मारकर बैठ गए और देखने की खूब जी-जान से कोशिश करने लगे बल्कि सहजता से, यूं ही कभी देखा है? जब आप इतने ध्यान से सुनते हैं तो आप काफी अधिक सुन पाते हैं, जो कुछ कहा जा रहा है उसे आप बेहतर ढंग से समझ पाते हैं। यहां तक कि जब आपको अपने गणित, भूगोल या इतिहास के विषयों को भी सुनना पड़े तो बस सुनें, और आप बहुत कुछ सीख लेंगे। आप यह भी जान लेंगे कि आपके अध्यापक ठीक तरह से पढ़ा रहे हैं कि नहीं, या वे बस ग्रामोफोन के रिकॉर्ड की तरह एक ही बात को दोहरा रहे हैं। ध्यानपूर्वक सुनना एक बहुत बड़ी कला है जिसे हममें से बहुत कम लोग ही जानते हैं।

11 जनवरी 1954

अनुशासन

क्या आप कभी शांतिपूर्वक बैठे हैं? कभी इस प्रकार से बैठने का प्रयत्न करके देखिए—किसी प्रयोजन से नहीं, बस ऐसे ही—केवल यह जानने के लिए कि क्या आप शांतिपूर्वक बैठ सकते हैं। जैसे-जैसे आप बड़े होने लगते हैं आप और भी अधिक व्याकुल, अशांत और उद्विग्न रहने लगते हैं। क्या आपका ध्यान कभी इस पर गया है कि बड़े लोग किस तरह पैर हिलाते रहते हैं? और कई बार तो छोटे भी हमेशा ऐसा करते हैं। यह किसी तरह के तनाव को, किसी तरह की व्याकुलता को दर्शाता है। हम सोचते हैं कि इस प्रकार की व्याकुलता को, इस तनाव को दूर करने के लिए अनुशासन के विभिन्न तरीकों को काम में लाया जा सकता है। क्या आप इस शब्द का अर्थ जानते हैं? आपके शिक्षक आपसे अनुशासन के बारे में अक्सर बोलते होंगे। धार्मिक पुस्तकें भी ऐसे अनुशासन की बात करती हैं जिसे हम खुद ही अपने ऊपर मढ़ते हैं। हमारा जीवन अनुशासन, नियंत्रण और दमन की एक अनवरत प्रक्रिया है। हमें अवरुद्ध, कुंठित और सीमाओं के भीतर रहने के लिए विवश किया जाता है, इसलिए हम कभी पल पर के लिए भी स्वतंत्र होना, सहजस्फूर्त होना नहीं जान पाते। हमें अंकुश में रखा जाता है, हम अपने अंदर ही कैद रहते हैं। अपने अध्यापकों से पूछिए। उनसे इन शब्दों के अर्थ जानिये।

जैसा कि कल मैंने सुझाव दिया था, क्या आपने अपनी क्लास में इन बातों पर चर्चा करने के लिए दस मिनट निकाले? क्लास शुरू होने से पहले आपके किसी शिक्षक ने क्या इन बातों पर आपसे चर्चा की? आप उनके पीछे क्यों नहीं पड़ते? आप क्यों नहीं अपने शिक्षकों को इस बारे में बातचीत करने के लिए विवश करते? शिक्षक और बड़े लोग केवल इस बात की चिंता करते हैं कि कक्षाएं कैसे भी चलती रहें, उनकी नौकरी बनी रहे। उन्हें अपने आसपास देखने की फुरसत नहीं होती। परंतु यदि आप थोड़ा जोर देकर उनसे कहें कि प्रतिदिन कक्षा के घंटे में से दस मिनट कुछ दूसरी महत्त्वपूर्ण बातों पर चर्चा के लिए दें, तो आप काफी कुछ सीख सकेंगे।

जैसा कि मैं कह रहा था, हमें पल भर के लिए भी सच्ची स्वतंत्रता का एहसास नहीं होता, और हम सोचते रहते हैं कि सच्ची स्वतंत्रता तो लगातार अनुशासन, प्रशिक्षण और नियंत्रण से आएगी। मुझे नहीं लगता कि अनुशासन से स्वतंत्रता आती है। अनुशासन तो हमारे मनों को और भी संकीर्ण, अपने आप में सीमित और बंद करता है। मैं जानता हूं कि मैं जो कुछ कह रहा हूं ऐसी बातें शायद आपने पहले कभी नहीं सुनी हों।

आपने अभी तक यही सुना है कि स्वतंत्रता के लिए अनुशासन ज़रूरी है। लेकिन यदि आप इस बारे में खोजबीन करें, इस शब्द के अभिप्राय और आशय का पता लगाएं तो आप देखेंगे कि अनुशासन का अर्थ है किसी चीज़ का प्रतिरोध करना, मान्यताओं की एक दीवार खड़ी करना और उस दीवार के पीछे अपने आपको पूरी तरह से बंद कर लेना। यह एक मूर्खता ही है क्योंकि आप जितना अधिक अनुशासनबद्ध होते हैं, आप जितना अधिक अंकुश स्वयं पर लगाते हैं, जितना दमन करते हैं और जितना अधिक संयम साधते हैं, आपका मन उतना ही अधिक संकीर्ण, क्षुद्र होने लगता है। क्या आपने नहीं देखा कि जो लोग बहुत अनुशासन में रहते हैं उनके पास स्वतंत्रता होती ही नहीं? उनमें सहज भावनाएं नहीं होतीं, उनकी समझ विशाल नहीं होती। हममें से अधिकांश की कठिनाई यह है कि हम स्वतंत्रता तो चाहते हैं, और सोचते हैं कि अनुशासन के द्वारा हम इस तक पहुंच जाएंगे लेकिन साथ ही हम वह सब नहीं कर पाते जो हम करना चाहते हैं। अपनी मर्ज़ी के अनुसार हर चीज़ कर पाना स्वतंत्रता नहीं है क्योंकि हमें बाकी लोगों के साथ भी तो रहना है, हमें सबके साथ सामंजस्य रखना है, हमें व्यवस्था के साथ तालमेल बनाते हुए जीना है।

हमें जो अच्छा लगता है उसे हम कर पाएं, ऐसी सतही इच्छा के साथ-साथ क्या हममें एक और गहनतर अभिलाषा, एक ऐसी उत्कंठा नहीं होती है कि हम कुछ सृजनात्मक करें, अपनी स्वतःस्फूर्त इच्छा से कुछ करें? परंतु हम ऐसा जो कुछ करना चाहते हैं उसे स्वतंत्रतापूर्वक, सहज रूप से कर पाएं, वास्तव में हम इसके काबिल नहीं होते हैं, क्योंकि हम जो कुछ करना चाहते हैं और जो हमें करना चाहिए, इसके बीच अंतर्विरोध होता है, द्वंद्व होता है। धीरे-धीरे हम जो करना चाहते हैं वह क्षीण होने लगता है, खो जाता है, और दूसरा सब—हमें क्या करना चाहिए, क्या आदर्श होने चाहिए आदि जिन बातों की शिक्षकगण, माता-पिता तथा अन्य लड़के-लड़कियां हमसे अपेक्षा करते हैं वह सब बचा रहता है। मेरे हृदय की बहुत गहराई में एक भावना होती है, कुछ सृजनात्मक करने की ललक होती है, अपने आप से ही कुछ करने की उमंग होती है। लेकिन अपने भीतर की उस चीज़ को खोज पाने के लिए बहुत अधिक समझ की ज़रूरत होती है। यह सिर्फ मुझे जो पसंद है वही करना नहीं है। हममें से हर कोई अपने बनाए कारागृह में जो अच्छा लगता है वह करता है, लेकिन वह तो सतही क्रिया होती है।

आप जिसे अपने भीतर गहराई से, अपने अंतःकरण में, सहजस्फूर्ति से, सरलतापूर्वक महसूस करते हैं उसे ढूंढ़ पाना और उसे कर पाना अत्यंत कठिन होता है क्योंकि आप दमन में जीते हैं। क्या आपने इस बात पर कभी ध्यान नहीं दिया कि लोग अक्सर 'इसे करो, वह मत करो' कहते हैं? क्या वे आपसे हमेशा यही नहीं कहते हैं? इसलिए आप धीरे-धीरे बिना

सोचे-समझे काम करने के आदी हो जाते हैं, आप किसी मशीन की तरह स्वचालित हो कर काम करने लगते हैं जिसमें न कोई प्राण होते हैं, न कोई जीवंतता और न कोई सोच-विचार, अंतर्दृष्टि, प्रेम, स्नेह या संवेदनशीलता ही। यही कारण है कि आप ऐसा कुछ नहीं ढूंढ़ पाते जिसे करने से आपको प्रेम हो। फिर आपकी शिक्षा भी यह खोजने में आपकी मदद नहीं करती कि आप अपने अंतरतम से, अंतःकरण की गहराई से वास्तव में क्या करना चाहते हैं क्योंकि आपके शिक्षकों तथा अभिभावकों को यही अधिक सरल लगता है कि शिक्षा के माध्यम से, नियंत्रण के बहाने, वे आप पर वह सब थोप सकें जो उनकी दृष्टि में आपको करना चाहिए। जिसे वे आपका कर्तव्य, धर्म और उत्तरदायित्व समझते हैं उसे बलपूर्वक आप पर आरोपित कर देते हैं, और धीरे-धीरे वह सारी चीज़ें जो सौंदर्यपूर्ण हैं, जिनके लिए आपको यह लगता है कि एक अवसर मिले तो आप उन्हें कर सकेंगे, नष्ट हो जाती हैं। अतः हममें से अधिकांश के मन में द्वंद्व छिड़ा रहता है—मैं जिसे गहराई से करना चाहता हूं, जिसमें मेरी बड़ी रुचि है, उसमें तथा मुझे क्या करना चाहिए, समाज मुझसे क्या चाहता है, इसमें। जिसमें मेरी गहरी दिलचस्पी है उसे करने में अत्यधिक गहरी समझ की और जो कुछ भी बेमानी है उस सबको लगातार परे हटाते रहने की ज़रूरत होती है—जैसे कि मुझे क्या करना चाहिए, समाज मुझसे क्या चाहता है, शिक्षक मुझसे क्या करवाना चाहते हैं, परंपरा क्या कहती है, आदि-आदि। इसलिए इन दोनों के बीच टकराव बना रहता है और हम सोचने लगते हैं कि इनमें से एक के खिलाफ दूसरे पर अंकुश लगाने से, अपने आपको किसी खास विचारधारा में अनुशासित कर लेने पर स्वतंत्रता प्राप्त हो सकेगी।

इस प्रकार के विद्यालय में क्या यह बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है कि अनुशासन के प्रश्न को समझा जाए? जहां पर तीन सौ या एक सौ या केवल दस लड़के-लड़किया भी हों वहां कोई-न-कोई व्यवस्था तो ज़रूरी होती है। किंतु बहुत अधिक लोगों के बीच व्यवस्था बनाए रख पाना अत्यंत कठिन होता है क्योंकि हर लड़के और लड़की की अपनी-अपनी इच्छा होती है। यहां के छात्रों को भरपेट भोजन मिलता है, वे तरुण हैं, उनमें जोश और स्फूर्ति है, और वे जीवन से छलक रहे हैं, शिक्षक उन्हें नियंत्रण में रखने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें किसी व्यवस्था में बांध रखना चाहते हैं, उन्हें अध्ययन में लगाए रखना चाहते हैं, और उनके जीवन को नियमबद्ध बनाना चाहते हैं।

आपके शिक्षकों और आपके लिए भी क्या यह पता लगाना बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है कि अनुशासन क्या है, उसके निहितार्थ क्या है? इसमें संदेह नहीं कि किसी-न-किसी प्रकार की व्यवस्था तो ज़रूरी है, पर व्यवस्था के लिए कोई उचित तर्क, प्रज्ञा और समझ ज़रूरी होती है—न कि दमन और यह कहा जाना, 'यह करो, वह मत करो।' यदि आप ऐसा नहीं

करेंगे तो आपको कम अंक दिए जाएंगे, प्राचार्य से आपकी शिकायत की जाएगी, आपके अभिभावकों को, आपके माता-पिता को इसकी सूचना दी जाएगी।' दमन से व्यवस्था नहीं आती बल्कि इससे तो अव्यवस्था ही उत्पन्न होती है, विद्रोह ही जन्म लेता है, कुरूप मन का ही जन्म होता है। जबकि अगर हम थोड़ा कष्ट उठाकर धैर्य रखते हुए व्यवस्था के महत्त्व को समझाएं तो व्यवस्था संभव है। मान लीजिए कि भोजन के समय आप नहीं पहुंचते हैं तो रसोई का प्रबन्ध करने वालों को कितनी परेशानी होगी। आपका भोजन भी ठंडा हो जाएगा और ठंडा भोजन करना आपकी सेहत के लिए ठीक न होगा। आप धीरे-धीरे और अधिक संवेदनाहीन होते जाएंगे —जो सचमुच समस्या है। यदि आप दूसरों का ख्याल रखते हैं, दूसरों के बारे में सोचते हैं—यह बात बड़ों और छोटों पर समान रूप से लागू होती है —तो आप व्यवस्था बनाए रखेंगे। दुख की बात है कि बड़े लोग भी संवेदनशील नहीं होते—उन्हें बस अपनी ही चिंता होती है, अपनी समस्याओं की, अपनी मुश्किलों की और अपनी नौकरी की।

हमें बिलकुल शुरू में ही विवेकपूर्ण ढंग से यह समझना होगा कि अनुशासन क्या होता है। जैसे ही आप संवेदनशील होते हैं अनुशासन अपने आप आ जाता है। अनुशासन प्रतिरोध नहीं है, अनुशासन तो वास्तव में सामंजस्य करना है—है कि नहीं? जब आप किसी व्यक्ति का ध्यान रखते हैं तो आप सामंजस्य करते हैं और यह सामंजस्य स्वाभाविक तरीके से होता है क्योंकि यह समझ, स्नेह और प्यार से उत्पन्न होता है। जबकि ऐसा कह देना कि, 'भोजन के लिए आप ठीक निर्धारित समय पर आ जाएं नहीं तो आपको भोजन नहीं मिलेगा और आपको दंडित भी किया जाएगा', तो इसमें न तो समझदारी है, न दूसरों का ख्याल है। मान लीजिए एक छात्र सुबह जल्दी नहीं उठ पाता और छात्रावास प्रभारी उसे अनुशासनबद्ध करने के लिए कहता है, "आपको सुबह जल्दी उठना होगा नहीं तो आपको इसकी सजा मिलेगी", या दूसरा तरीका यह है कि वह उस छात्र को प्यार से समझाकर सुबह जल्दी उठने के लिए राजी कर लेता है। किंतु यह सभी तरीके भय के रूप हैं—दूसरों के प्रति असंवेदनशील होने के ही प्रकार होते हैं। शिक्षक को इसका पता लगाना चाहिए कि वह छात्र आलस्य क्यों करता है। शायद वह शिक्षक का ध्यान अपनी ओर खींचना चाह रहा हो या यह भी हो सकता है कि घर पर उसे स्नेह न मिला हो और इसलिए उसमें असुरक्षा की भावना आ गयी हो—वह सुरक्षित महसूस करना चाह रहा हो, या उसे सही ढंग का भोजन या पर्याप्त आराम न मिल पा रहा हो, या वह उचित व्यायाम न कर पा रहा हो। इस सब पर विचार न किए जाने पर अनुशासन की समस्या को केवल सतही तौर पर ही हल किया जा सकेगा।

अतः अनुशासन, नियंत्रण या अंकुश महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि उस समझ का जागना महत्त्वपूर्ण है जो इन सभी समस्याओं पर विवेकपूर्वक,

निर्भयतापूर्वक ध्यान दे सके। यह बहुत कठिन है क्योंकि संसार में ऐसे गिने-चुने शिक्षक ही होंगे जो इन सारी बातों को समझ सकें। निश्चित ही राजघाट स्कूल एवं फाउन्डेशन का यह कार्य है कि इसे क्रियान्वित करे ताकि जब छात्र इस स्थान से बाहर जाएं तो वे सजग, प्रज्ञापूर्ण, ऐसे मानव बन कर निकलें जो प्रत्येक बात का निरीक्षण निर्भयतापूर्वक कर सकें, जो सोचे-समझे बिना कोई काम न करें बल्कि उनमें गहरी समझ हो तथा इस योग्य हों कि एक सड़े-गले समाज में भी सामंजस्यपूर्वक जी सकें। इन सभी प्रश्नों पर रोजाना विचार होना चाहिए-सिर्फ अध्यापकों द्वारा दिए जाने वाले भाषणों के रूप में ही नहीं बल्कि शिक्षकों एवं छात्रों के मध्य संवाद के रूप में ताकि जब छात्र इस स्थान से जाएं और व्यावहारिक जीवन में प्रवेश करें तो वे उसका सामना इस प्रकार करने के लिए तैयार हों कि जीवन एक आनंदप्रद चीज़ बन जाए न कि निरंतर संघर्ष तथा क्लेश का कारण।

प्रश्न : ऐसा कहा जाता है कि विज्ञान ने जहां एक ओर हमारे जीवन के लिए अनेक हितप्रद कार्य किए हैं वहीं दूसरी ओर हमारे क्लेशों में वृद्धि भी की है। क्या विज्ञान वास्तव में मनुष्य के लिए हितकारी है?

कृष्णमूर्ति : इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं यह जानना चाहूंगा कि मैं अभी-अभी जो कुछ कह रहा था क्या आपने उसे ध्यान दे कर सुना? मेरी बात पूरी हुई भी न थी कि आपने प्रश्न पूछ लिया। कोई अंतराल या ठहराव न था। मैं आपकी आलोचना नहीं कर रहा हूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप ठीक हैं या गलत हैं। परंतु क्या यह जान लेना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि दूसरा क्या कह रहा है? आप सच में मैं जो कह रहा था उसे सुन नहीं रहे थे क्योंकि आपके मन में तो आपका प्रश्न ही घूम रहा था। आप जानते हैं कि मैंने ऐसा इससे पहले भी आधा दर्जन बार कहा है और फिर भी आप ऐसा ही कर रहे हैं। क्या इससे आपकी लापरवाही नहीं जाहिर होती? जो कुछ कहा जा रहा था उसमें यदि आपकी सच में रुचि होती तो आप उसे ध्यानपूर्वक सुनते। चूंकि हम यहां कठिन विषयों पर विचार कर रहे हैं इसलिए गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया जाना ज़रूरी है, और यदि आप मन लगाकर सुनना चाहते हैं तो आप इतनी शीघ्रता से प्रश्न नहीं कर सकेंगे। क्या मैं आपको यह सुझाव दे सकता हूं कि कल से आप अपने प्रश्न लिख कर रखा करेंगे? फिर जब मेरा बोलना समाप्त हो जाए तो दो-चार मिनटों के लिए, पल-दो-पल के लिए रुके और फिर उसे पूछें। इससे आपको यह जानने में मदद मिलेगी कि आपका मन किस रीति से कार्य करता है। मैं जो कुछ कह रहा हूं वह बहुत जटिल नहीं है। आपके अपने ही मन की कार्यप्रणाली को मैं शब्द दे रहा हूं। यदि आप समझने के इच्छुक हैं, यदि आप यह देखना चाहते हैं कि आपका मन किस तरह से कार्य करता है—और वही एकमात्र तरीका है जिससे हम जीवन का अवलोकन कर सकते हैं—तो जो कुछ कहा जा रहा है उसे समझना महत्त्वपूर्ण है।

आप कहते हैं कि विज्ञान ने मनुष्य की भलाई के बड़े-बड़े कार्य किए हैं और उसके कारण अत्यधिक क्लेश एवं विनाश के कार्य भी हुए हैं। कुल मिलाकर यह उपयोगी है या विनाशकारी? आपका क्या विचार है? संचार के क्षेत्र में अवश्य ही सुधार हुआ है। आप कुछ ही दिनों में अमेरिका पत्र पहुंचा सकते हैं। पूरे संसार की नवीनतम खबरें आप कल सुबह तक या आज शाम तक ही प्राप्त कर सकते हैं। सर्जरी के क्षेत्र में असाधारण चमत्कार हो रहे हैं। किंतु दूसरी ओर ऐसे युद्धक जहाज और पनडुब्बियां भी बन रही हैं जो अत्यंत घातक हैं। परमाणु शक्ति से चलने वाली आधुनिक पनडुब्बियां लगातार अनिश्चित रूप से लंबे समय तक पानी में रहकर पूरी दुनिया का चक्कर लगा सकती हैं—उन्हें पानी के ऊपर आने की ज़रूरत नहीं होती। ऐसे बमवर्षक विमान हैं जो कुछ ही पलों में हजारों मनुष्यों को मिटा सकते हैं। क्या यह विज्ञान है जिस पर दोष मढ़ा जाए या मनुष्य है जो इसका इस्तेमाल करते हैं? मैं हिंदू, मुसलमान या ईसाई हूं और इसलिए मेरे कुछ विशिष्ट विचार हैं जिन्हें मैं किसी भी दूसरे मनुष्य के मत से अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूं, मैं कट्टर राष्ट्रवादी हूं। आप इसका अर्थ जानते ही हैं। मुझे ऐसा लगता है, मैं चाहता हूं मेरा बोलबाला हो, मैं केवल व्यक्तियों पर ही नहीं बल्कि समुदायों पर भी नियंत्रण करना चाहता हूं। इसलिए मैं विनाशकारी साधन अपनाता हूं, मैं विज्ञान का इस्तेमाल करता हूं। विज्ञान का दुरुपयोग मैं ही तो कर रहा हूं न कि विज्ञान अपने आप में गलत है। जेट विमान अपने आप में कोई बुरी चीज़ नहीं है, यह तो अमेरिका, रूस या इंग्लैंड द्वारा उनके उपयोग का तरीका है, जो बुरा हो सकता है। क्या ऐसा ही नहीं है?

क्या मनुष्य बदल सकता है? क्या उसका हिंदू, मुसलमान होना समाप्त हो सकता है? भारत और पाकिस्तान के बीच, रूस तथा अमेरिका के बीच, इंग्लैंड और जर्मनी के बीच, फ्रांस तथा अन्य देशों के बीच एक दरार है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम फ्रेंच या भारतीय न होकर केवल मनुष्य बन कर रहें, परस्पर सौहार्दपूर्वक रहें? क्या हम सबकी एक ऐसी साझा सरकार नहीं हो सकती जो सिर्फ भारत या अमेरिका ही नहीं बल्कि हम सभी की मानव के तौर पर देखभाल करे?

जब मनुष्य विज्ञान का दुरुपयोग करता है तो विज्ञान को दोषी कहा जाता है। किंतु यह तो आप और मैं—रूसी तथा अमेरिकन, फ्रेंच तथा जर्मन ही हैं जो कि इस सब के लिए उत्तरदायी हैं। इसलिए इस प्रकार के किसी विद्यालय में राष्ट्रीयता की भावना को स्थान न दिया जाए—वर्ग की भावना को, या आप ब्राह्मण हैं तथा मैं अछूत—इस तरह की भावना को ज़रा भी महत्त्व न दिया जाए। हम सब मनुष्य हैं, चाहे हम बनारस में रहते हों या न्यूयार्क में या मास्को में। यह हमारा संसार है। यह संसार हम सबका है। यह संसार आपका है; आपका तथा मेरा है न कि रूसी या अंग्रेज का,

यह न तो भारतीय का है न पाकिस्तानी का है—यह हमारा है। ऐसी भावना होने पर विज्ञान एक अद्‌भुत चीज़ बन जाएगा और यदि ऐसी भावना नहीं है तो हम एक दूसरे को नष्ट ही करते रहेंगे।

प्रश्न : आप कहते हैं कि बड़े व्याकुल मन के होते हैं और अपने नाखून कुतरते रहते हैं। क्या आपने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया कि युवा भी यह सब करते हैं? फिर विशेष रूप से बड़ों को लक्ष्य कर ऐसा क्यों कहा जाता है जबकि उन्हें कई तरह की कठिनाइयों से जूझना होता है, उन्हें बेकार समझा जाता है?

कृष्णमूर्ति : मैं बड़ों की भद्‌दी आदतों की ओर संकेत क्यों करता हूं और छोटों की ऐसी आदतों का ज़िक्र क्यों नहीं करता हूं?

आप जानते हैं कि छोटे बच्चे बड़े नकलची होते हैं। वे बंदरों की तरह होते हैं। जब वे किसी को कुछ करते देखते हैं तो वे भी जल्दी ही वैसा करने लगते हैं। क्या आपका ध्यान कभी इस पर नहीं जाता कि बच्चे किस तरह एक जैसे कपड़े पहनना चाहते हैं? कुछ देशों में बच्चों के लिए कोई खास ड्रेस तय होती है और जब किसी बच्चे के पास, बालक या बालिका के पास ड्रेस नहीं होती तो वह स्वयं में कोई कमी महसूस करने लगता है, वह अन्य बच्चों से सहजतापूर्वक घुल-मिल नहीं पाता, अपने आपको हेय महसूस करता है। दूसरों की तरह दिखाई देने की प्रवृत्ति छोटे बच्चों में बहुत प्रबल होती है और जब वे बड़ों को देखते हैं तो वे उनके जैसे दिखने की चेष्टा करने लगते हैं। न तो बड़ों को और न छोटों को इस बात का होश रहता है कि वे क्या कर रहे हैं, इसलिए यह चक्र निरंतर चलता रहता है। बड़े लोग जनेऊ धारण कर लेते हैं और उनकी देखा-देखी छोटे भी जनेऊ पहन लेते हैं। कुछ लोग सिर पर पगड़ी बांधते हैं तो छोटे भी ऐसा ही करते हैं। मैं पुरानी पीढ़ी की आलोचना नहीं कर रहा। यह मेरा काम नहीं है और यदि मैं ऐसा करूं तो वह अशोभनीय आचरण होगा। परंतु आपके लिए जो बात महत्त्वपूर्ण है वह है अवलोकन करना, अपने बारे में जागरूक होना, अपने कार्यों के प्रति ध्यानपूर्ण होना—उदाहरण के लिए जब आप नाखून कुतरते हैं, जब आप खुजलाते हैं, जब आप नाक में उंगली डालते हैं—तो होशपूर्ण होने पर आप वैसा करना बंद कर देंगे। आपके भीतर और बाहर की समस्त बातों के प्रति आपको सचेत रहना होगा ताकि आप एक नकलची मशीन बन कर न रह जाएं।

प्रश्न : हम अपने अंतर्द्वंद्वों पर अंकुश कैसे रख सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : हममें अंतर्द्वंद्व हैं। हम उन्हें अंकुश में रखना क्यों चाहते हैं? ध्यानपूर्वक सुनें। मैं आपसे विवाद करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूं बल्कि इसका पता लगाने का, समस्या को समझने का यत्न कर रहा हूं। अतएव, मैं आपका या अपना पक्ष नहीं ले रहा हूं।

हममें अंतर्द्वंद्व विद्यमान हैं, हैं कि नहीं? और यदि हम उन्हें समझ लेते हैं तो उन पर अंकुश रखने की ज़रूरत न होगी। हम दमन तभी करते हैं जब हम उन्हें समझ नहीं पाते। वयस्क बच्चे को इसलिए दबाव में रखता है क्योंकि उसके पास समय नहीं होता या उसे करने के लिए और भी कई कार्य होते हैं। इसलिए वह कहता है, 'ऐसा मत करो या ऐसा करो'—ये दोनों ही दमन के रूप हैं। परंतु यदि बड़े थोड़ा समय निकालें, धैर्य रखें और बच्चे को समझा सकें, बच्चे के साथ इस सवाल पर चर्चा करें तो दबाव डाले जाने की नौबत ही नहीं आएगी। इसी तरह से आप बिना भय के, बिना यह कहे, 'यह ठीक है, यह गलत है, मुझे दमन करना चाहिए, मुझे दमन नहीं करना चाहिए', अपने द्वंद्वों का अवलोकन कर सकते हैं। यदि आपका सामना किसी विचित्र जंतु से होता है तो उस पर पत्थर फेंकना निरर्थक है। आपको उसका निरीक्षण करना होगा। आपको यह देखना होगा कि वह किस प्रकार का जंतु है, ठीक उसी तरह से, यदि आप अपनी भावनाओं और अंतर्द्वंदों पर पत्थर न फेंकते हुए, उनकी निंदा न करते हुए, उनका निरीक्षण कर सकें तो आप उन्हें समझने लगेंगे।

बिलकुल प्रारंभ से ही यदि सही ढंग की शिक्षा दी जाए तो इस अंतर्द्वंद्व को दूर हटाया जा सकेगा। यह दोषपूर्ण शिक्षा ही है जो हममें आंतरिक द्वंद्व, आंतरिक संघर्ष, भीतरी ऊहापोह उत्पन्न करती है। उन पर अंकुश लगाने के बजाय उनका निरीक्षण करने की कोशिश करें, उन्हें समझने का प्रयास करें। यदि आप इसे ठुकराते हैं, यदि आप इससे बचने का यत्न करते हैं तो आप इसे समझ नहीं सकते। आपको इसे इस प्रकार अपने सामने रखना होगा जैसे आप किसी वस्तु को अपनी मेज पर रखते हैं, और फिर उसके अवलोकन से समझ का आगमन होता है।

प्रश्न : सच्ची सरलता क्या होती है?

कृष्णमूर्ति : सरलता क्या है? प्रेम क्या है? सत्य क्या है? एक अच्छी दुनिया क्या है आदि-आदि? मैं रोजाना यह स्पष्ट करता रहा हूं और मैं फिर से इसे स्पष्ट करूंगा कि किस प्रकार हमारा मन कोई परिभाषा चाहता है, और किस प्रकार कोई परिभाषा प्राप्त हो जाने पर हमें लगने लगता है कि हम समझ चुके हैं।

इसी प्रश्न को दूसरे ढंग से भी सामने रखा जा सकता है। पहले हम इस पर विचार करें कि सरलता क्या होती है और उसके बाद इसे जानने की कोशिश करें कि सच्ची सरलता क्या होती है। सच्ची और सरलता, इन दो शब्दों का अर्थ तो आपको शब्दकोश से मिल जाएगा। परंतु सरलता क्या है यह समझ पाने के लिए गहराई से सोच-विचार, अत्यधिक जांच-परख की ज़रूरत है। मैं नहीं जानता कि क्या उन महिला का यही अभिप्राय था। इसलिए वे इस बारे में बातचीत करना चाहती हैं, वे इस बारे मे खोजबीन

करना चाहती हैं कि सरलता क्या है, सच्ची या नकली नहीं बल्कि सरलता क्या होती है बस इसका पता लगाना चाहती हैं।

सरलता क्या है? क्या कोई सच्ची या नकली सरलता होती है? इसमें संदेह नहीं कि केवल सरलता होती है—वह नकली या असली नहीं हुआ करती। सरलता क्या है? क्या थोड़े से कपड़े पास में होना, एक या दो साड़ियां ही, धोतियां और कुर्ते ही, मिट्टी के घरों में रहना, लंगोटी पहनना और निरंतर सरलता की चर्चा करते रहना सरलता है? क्या यही सादगी है? कृपया इसका पता लगाएं। हां या नहीं न कहें। एक मनुष्य जिसके पास ढेर सारी चीज़ें हों—सत्ता, प्रतिष्ठा, वस्त्र, अनेक भवन आदि हों—ऐसा मनुष्य भी बहुत सरल हो सकता है। काफी कपड़े होना, भौतिक चीज़ों की बहुतायत होने का अर्थ यह नहीं होता कि वह सरल नहीं है। सरलता तो बिलकुल दूसरी चीज़ होती है। जाहिर है कि इसकी शुरुआत हमारे अंदर से होनी चाहिए न कि बाहर की बातों से। क्या आप समझ रहे हैं? उदाहरण के लिए मेरे पास बहुत थोड़े से वस्त्र हों, केवल लंगोट ही हो, मैं मिट्टी की कुटिया में रहता होऊं, मैं संन्यासी होऊं, परंतु यदि आंतरिक धरातल पर मैं द्वंद्वयुक्त हूं, यदि भयों में जी रहा हूं, यदि देवताओं, पूजा, कर्मकांडों, मंत्रों आदि में उलझा हूं तो क्या यह सरलता है? चाहे मैं शरीर पर भस्म लगा लूं, मंदिरों में जाता रहूं लेकिन अंदरूनी तौर पर यह भी संभव है कि मैं असाधारण रूप से जटिल और महत्त्वाकांक्षी रहूं। मैं गवर्नर होना चाहूं या मोक्ष पाना, दोनों बातें एक जैसी हैं क्योंकि प्रत्येक स्थिति में सुरक्षा की खोज की जा रही है। परंतु जो व्यक्ति मोक्ष के लिए यत्न कर रहा है उसे धार्मिक कहते हैं जबकि जो गवर्नर बनने की इच्छा रखता है उसे संसारी कहते हैं।

बाहरी रूप से अत्यंत सरल रहते हुए भी, केवल दो घंटे ही सो कर, अपने कपड़े खुद ही धोनेवाला, एक फकीर जैसा जीवन जीते हुए भी यह संभव है कि आंतरिक रूप से कोई अत्यंत जटिल हो, वह बहुत महत्त्वाकांक्षी हो, और इसलिए वह स्वयं को बहुत अनुशासित रखेगा, स्वयं पर अंकुश रखेगा, ध्येय की प्राप्ति के लिए, पूर्णत्व को पाने के लिए संघर्ष करेगा। ऐसा मनुष्य सरल नहीं होता। सरलता तब होती है जब आप सचमुच भीतर से सरल होते हैं, जब आप संघर्षों में नहीं लगे होते हैं, जब आप विशेष कुछ बनना नहीं चाहते हैं, जब आप मोक्ष नहीं चाहते, जब आपके कोई ध्येय नहीं होते और जब आपमें किसी चीज़ के लिए तृष्णा नहीं होती। सरल होने का अर्थ है कि इस लोक में या परलोक में कुछ भी नहीं होना, कुछ बनने की चाहत न रखना। यदि ऐसी भावना है तो चाहे आप महल में रहते हों या आपके पास थोड़े से ही वस्त्र हों, इसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

हमारे यहां सादगी ने एक परंपरा का रूप ले लिया है जिसके सहारे लोग जीवनयापन करते हैं और शोषण करते हैं। इस परंपरा के अनुसार आपके पास बस थोड़े से वस्त्र होने चाहिए, आपको बहुत भोर में उठ जाना चाहिए, आपको कुछ ध्यान-धारणा आदि करना चाहिए, आपको संसार के सुधार के लिए कुछ करते रहना चाहिए और खुद का विचार नहीं करना चाहिए। परंतु ऐसी स्थिति में भी आप अपने भीतर सुबह से देर रात तक अपने बारे में सोचते तो रहते ही हैं क्योंकि आप एक सर्वाधिक पूर्ण मनुष्य बनना चाहते हैं। और इसलिए आपके ध्येय हिंसा और अहिंसा के होते हैं, आप शांति को ध्येय बनाते हैं। अपने भीतर तो आपकी भावनाओं में युद्ध जारी रहता है, आप संघर्षरत रहते हैं और बाह्य रूप से आप अत्यंत सरल मनुष्य की भांति होते हैं। सरलता तब होती है जब कुछ भी न चाहने की भावना भीतर हो—जो कि अत्यंत कठिन है, जिसके लिए बहुत अधिक प्रज्ञा की आवश्यकता होती है। सच्ची शिक्षा तो सरलता की शिक्षा है, न कि कम-से-कम वस्तुएं रखने की परंपरा।

अब, चूंकि मैं इस प्रश्न का उत्तर दे चुका हूं, अतः मैं जानना चाहता हूं कि क्या उन महिला ने इसे समझा और क्या यह समझ उनके रोज़ के जीवन में कार्य करेगी? क्या अब वह ऐसा कहने जा रही हैं, 'अब यह बात मेरे लिए महत्त्व नहीं रखती कि मेरे पास दस साड़ियां हैं, कि मेरे पास ढेर सारी वस्तुएं हैं, सबसे पहले तो यह ज़रूरी है कि मेरे भीतर अतीव सरलता हो?'

आप क्या करने जा रहे हैं? क्या आप इन बाहरी चीज़ों से सरोकार न रखकर यह कह पाएंगे, 'ये सब महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, शुरुआत मुझे अपने भीतर से करनी होगी?' यह सब एक समूची प्रक्रिया है, है कि नहीं? यदि मैं सरलता के अर्थ को समग्र रूप से समझ लेता हूं तो यह मुझमें आ जाती है। सरल होने हेतु मुझे संघर्ष नहीं करना पड़ता। सरल होने के लिए यत्न करने का मतलब है सरलता का न होना। लेकिन यदि मैं इस सत्य को देखता हूं कि बाहर तथा भीतर एक ही प्रक्रिया है, एक ही बात है तो मुझमें सरलता होती है, मुझे सरल होने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता, इस प्रकार का प्रयत्न ही जटिलता लाता है।

प्रश्न : हम क्यों हैं और जीवन में हमारा क्या ध्येय है?

कृष्णमूर्ति : आप इसलिए हैं क्योंकि आपके पिता एवं माता ने आपको उत्पन्न किया है, और न सिर्फ भारत में बल्कि संसार भर के मनुष्य की तरह आप भी मानव की शताब्दियों का परिणाम हैं, हैं न? आप समूचे भारतवर्ष का, संपूर्ण संसार का परिणाम हैं। आप किसी असाधारण, अकेली विशिष्टता से नहीं जन्मे हैं, आपके साथ परंपरा की एक पूरी पृष्ठभूमि है, आप हिंदू अथवा मुस्लिम हैं। आप जलवायु की, अन्न की, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेशों की, आर्थिक दबावों की उत्पत्ति हैं। आप असंख्य

शताब्दियों का परिणाम हैं, समय का, द्वंद्वों का, पीड़ा, हर्ष और प्रीति का फल हैं। आपमें से प्रत्येक जब यह कहता है कि मुझमें आत्मा है, जब आप कहते हैं कि आप शुद्ध ब्राह्मण हैं तो आप बस परंपरा का, किसी धारणा का, संस्कृति का, भारत की विरासत का, भारत की सदियों से चली आ रही विरासत का ही अनुकरण कर रहे होते हैं।

आप पूछते हैं कि जीवन में आपका ध्येय क्या है। पहले आपको अपनी पृष्ठभूमि को समझना होगा। यदि आप समूचे परिदृश्य को नहीं देखते हैं, यदि आप परंपरा को, संस्कृति को, विरासत को नहीं समझते, तो आप किसी विशेष धारणा को ग्रहण कर लेंगे, उस पृष्ठभूमि से किसी विशिष्ट रुझान को अपना लेंगे और उसे अपना ध्येय कहने लगेंगे। मान लीजिए आप हिंदू हैं और उस संस्कृति में पले-बढ़े हैं। तब हिंदुत्व की धारा में से आप कोई मत, कोई भावना आदि चुन लेंगे और उसे अपना ध्येय बना लेंगे, ऐसा ही होता है न? क्या आप किसी भी अन्य हिंदू से अलग ढंग से, पूर्णतः भिन्न तरीके से सोचते हैं? यह जानने के लिए कि हमारे अंतरतम की क्या संभावनाएं हैं, क्या लालसाएं हैं, इन सभी बाहरी दबावों से, बाह्य स्थितियों से मुक्त हो जाना ज़रूरी है। यदि मैं किसी चीज़ की जड़ तक जाना चाहता हूं तो यह आवश्यक है कि सारी खरपतवार को हटा दिया जाए—जिसका अर्थ यह हुआ कि मैं हिंदू या मुसलमान न रहूं, और कोई भय न हो, कोई महत्त्वाकांक्षा न हो, कुछ पाने का लोभ न हो। तब मैं अधिक गहराई तक जा सकता हूं और देख सकता हूं कि वास्तविक रूप से सार्थक क्या है। किंतु इस सबको हटाए बिना मैं किसी सार्थक वस्तु का अनुमान नहीं कर सकता। ऐसा करना भ्रमित करेगा और एक दार्शनिक अनुमान मात्र होगा।

प्रश्न : यह कैसे संभव होगा?

कृष्णमूर्ति : पहले तो शताब्दियों से जमा हो रही धूल को हटाना होगा और ऐसा कर पाना बहुत सरल नहीं है। इसके लिए गहन अंतर्दृष्टि होना ज़रूरी होता है। इसमें आपकी गहरी रुचि होना ज़रूरी है। संस्कारों की, परंपरा की, अंधविश्वास की, सांस्कृतिक प्रभावों की गर्द को हटाने के लिए किसी ग्रंथ या शिक्षक की नहीं बल्कि अपने आपको समझने की ज़रूरत होती है—यही ध्यान है।

जब मन अतीत की अशुद्धि को हटा कर स्वयं को स्वच्छ कर लेता है तो आप सार्थकतापूर्ण अस्तित्व के बारे में कुछ कह सकते हैं। आपने इस बारे में प्रश्न किया है। अब इस पर आगे बढ़ें, इस पर तब तक लगे रहें जब तक कि आप इसे जान न लें, जब तक आप यह न देख लें कि क्या ऐसी किसी वास्तविक एवं मौलिक वस्तु की सत्ता है जिसे अपावन किया ही न जा सके। यह न कहें, 'यकीनन ऐसा कुछ है' अथवा 'ऐसा कुछ नहीं होता।' इस पर अनवरत काम करते रहें पर इसे जानने के उद्देश्य से नहीं क्योंकि जो अपावन नहीं है उसे अपावन मन से नहीं जाना जा सकता। क्या मन

स्वयं को निर्मल कर सकता है? हां, अवश्य कर सकता है। और यदि मन अपने आपको स्वच्छ कर सके तो आप देख सकते हैं, आप उसका पता लगा सकते हैं। मन को निर्मल, स्वच्छ करना ही ध्यान है।

प्रश्न : दुख में हम रोते क्यों हैं और खुशी में हंसते क्यों हैं?

कृष्णमूर्ति : क्या आप जानते हैं कि दुख क्या है? जब मेरे भाई या बहन की, पिता या माता की मृत्यु होती है तो मुझे दुख महसूस होता हूं। जब किसी प्रिय व्यक्ति से मेरा वियोग होता है तो मैं दुखी हो जाता हूं। मेरे स्नायु-तंत्र पर इसका असर होता है—होता है न? मैं रोने लगता हूं, मेरी आंखों से आंसू बहते हैं, मैं विलाप करता हूं। जब मुझे बहुत खुशी होती है तो मैं हंसता हूं। यह भी वैसी ही एक प्रतिक्रिया है क्योंकि हंसना भी स्नायु-तंत्र की ही एक क्रिया होती है।

दुख एवं खुशी—क्या वे अलग-अलग हैं? जब आपको चोट लग जाती है, जब अत्यंत तीव्र पीड़ा होती है तो आप चीख पड़ते हैं—चीखते हैं न? आपकी आंखों में आंसू आने लगते हैं। दुख का एक प्रकार वह भी है—पीड़ा, शारीरिक पीड़ा। किंतु एक पीड़ा वह भी होती है जो किसी से बिछोह होने पर होती है, जो तब होती है जब मृत्यु होती है और उस व्यक्ति को उठा ले जाती है जिसे आप चाहते थे। इससे आपको धक्का लगता है, आपमें अकेले हो जाने की भावना आ जाती है, दूसरों से अलग हो जाने की, बिछुड़कर उनसे दूर हो जाने की अनुभूति होती है। उस आघात की प्रतिक्रिया आंखों में आंसू ले आती है। और जब आप किसी की मुस्कान देखते हैं तो आप हंसते हैं। जब आप प्रसन्नता का अनुभव करते हैं तो आप नाचते हैं, आप हंसते हैं, आप मुस्कराते हैं। ज़ाहिर है कि हंसना या रोना इन्हीं सब बातों से होता है।

हम मानव हैं। हम सतत खुशी पाना चाहते हैं, हम कष्ट झेलना नहीं चाहते, हम अपनी आंखों में आंसू नहीं आने देना चाहते। हम चाहते हैं कि हमारे होंठों पर हमेशा मुस्कान ही टिकी रहे और इसलिए समस्या उत्पन्न होती है। हम दुख को दूर रखना चाहते हैं और केवल खुशी ही पाते रहना चाहते हैं और इसलिए हम निरंतर द्वंद्व में पड़े रहते हैं, लगातार संघर्ष में लगे रहते हैं। परंतु खुशी कोई ऐसी चीज़ नहीं होती जिसे आप इस प्रकार से पा सकें। यह तभी आती है जब आप इसके लिए चेष्टा नहीं करते। यदि आप खुशी पाने के उद्देश्य से प्रयास करते हैं तो यह कभी न आएगी। परंतु यदि आप कुछ ऐसा करते हैं जिसे आप करने योग्य समझते हैं, जिसे आप सत्य की तरह ग्रहण करते हैं—जिसे करना आपको सचमुच अच्छा लगता है तो उसे किए जाने में ही खुशी अनायास चली आती है।

12 जनवरी 1954

महत्त्वाकांक्षा

लोगों से हम यह सुनते आए हैं कि यदि महत्त्वाकांक्षा न हो तो हम कुछ नहीं कर सकते। हमारे विद्यालयों में, हमारे सामाजिक जीवन में, हमारे आपसी संबंधों में, जीवन में हम जो कुछ भी करते हैं उसमें हमें ऐसा महसूस होता है कि किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए महत्त्वाकांक्षा का होना आवश्यक है, फिर वह लक्ष्य चाहे व्यक्तिगत हो या सामूहिक हो, सामाजिक हो अथवा राष्ट्र से संबंधित हो। आप जानते हैं कि इस महत्त्वाकांक्षा शब्द का क्या अर्थ है? किसी ध्येय को प्राप्त कर लेना, उसके लिए चेष्टा करना, व्यक्तिगत प्रयत्न करना—यह भावना होना कि संघर्ष किए बिना, प्रतिस्पर्धा किए बिना, धक्का-मुक्की बिना इस संसार में आपको कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। कृपया स्वयं का अवलोकन करें, अपने आसपास के लोगों का अवलोकन करें और आप देखेंगे कि लोगों में कितनी महत्त्वाकांक्षा होती है। क्लर्क मैनेजर बनना चाहता है, मैनेजर मालिक बनना चाहता है, मंत्री प्रधानमंत्री बनना चाहता है और लेफ्टिनेंट जनरल बनना चाहता है। इस प्रकार प्रत्येक की अपनी कोई महत्त्वाकांक्षा हुआ करती है। विद्यालयों में भी हम इस भावना को प्रोत्साहित करते हैं। हम विद्यार्थियों को इसके लिए प्रेरित करते हैं कि वे प्रतियोगिता करें, किसी भी अन्य से श्रेष्ठ हो सकें।

हमारी सारी तथाकथित प्रगति महत्त्वाकांक्षा पर निर्भर होती है। यदि आप रेखांकन कर रहे हैं तो आपको किसी भी दूसरे की अपेक्षा अधिक सुंदर ढंग से इसे करना चाहिए, यदि आप कोई प्रतिमा या चित्र बनाते हैं तो वह अन्य किसी के द्वारा निर्मित प्रतिमा या चित्र से बेहतर होना चाहिए, इस प्रकार का एक संघर्ष निरंतर चलता ही रहता है। इस प्रक्रिया में होता यही है कि आप अत्यधिक क्रूर होने लगते हैं। चूंकि आप किसी ध्येय को पाना चाहते हैं इसलिए आप अपनी कक्षा में, अपने समूह में या अपने राष्ट्र में, जिस किसी भी स्तर पर क्यों न हों, क्रूर, निष्ठुर एवं संवेदनहीन होने लगते हैं।

महत्त्वाकांक्षा मूलतः स्वयं पर और दूसरों पर काबू पाने की इच्छा का ही एक रूप है, एक सत्ताकांक्षा है जिसमें किसी दूसरे की तुलना में अधिक अच्छा करने का आग्रह होता है। महत्त्वाकांक्षा में तुलना कहीं-न-कहीं अवश्य छिपी होती है और इसलिए महत्त्वाकांक्षी मनुष्य वास्तव में कभी सृजनशील नहीं होता, वह कभी एक प्रसन्न मनुष्य नहीं होता, अपने भीतर वह सदैव असंतुष्टि ही अनुभव करता है। और फिर भी हमें यही लगता है कि महत्त्वाकांक्षा के बिना हम कुछ नहीं हो सकते, हम ज़रा भी प्रगति नहीं कर सकते।

क्या काम करने का, जीवन को जीने का, आचरण करने का, रचनात्मक होने का ऐसा कोई तरीका नहीं हो सकता जिसमें महत्त्वाकांक्षा का स्थान ही न हो, जिसमें क्रूर, होड़ भरा संघर्ष हो ही न, जो कि अंततः युद्ध का कारण बनता है? मुझे लगता है कि एक दूसरा तरीका अवश्य है। परंतु उस रास्ते पर चलने का मतलब है विचार द्वारा स्थापित सारी रूढ़ियों के विपरीत कार्य करना। जब हम किसी परिणाम को पाने के लिए चेष्टा करने लगते हैं तो वह परिणाम ही हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है, न कि हमारे द्वारा किया जाने वाला कार्य। कार्य अपने आपमें गौण हो जाता है। अपने कार्य के परिणाम के रूप में हमें क्या मिलेगा, इसे करने से कौन-सा मान-सम्मान या प्रतिष्ठा हमें मिलेगी आदि की चिंता किए बिना क्या यह संभव है कि हम जो कर रहे हैं उसे हम समझें और उससे हमें प्रेम हो?

सफलता उस समाज का आविष्कार है जो लोभी है, जो संग्रह को महत्त्व देता है। जैसे-जैसे हम बड़े हो रहे हैं, क्या हममें से हरएक इसका पता लगा सकता है कि हमें वस्तुतः क्या करना प्रिय है? चाहे वह जूतों की मरम्मत का काम हो, मोची बनना हो या पुल निर्माण का कार्य हो या फिर एक सक्षम और कुशल प्रशासक बनना हो? क्या हमारे लिए यह संभव है कि हमारे कार्य से हमें क्या मिलेगा अथवा दुनिया में इससे क्या होगा इसकी चिंता छोड़कर अपने कार्य से ही हम प्रेम कर सकें? यदि हम इस उमंग को, अपनी इस भावना को समझ सकें तो मुझे लगता है कि हमारे कार्य से वैसे क्लेश उत्पन्न नहीं होंगे जैसे कि इस समय हुआ करते हैं—तब हम आपस में झगड़ेंगे नहीं। किंतु आप सचमुच करना क्या चाहते हैं इसका पता लगाना बहुत कठिन है क्योंकि आपमें कितनी ही परस्पर-विरोधी आकांक्षाएं होती हैं। किसी इंजन को तेजगति से दौड़ते हुए देखकर आप इंजन-ड्राइवर बनना चाहते हैं। जब आप छोटे होते हैं तो इंजन में आपको एक विलक्षण सुंदरता दिखाई पड़ती है—पता नहीं आपने उसे कभी गौर से देखा है या नहीं। किंतु वह समय बीत जाता है और फिर आप एक कुशल वक्ता, लेखक या इंजीनियर बनना चाहते हैं, और वह अवस्था भी बीत जाती है। हमारी इस सड़ी-गली शिक्षा-प्रणाली के फलस्वरूप आप किसी एक खास दिशा में, किसी लीक पर चलने के लिए विवश हो जाते हैं। फलतः आप बाबू, वकील या सबको नुकसान पहुंचाने वाले कोई व्यक्ति बन जाते हैं और उस कार्य के माध्यम से जीवनयापन करने लगते हैं, आप प्रतिस्पर्धा करते हैं, महत्त्वाकांक्षाएं रखते हैं, संघर्ष करते हैं।

शिक्षा का क्या यह काम नहीं है कि जब आप छोटे हों और इस प्रकार के किसी विद्यालय में पढ़ रहे हों तो वह आपमें ऐसी प्रज्ञा जाग्रत करे कि आप अपनी नैसर्गिक क्षमता के अनुकूल किसी ऐसी जीविका को अपना सकें जिससे आपको लगाव हो, जिसे आप करना चाहें, और आपको वैसा कोई काम-धंधा न करना पड़े जिसमें आपको अरुचि हो या जिससे आप

ऊब जाते हों और जिसे आप केवल इसलिए कर रहे हों क्योंकि आपका विवाह हो चुका है या आपके माता-पिता की ज़िम्मेदारी आपके कंधों पर है या आपके अभिभावक आपसे कहते हों कि आपको वकालत करनी होगी जबकि आप वास्तव में चित्रकार बनना चाहते हैं? जब आप अभी छोटे हैं क्या इसी दौरान यह होना ज़रूरी नहीं है कि आपके शिक्षक महत्त्वाकांक्षा की इस समस्या को स्वयं भी समझें और आपमें से प्रत्येक से इस बारे में चर्चा करें, इसे ठीक से समझाते हुए, प्रतिस्पर्धा के समूचे प्रश्न पर गहराई से जांच-पड़ताल करें? इससे आपको यह पता लगाने में मदद मिलेगी कि वस्तुतः आप क्या करना चाहते हैं।

इस बारे में वर्तमान में हम इस आधार पर सोचते हैं कि हम ऐसा कुछ करें जो वैयक्तिक रूप से हमें लाभ पहुंचाए या समाज अथवा राष्ट्र के लिए हितकर हो। भीतर से परिपक्व हुए बिना ही हम वयस्क हो जाते हैं, बिना यह जाने कि हम क्या करना चाहते हैं, हमें किसी ऐसे कार्य को करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है जिसे हमारा हृदय बिलकुल नहीं करना चाहता। इसलिए हम विपदा में जीते हैं। किंतु समाज अर्थात आपके माता-पिता, आपके अभिभावक, आपके मित्र और आपको जानने वाले आपके इर्द-गिर्द के लोग सब यही कहते हैं कि आप कितने तेजस्वी हैं, कितने महान हैं क्योंकि आपको सफल समझा जाता है।

हम महत्त्वाकांक्षी हैं। महत्त्वाकांक्षा केवल बाहरी संसार में ही नहीं बल्कि हमारे मानसिक जगत में भी मौजूद होती है। उस जगत में भी हम सफल होना चाहते हैं, महानतम ध्येयों को पाना चाहते हैं। कुछ होने के लिए किया जाने वाला यह अनवरत संघर्ष अत्यंत विनाशकारी और विघटनकारी होता है। क्या आप कुछ 'होने' की लालसा को नहीं समझ पा रहे हैं? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप जो भी हैं आप बस उस पर ही अपना ध्यान दें और फिर वहीं से आगे बढ़ें? यदि मैं ईर्ष्यालु हूं तो ईर्ष्यारहित होने का प्रयास करने के बजाय क्या मैं बस इतना जान सकता हूं कि मैं ईर्ष्यालु या द्वेषपूर्ण हूं? ईर्ष्या हमें अपने आप में बंद कर सीमित कर देती है। यदि मुझे पता है कि मैं ईर्ष्यालु हूं और यदि मैं इसका निरीक्षण करूं, उसमें कोई दखल न दूं तो मैं देखूंगा कि तब कुछ असाधारण होता है।

कुछ बनने का प्रयत्न करने वाला, वह चाहे ऐसा प्रयत्न बाहरी संसार में कर रहा हो या आध्यात्मिक तल पर, एक यंत्र भर होता है, उसे कभी पता नहीं चलेगा कि वास्तविक आनंद क्या है। वास्तविक आनंद को केवल तब जाना जाता है जब कोई इसका अवलोकन करता है कि वह क्या है और उस जटिलता को, उस सौंदर्य को, उस कुरूपता को, उस विकारग्रस्तता को बिना कुछ और होने की चेष्टा किए यथावत रहने देता है। इसे करना बहुत कठिन होता है क्योंकि मन सदा कुछ-न-कुछ करते रहना चाहता है। आप

दार्शनिक अथवा महान लेखक होना चाहते हैं, आप एम. ए. होना चाहते हैं। किंतु आप यह देखिए कि ऐसी महत्त्वाकांक्षा कभी भी सृजनशीलता नहीं होती। उस महत्त्वाकांक्षा में स्वस्फूर्ति नहीं होती क्योंकि तब आप केवल सफलता पाने के लिए व्यग्र होते हैं। तब आप स्वयं महत्त्वाकांक्षा को समझने के बदले सफलता को इष्ट बनाकर उसकी पूजा करने लगते हैं। आप चाहे कितने ही निर्धन हों, कितने ही रिक्त हों, कितने ही मंदबुद्धि हों, यदि आप यथावत इस चीज़ को देख सकें, तो यह अपने आपमें रूपांतरित होने लगती है। परंतु कुछ 'बनने' में फंसा मन 'वास्तविकता' को कभी नहीं समझ पाता। व्यक्ति जो है उसकी समझ और जो वह है उससे अभेद एक अनूठा उल्लास लाते हैं; तब सृजनशील विचार, सृजनशील जीवन का उद्‌भव होता है।

एक सामान्य छात्र के लिए शायद यह सब थोड़ा सा कठिन होगा। जैसा कि मैंने कल कहा था, इस बारे में आपको अपने शिक्षकों से चर्चा करनी होगी। क्या आपने अपने शिक्षकों से प्रश्न किए? क्या कक्षा के समय में से दस मिनट आपने इसके लिए दिए? इस बारे में आपने क्या किया, और आपके शिक्षकों ने क्या किया? क्या आप मुझे बताएंगे? जो कुछ कहा गया, क्या उसे आपने अपने शिक्षकों के माध्यम से समझा?

आज की सुबह, हम एक ऐसे विषय पर चर्चा करने जा रहे हैं जो कि जीवन के प्रति सामान्य परंपरागत दृष्टि से पूर्णतः भिन्न प्रकार का है। हमारी तमाम धार्मिक किताबें, हमारी समस्त शिक्षा, हमारे सारे सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टिकोण कुछ प्राप्त करने को, कुछ बनने को, महत्त्व देते हैं। परंतु उस तरीके से किसी सुखी संसार का सृजन नहीं हो पाया है, उसने तो भयावह व्यथाओं को ही जन्म दिया है। हिटलर, स्टालिन, रूजवेल्ट ये सभी उसके ही परिणाम हैं, और उसी तरह आपके अतीत एवं वर्तमान के नेतागण भी उसी का नतीजा हैं।

महत्त्वाकांक्षा एक खिन्न व्यक्ति की गतिविधि है, किसी खुशदिल इंसान की नहीं। परंतु महत्त्वाकांक्षा के बिना जीना, काम करना, सोचना और सृजन करना अत्यधिक कठिन है। महत्त्वाकांक्षा को समझे बिना सृजनशीलता संभव नहीं है। महत्त्वाकांक्षी मनुष्य कभी सृजनशील, उल्लास से भरा नहीं होता, वह सदा पीड़ित रहता है। किंतु जिसे किसी भी चीज़ से प्रेम होता है, जो किसी भी चीज़ के होने की गरिमा को महसूस करता है, वह वास्तव में सृजनशील होता है। ऐसा व्यक्ति क्रांतिकारी होता है। जो कम्युनिस्ट, समाजवादी, कांग्रेसी अथवा साम्राज्यवादी है वह कभी क्रांतिकारी नहीं हो सकता। सृजनशील मनुष्य आंतरिक समृद्धि से परिपूर्ण होता है और उससे ही प्रेरित होकर कोई काम करता है, वहीं उसकी अंतश्चेतना होती है।

मैंने जो कुछ कहा उसके गूढ़ तात्पर्य आप अपने शिक्षकों से पूछें और इसकी खोज करें कि क्या मनुष्य महत्त्वाकांक्षा के बिना भी जी सकता है।

अभी तो हम महत्त्वाकांक्षा के साथ ही जीते हैं। वह हमारी रोज़ की खुराक है। किंतु वह खुराक हमारे लिए विष के समान है—उससे हममें हर प्रकार के विषाद उत्पन्न होते हैं, मानसिक भी और शारीरिक भी, और इसलिए जब भी अपनी महत्त्वाकांक्षा को हम पूरा नहीं कर पाते या उसमें हम पीछे रह जाते हैं तो अस्वस्थ हो जाया करते हैं। लेकिन जिसे अपने कार्य से लगाव होता है, जिसके मन में उस कार्य को करने की आंतरिक उमंग होती है और जिसके मन में उस कार्य के लक्ष्य अथवा फल का कोई विचार तक नहीं उठता, वह कुंठाओं से मुक्त होता है, उसे बाधाएं विचलित नहीं करती, वह वस्तुतः सृजनशील होता है।

प्रश्न : हम शर्माते क्यों हैं?

कृष्णमूर्ति : थोड़ा-बहुत शर्माना तो अच्छी बात है, है न? जो बालक-बालिकाएं बिलकुल संकोच नहीं करते, जिन्हें जरा सी भी हिचक महसूस नहीं होती—वे किसी शर्मीले व्यक्ति की तरह मृदुल और संवेदनशील नहीं हुआ करते। थोड़ा-सा शर्मीलापन अच्छा होता है क्योंकि यह संवेदनशीलता का सूचक है। किंतु बहुत अधिक शर्मीलापन भी स्व-केंद्रित होने का सूचक होता है, है न? स्व-केंद्रित शब्द का अर्थ क्या है? अपने आप पर अधिक ध्यान देना, अपनी वैयक्तिकता, अपनी शान की तरफ तवज्जो देना। ऐसे व्यक्ति का शर्मीलापन गलत ढंग का होता है क्योंकि वह अपने आपको तुलना का केंद्र बना लेता है और शर्म अनुभव करता है। वह अपने आपको केंद्र मानकर उस केंद्र के द्वारा बाहर देखता है। जब कोई लड़का सदैव अपनी तुलना किसी से करने लगता है तो वह संकोचशील हो जाता है, वह अपने आप पर आवश्यकता से अधिक ध्यान दे रहा होता है।

तरुण अवस्था में अधिकतर लोग संकोची होते हैं, जैसे-जैसे वे युवावस्था की ओर आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे थोड़े विचित्र स्वभाव के होने लगते हैं, वे कुछ शर्मीले और संवेदनशील होने लगते हैं। मुझे लगता है कि उस प्रकार की संवेदनशीलता, वैसी मृदुता, थोड़ी-सी हिचक होना, अपने पूरे जीवन में थोड़ी सी झिझक रहने देना अच्छा होता है क्योंकि यह प्रगाढ़ संवेदनशीलता की द्योतक है। किंतु जब मैं कहता हूं, 'मैं इस वर्ग से संबंधित हूं, मेरा एक विशिष्ट स्थान, प्रतिष्ठा है, अधिकार है, मैं कुछ हूं' तो वह संवेदनशीलता गायब हो जाती है। जैसे ही आपमें यह भाव आता है कि आप कुछ खास हैं, आपकी संवेदनशीलता खो चुकी होती है, आपकी सारी कोमलता और उस संवेदनशीलता से आनेवाला सौंदर्य जीवन से विदा हो चुका होता है। आप जानते ही होंगे कि अन्वेषण करने के लिए, खोज कर सकने के लिए मनुष्य में थोड़ी झिझक, थोड़ा संकोच अवश्य होना चाहिए। यदि आपके तौर-तरीकों में थोड़ा संकोच हो, यदि आप बहुत संवेदनशील

हों तो आप जीवन की सम्पूर्ण जटिलता को, सौंदर्य को, संघर्ष को जान पाएंगे। परंतु उस प्रकार की झिझक के अभाव में, ऐसे संकोच के बिना जिसमें भय का स्पर्श तक न हो—आप जीवन की कमनीयता को कभी न देख सकेंगे—आप वृक्षों को, उनकी छायाओं को, या टेलीग्राफ के खंभे पर शांतिपूर्वक बैठे पक्षी को कभी न देख पाएंगे।

प्रश्न : यदि हममें महत्त्वाकांक्षा न हो तो हम प्रगति कैसे कर सकेंगे?

कृष्णमूर्ति : क्या आपको ऐसा लगता है कि जो अनेक आविष्कार हुए वे महत्त्वाकांक्षा के कारण हुए? क्या आप यह सोच सकते हैं कि कोई वैज्ञानिक जो वास्तव में किसी समस्या का समाधान खोजता है, या एक सच्चा शोधकर्ता महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित हो कर ऐसा करता है? जिस मनुष्य ने जेट विमान का, जेट इंजन का आविष्कार किया क्या वह महत्त्वाकांक्षी था? वह तो बस आविष्कार करता है और फिर दूसरे महत्त्वाकांक्षी आगे बढ़ कर उस अनुसंधान का उपयोग अपने प्रयोजनों के लिए, धन के लिए, युद्ध करने के लिए, अपने जीविका निर्वाह के लिए करने लगते हैं।

क्या महत्त्वाकांक्षा के द्वारा कभी आप कुछ कर पाए हैं? शायद आप यहां से वहां पहुंच गए हों। शायद आप एक बेहतर नौकरी, एक ऊंचा पद पा सकें, हो सकता है कि आप प्रिंसिपल, गवर्नर या कलेक्टर बन जाएं। परंतु क्या यही जीवन है, क्या यही प्रगति है? एक ओर बैलगाड़ी है तो दूसरी ओर जेट विमान है, इसे ही प्रायः प्रगति कहा जाता है। यह तो मानना ही होगा कि बैलगाड़ी से जेट विमान तक आना, संदेशवाहक से तार तक की प्रगति, और फोन से तुरंत कहीं भी बातचीत संभव होना, यह सब प्रगति अविश्वसनीय सीमा तक पहुंच चुकी है। प्रगति के बारे में हमारी सोच सदा एक विशिष्ट दिशा में ही बंधी होती है, और हम महत्त्वाकांक्षा में निहित सभी अर्थों पर विचार नहीं करते। मान लीजिए कि यहां पर खनिज तेल भूमि से निकाला जा सकता है—ऐसा पता चलता है। तब, आप क्या सोचते हैं—इसका क्या परिणाम होगा? शीघ्र ही उसके दोहन के लिए सारे उपाय किए जाने लगेंगे। मैं यह नहीं कहता कि बनारस में खनिज तेल नहीं पाया जाना चाहिए, परंतु प्रगति के संबंध में सोचा यह जाता है कि तेल का अधिक से अधिक उत्पादन और उपयोग किया जाना ही प्रगति है, और महत्त्वाकांक्षा की समूची जटिल समस्या का स्वरूप क्या है इसे समझने का प्रयत्न तक नहीं किया जाता।

एक साधारण-सा उदाहरण देखें। दक्षिणी समुद्र तटीय क्षेत्रों में एक मिशनरी धर्म-प्रचारक, चर्च में आने वालों को नियमित रूप से प्रति रविवार को बाइबल पढ़कर सुनाया करता था। जब वह बाइबल की कथाएं सुनाता तो लोग बहुत ध्यानपूर्वक उन्हें सुनते थे। कुछ समय बाद उसके मन में यह विचार उठा कि कितना अच्छा होता यदि ये सब लोग पढ़ पाते। इस उद्देश्य के लिए पैसा जमा करने वह अमेरिका गया। वह वहां से वापस

लौटा और उन लोगों को पढ़ना-लिखना सिखाया। परंतु बाद में उसे यह देख कर बहुत निराशा हुई कि वे लोग बाइबिल नहीं बल्कि कॉमिक्स पढ़ रहे थे।

इसलिए सच्ची प्रगति इस बात में है कि आपके मन में क्या हो रहा है। क्या उस तल पर आप प्रगति कर रहे हैं, या आप बस ग्रामोफोन के रिकॉर्ड बन कर रह गए हैं और उन्हीं पुरानी, हास्यप्रद, त्रासदी या मूढ़ताभरी कहानियों को दोहरा रहे हैं?

प्रश्न : दुनिया में लोग किसलिए जन्म लेते हैं?

कृष्णमूर्ति : इसके अनेक कारण हैं—सेक्स, वासना, बच्चों की कामना आदि। यह एक सबसे सरल कारण है। आप देखते हैं कि पेड़ों पर या झाड़ियों में फूल आते हैं। प्रकृति चाहती है कि अपनी प्रजातियों में निरंतर वृद्धि होती रहे। आप समझ रहे हैं न? आम के वृक्ष पर बौर लगते हैं, फूलों में परागण होता है और फिर फल आते हैं। आम के फल में गुठली होती है जिसे आप फेंक देते हैं, जब वह उपजाऊ जमीन पर गिरती है तो उग कर एक वृक्ष बन जाती है जिसमें और भी बहुत से आम लगते हैं। यह एक प्रकार की अनवरत प्रक्रिया है, है न? इसी प्रकार मनुष्यों में भी अपनी प्रजातियों की वृद्धि की एक सतत प्रक्रिया चलती रहती है। परंतु आम के वृक्ष आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं, बाघ एक-दूसरे का वध नहीं करते, केवल हम मनुष्य नामक जीव ही एक दूसरे का संहार करते हैं, हम ही ऐसी प्रजाति हैं जो एक-दूसरे की हत्या करते हैं, और अपनी संहार क्षमता की वृद्धि को हम प्रगति कहते हैं। क्या यही प्रगति है?

एक श्रोता : कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री का दूसरा नाम है रहस्य।

कृष्णमूर्ति : आप मुझसे जो पूछ रहे हैं वह कोई गूढ़ पहेली है या समस्या है? आप जानते हैं कि पहेली किसे कहते हैं? यह ऐसा उलझावभरा प्रश्न होता है जिसे सुलझाने के लिए बहुत सोचना होता है। आप इन व्यर्थ की बातों की ओर ध्यान क्यों देते हैं? देखिए, पहले तो हम किसी किताब में कुछ पढ़ लेते हैं और फिर उस बारे में खोजकर उसका पता लगाने की कोशिश करने लगते हैं। कुछ लोग कहते हैं, 'स्त्री का दूसरा नाम है रहस्य'—इसका क्या मतलब है? स्त्रियां कुछ ऐसी रहस्यमय जीव नहीं होतीं, या होती हैं? यह वस्तुतः कोई रहस्यमय बात नहीं है परंतु हम कृत्रिम रहस्यों से संतुष्ट हो जाया करते हैं, हमें जादूगर अच्छा लगता है, अंधेरा कमरा, रहस्यमय लोग आकर्षित करते हैं। हम रहस्यों की तलाश में रहते हैं। परंतु रहस्य तो होते ही नहीं। जिन्हें हम रहस्य समझते हैं वे सब केवल मन के ही आविष्कार होते हैं।

यदि आप मन की गतिविधियों को समझ सकें एवं उनसे पार जा सकें तो आप पाएंगे कि सही मायने में एक रहस्य है। परंतु हममें से कुछ ही

उनके पार जाते हैं और उस रहस्य तक पहुंचते हैं। आप सभी की रुचि जासूसी कहानियों, पुराने मठों-मज़ारों के सतही रहस्यों से ही संतुष्ट हो जाया करती है। यदि कोई अपने स्वयं के मन की कार्यविधियों को समझ सके और उनसे ऊपर उठ सके तो उसे अद्‌भूत बातें पता चलेंगी।

प्रश्न : हम स्वप्न कैसे देखते हैं?

कृष्णमूर्ति : क्या आप स्वप्न देखते हैं? आप किस प्रकार के स्वप्न देखा करते हैं? यदि आप भरपेट भोजन करके सो जाते हैं तो आपको किसी विशेष तरह के स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। स्वप्न अनेक तरह के होते हैं।

स्वप्न क्या होते हैं? आप क्या सोचते हैं? स्वप्न एक बहुत जटिल चीज़ है। यहां तक भी संभव है कि जब आप जाग्रत होते हैं, जब किसी सड़क पर से जा रहे होते हैं या चुपचाप बैठे हुए होते हैं तो आप स्वप्न देखने लगते हैं, क्योंकि आपका मन तो अनेक बातें सोचता रहता है। आप भले ही यहां बैठे हों पर आप यह विचार कर सकते हैं मानो आप घर में बैठे हैं, और यह कल्पना कर सकते हैं कि आपकी मां क्या कर रही है, या आपके पिता क्या कर रहे हैं, या आपका छोटा भाई क्या कर रहा है। यह स्वप्न का ही एक रूप है, है कि नहीं? हालांकि आप चुपचाप बैठे हैं परंतु आपका मन भागता रहता है, कल्पना करता रहता है, अनुमान लगाता रहता है, कहीं और चला जाता है।

इसी तरह, जब आप सोये होते हैं तब भी आपका मन कहीं अन्यत्र होता है, कल्पना और अनेक ख्यालों के साथ कहीं भटकता रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्वप्न ऐसे भी होते हैं जो आपके गहरे अवचेतन मन से जन्म लेते हैं। और कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जो भविष्य की जानकारी पहले से ही दे देते हैं, जो आपको चेतावनी देते हैं, जो आपको कुछ पूर्व-संकेत देते हैं। मनुष्य के लिए यह संभव है कि उसे बिलकुल स्वप्न न आएं और वह बहुत गहरी नींद सो सके और उस गूढ़ गहनता में किसी ऐसे तत्त्व को ढूंढ़ पाए जिसे चेतन अथवा अचेतन मन कभी नहीं खोज सकता—किसी ऐसे तत्त्व का संकेत उसे मिले जिसे मन कभी नहीं रच सकता।

मन ऐसी ही अद्‌भुत चीज़ है। आप कुछ खास विषयों को पढ़ते हुए और अनेकों परीक्षाएं पास करते हुए अठारह या बीस साल बिता देते हैं, पर जिसे मन कहा जाता है उस असाधारण वस्तु को समझने के लिए आप घंटा भर या दस मिनट भी नहीं निकालते। मन को समझे बिना यदि आप अनेक परीक्षाएं पास कर भी लें, यदि आप नौकरियां पा भी लें या मंत्री भी बन जाएं तो भी वह व्यर्थ है। मन ही भ्रांतियों को उत्पन्न करता है और यदि आप भ्रांतियों के सृजनकर्ता को नहीं समझ पाते हैं तो आपके जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

मैं जिन चीज़ों के बारे में बातें कर रहा हूं क्या आप उन सबको समझ पा रहे हैं? दिक्कत यह है कि मैं अंग्रेजी में बोल रहा हूं। पर यदि मैं हिंदी में बोल रहा होता तो भी मुझे शक है कि आप मुझे समझ पाते। शब्दों को तो आप समझ लेंगे पर उनके अभिप्राय को नहीं—शब्दों में छिपे आशय को आप नहीं समझ पाएंगे। उनके निहितार्थ को जानने के लिए आपको चाहिए कि अपने अभिभावकों या शिक्षकों से पूछें।

मैंने जो कुछ कहा है वह आपके समूचे जीवन से जुड़ा प्रश्न है। इसे एक या दो दिनों में जान लेने का प्रयत्न करना पर्याप्त नहीं होगा, इसके गूढ़ तात्पर्यों को तो जीवन को जीते हुए ही जानना होगा। परंतु यदि आप महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित हैं, यदि आप भय से परिचालित होते हैं, तो आप जी नहीं सकते। खोज पाने के लिए संवेदनशील होना ज़रूरी है, अंतःकरण की स्वतंत्रता ज़रूरी है और यदि आप अपने मन की कार्यविधियों को नहीं समझते तो उस संवेदनशीलता से, उस स्वतंत्रता से आप वंचित रह जाते हैं।

प्रश्न : किसी समस्या पर विचार करने का क्या तरीका होता है?

कृष्णमूर्ति : यह प्रश्न अवश्य ही एक विवेकपूर्ण प्रश्न है—हम किसी समस्या पर किस प्रकार से विचार करें? अधिकांश लोग समस्या का कोई उत्तर पा लेना चाहते हैं। परंतु वह बालक यह जानना चाह रहा है कि किसी समस्या पर चिंतन किस तरीके से किया जाता है—जो कि उससे एक बिलकुल भिन्न बात है। वह किसी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है, कम-से-कम मुझे तो ऐसी ही उम्मीद है।

किसी भी समस्या का कोई उत्तर नहीं होता और इसलिए उत्तर खोजना बेवकूफी है। लेकिन अगर मुझे समस्या पर विचार करना आता है तो इस विचार करने में ही उत्तर मिल जाता है। जैसे आपके पास गणित की कोई समस्या है। आपको उसका उत्तर मालूम नहीं होता लेकिन पुस्तक के अंत में उत्तर छपे होते हैं तो उत्तर देखने के लिए आप बार-बार पुस्तक के पन्ने उलटते हैं। परंतु जीवन इस तरह की कोई चीज़ नहीं है। इसके उत्तर आपको कोई नहीं दे पाएगा। यदि कोई सोचता है कि वह आपको उत्तर दे सकता है तो वह मूर्ख है। लेकिन यदि आप यह जानते हों कि समस्या पर विचार करने का तरीका क्या है, उसका अवलोकन किस प्रकार से किया जाता है, उससे रूबरू कैसे हुआ जाता है तो चिंतन और निरीक्षण अपने आप में ही हल है।

आप यह जानना चाहते हैं कि किसी समस्या पर विचार कैसे किया जाता है। पहली बात जो बिलकुल स्पष्ट है वह है कि समस्या से भयभीत न हुआ जाए। आप समझ रहे हैं न? क्योंकि यदि आप डर जाते हैं तो आप उसका अवलोकन नहीं करेंगे, आप उससे भाग खड़े होंगे। दूसरी बात यह है कि उसकी निंदा न करें, यह न कहें कि यह कितनी कठिन है, कितनी

भयावह है, कितनी कष्टप्रद है। फिर किसी समस्या से उसकी तुलना न करें या समस्या से संपर्क करते समय उसका तुलनापरक मूल्यांकन न करें। यह सब कुछ थोड़ा कठिन है। यदि समस्या से संपर्क करते समय आप पहले ही से कोई विशिष्ट निर्णय ले कर, उस समस्या का कोई तय उत्तर मानकर आगे बढ़ते हैं तो आप उस समस्या को समझ नहीं पाते। अतः समस्या को समझ पाने के लिए यह ज़रूरी है कि तुलना न की जाए, भय न हो, निर्णय न लिया जाए—समस्या को समझने के लिए ये सारी बातें अपरिहार्य रूप से सहायक होती हैं। तुलना, भय एवं निर्णय से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं के अतिरिक्त वस्तुतः समस्याएं कहीं होती ही नहीं।

कृपया इस सब के बारे में अपने शिक्षकों से और आपस में भी बातचीत कीजिए। इन विचारों का, इन शब्दों का अपने भीतर मनन होने दीजिए ताकि आप इन सारे मुद्दों से अवगत हो सकें। तब आप जीवन की समस्याओं का सामना करने में समर्थ हो पाएंगे।

13 जनवरी 1954

परंपरा

हम कई दिनों से भय के प्रश्न पर चर्चा कर रहे हैं। अब हम जिस विषय पर विचार करने जा रहे हैं मुझे लगता है कि वह हमारी सबसे बड़ी कठिनाइयों में से एक है—यानी मन को अनुकरण की प्रवृत्ति से कैसे बचाया जा सकता है।

कुछ क्षेत्रों में अनुकरण साफ नज़र आता है, जैसे दूसरों की नकल करना, कुछ सीखना, खाना खाने का खास ढंग, विशिष्ट तरह की पोशाक पहनना, साइकिल या कार चलाना, कोई कौशल सीखना आदि। अनुकरण के ये रूप सतही होते हैं, अनायास सीख लिये जाते हैं, इन्हें सीखना ज़रूरी भी होता है क्योंकि वे उपयोगी और आवश्यक होते हैं। परंतु परंपरा के द्वारा मन एक ऐसा यंत्र बन जाता है जो केवल अनुकरण की परिपाटी पर ही कार्य करता है।

मैं जो कहने जा रहा हूं वह शायद कुछ कठिन है। यदि यह आपको कठिन लगता हो तो अपने शिक्षक से इस पर चर्चा कर लें। उनसे प्रश्न करें क्योंकि यह बहुत ज़रूरी है कि मन किसी भी सांचे में ढलकर जड़ न हो जाए, सृजनात्मक स्फूर्ति से रहित किसी यंत्र की तरह न हो जाए।

मन किस तरह से अपने लिए स्वयं ही कोई परिपाटी बना लेता है और इस पर सामाजिक, परिवेशगत दबावों के माध्यम से, संस्कारबद्धता, स्थापित ढांचों और अवरोधों के द्वारा किस प्रकार परंपरा को थोप दिया जाता है, यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। अनुकरण कैसे होता है इस पर हमें सोच-विचार करना होगा—न कि इस बारे में कि मन को इससे मुक्त कैसे करें या मन अपनी अनुकरण करने की प्रक्रिया से स्वयं को कैसे मुक्त कर ले।

हममें से ज्यादातर के लिए अनुभव परंपरा का रूप ले लेता है। 'अनुभव' से मेरा क्या तात्पर्य है, आप समझ रहे हैं? आप किसी वृक्ष को देखते हैं, देखना यानी नेत्रों से किया जाने वाला संवेदन अनुभव की रचना करता है, है न? आप एक कार को देखते हैं; उसको देखा जाना ही अनुभव है और अनुभव ही किसी परंपरा का निर्माण करता है। आपका मन परंपरा से बंधा होता है क्योंकि परंपरा स्मृति है और लोग जितने अधिक वृद्ध हो जाते हैं, जाति जितनी अधिक पुरानी हो जाती है, परंपराएं उतनी ही अधिक दमनकारी हो जाती हैं। मन परंपरा में जीता है, परंपरा से बंधकर कार्य करता है, परंपरा से बंधकर आचरण करता है। मन अनुकरण करने वाला बन जाता है क्योंकि यह निरंतर अनुभव करता रहता है : किसी पक्षी को देखना, किसी पुरुष को देखना, किसी स्त्री को देखना, पीड़ा होने की

अनुभूति, मृत्यु को, बीमारी को देखना, हवाई जहाज को, बैलगाड़ी को, या क्षमता से अधिक बोझ ढो रहे किसी ऊंट को, या किसी सांड़ को दूसरे पर हमला करते देखना, ये सभी अनुभव हैं। उत्तेजित मन प्रत्येक अनुभव से परंपरा का, स्मृति का निर्माण करने लगता है और इस तरह वह अनुकरण का माध्यम बन जाता है। अतः समस्या वस्तुतः अनुकरण से, परंपरा के संचय से मुक्त होने की है क्योंकि उस मुक्ति के बिना सृजनशीलता संभव नहीं है।

असल में किसी भी मनुष्य के पास जीने के लिए, सृजन के लिए, होने के लिए बहुत अधिक स्वाधीनता नहीं है। मेरा आशय बच्चों को जन्म देने या कविताएं लिखने की स्वतंत्रता से नहीं बल्कि मन की उस सृजनात्मक स्फूर्ति से है, जो परंपरा से और उस परंपरा को निर्मित करने वाले अनुभव से मुक्त हो जाने में है, स्मृति से मुक्त हो जाने में है। जैसा कि मैंने कहा, यह कुछ कठिन है परंतु आपको यह सब उसी तरह ध्यान से सुनना चाहिए जैसे आप संगीत को सुना करते हैं, जैसे आप नदी की सुंदरता को और उन पुराने छायादार वृक्षों के सौंदर्य को ध्यानपूर्वक देखते हैं। इन सबको आपको उसी प्रकार देखना होगा जैसे आप किसी संग्रहालय के सुंदर चित्रों को देखते हैं, ग्रीक एवं मिस्र की प्रतिमाओं की सुंदरता को देखते हैं। इसी तरह, आपको यह सब ध्यान देकर सुनना चाहिए और यदि आप गंभीर हैं, आपमें जिज्ञासा है तो आपको इस स्वतंत्रता के आयाम में प्रवेश करना ही होगा क्योंकि अनुकरण करने वाला मन, परंपरा से बंधा मन कभी सृजनशील नहीं हो सकता।

आप परंपरा का पालन इसलिए करते हैं क्योंकि आपको भय होता है कि यदि आप उससे हटकर चलेंगे तो लोग क्या कहेंगे, पड़ोसी, आपके माता-पिता, आपके अभिभावक या पुरोहित क्या कहेंगे। आप डरते हैं, इसलिए आप पुरानी विचारधारा के अनुसार आचरण करते हैं। आप ब्राह्मण हैं या जो कुछ भी हैं, मृत्युपर्यंत वही बने रहते हैं, उसी दायरे में घूमते रहते हैं, उसी लीक पर चलते रहते हैं, उसी ढांचे के अनुसार जीते रहते हैं। यह स्वतंत्रता नहीं है। इस स्थिति में विचार—जो कि अनुभव, परंपरा और स्मृति की उत्पत्ति मात्र है—अतीत से जुड़ा होने के कारण मुक्त नहीं हो सकता।

हम विचार की स्वतंत्रता के बारे में बढ़-चढ़ कर बातें करते हैं। विचार की स्वतंत्रता के बारे में अनेक किताबें लिखी गयी हैं। परंतु विचार कभी मुक्त नहीं हो सकता। मन तो निरंतर हर समय कुछ-न-कुछ अनुभव करता ही रहता है, चाहे सचेतन स्तर पर हो या अचेतन स्तर पर, चाहे आप खिड़की से बाहर देख रहे हों या आपने आंखें बंद कर रखी हों या आप सो रहे हों—मन तो विभिन्न प्रभावों को, लोगों को, वातावरण के, भोजन के दबावों को अनुभव करता ही रहता है। अनेक प्रकार के विश्वास और विचार

मन से टकराते ही रहते हैं। मन निरंतर संग्रह करता रहता है और उस संग्रह के माध्यम से, उस परंपरा के आधार पर, असंख्य स्मृतियों के सहारे यह आचरण करता है। इस प्रकार के मन से मुक्त होने की आशा करना ऐसे ही है जैसे मरणासन्न व्यक्ति से मुक्त होने के लिए कहना। मरणासन्न मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता, वह किसी नयी चीज़ को बिलकुल देख नहीं सकता, क्योंकि उसकी स्मृतियां उसे ऐसा नहीं करने देतीं। स्मृति बीते कल का परिणाम है और किसी भी नयी चीज़ को देखने के लिए—किसी सर्वथा नयी चीज़ का सृजन करने के लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ अतीत से जुड़ा है, जो कुछ अतीत है, उसका अंत हो जाए—केवल तभी स्वतंत्र रूप से सोचना संभव है।

हां, आपको सोचने की स्वतंत्रता अवश्य होनी चाहिए परंतु परंपरा, सरकारें, दलीय राजनीति, ये सभी आपको इससे रोकते हैं। वे चाहते हैं कि आप किसी विशेष ढंग से ही सोचें और इस प्रकार सोचना एक दायरे में बंधा हुआ होता है और उससे छूटना एवं किसी अन्य तरीके से सोचना भी पुनः किसी दायरे से बंध जाना होता है। मान लीजिए मैं मुसलमान हूं और मैं मुस्लिम रीति-रिवाजों को छोड़ देता हूं—उन परंपराओं को, उस विचारधारा को त्याग कर ईसाई या कम्युनिस्ट बन जाता हूं। इस प्रकार का त्याग भी विचारधारा का एक रूप है, यह भी अनुकरण का ही एक तरीका है, अनुभव की प्रक्रिया है, स्मृति की प्रक्रिया है। मुस्लिम प्रणाली के पुराने ढांचे के स्थान पर कम्युनिस्ट प्रणाली के नये ढांचे में ढल कर सोचना भी पुनः किसी दायरे में बंद रह कर किया जाने वाला विचार मात्र है।

अतः हमारा प्रश्न यह है : क्या मन मुक्त हो सकता है?—अनुभव से नहीं बल्कि अनुभव करने और संग्रह न करने के लिए स्वतंत्र हो सकता है? क्योंकि अनुभव से मुक्ति तो संभव ही नहीं है; उसका अर्थ तो मृत्यु है। परंतु क्या मन के लिए यह संभव है कि अनुभव से गुजरने के दौरान वह परंपरा को निर्मित न होने दे? मान लीजिए आप एक नयी सुंदर चमकदार साइकिल देखते हैं जिसमें क्रोमियम के हैंडल लगे हैं, आप उसकी बनावट की सुंदरता, उसके रंगों की चमक देखते हैं और उससे आकर्षित होते हैं, आप उसे पाना चाहते हैं और पा भी लेते हैं। साइकिल पाना ही आपके लिए एक अनुभव है। वह अनुभव आपके मन पर अंकित हो जाता है और आप कहते हैं, 'यह मेरी है'। कुछ दिनों और हफ्तों तक आप उसे झाड़ते-पोंछते हैं और फिर उसे भूल जाते हैं। परंतु इसने आपके मन में एक अनुभव की रचना की जो परंपरा बन जाता है और वह परंपरा, वह अभ्यास आपके मन को जकड़ लेता है। फिर आप कार की इच्छा करने लगते हैं और यदि आपके पास कार है और बेइंतहा पैसा है तो हवाई जहाज पाने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार यह क्रम जारी रहता है जो अनुकरण की सीमा के भीतर ही होता है। साइकिल चाहने से लेकर जेट

विमान चाहने तक की यह दौड़ उसी ढांचे के भीतर होती है किंतु यह स्वतंत्रता नहीं है।

स्वतंत्रता तब होती है जब मन परंपरा की रचना किए बिना ही अनुभव करता है। यह मत कहिए, 'यह कैसे हो सकता है?' या 'मैं इसे कैसे कर सकूंगा?' जब आप इस तरह का प्रश्न पूछते हैं तो आप पहले ही ढांचा बना चुके होते हैं। 'कैसे' का अर्थ है कोई ढांचा। 'कैसे' उस ढांचे तक जाने का पर्याय है और उस तरीके के अनुकरण की प्रक्रिया में ही मन परंपरा को निर्मित कर लेता है, और उस परंपरा में फंस जाता है। इसलिए स्वतंत्रता में 'कैसे' का कोई स्थान नहीं है। स्वतंत्रता तक जाने के लिए कोई मार्ग नहीं होता। लेकिन यदि आप बस अवलोकन करें, देखें एवं इसके प्रति सचेत रहें कि मन किस तरह से अनुभव करता है, किस तरह से परंपराएं निर्मित कर लेता है और उसमें फंस जाता है; यदि आप उसके प्रति जागरूक भर रहें और उस प्रक्रिया का प्रत्यक्ष बोध होने दें, तो उस प्रत्यक्ष बोध से ही कोई पूर्णतः विलक्षण चीज़ सामने आती है—वह स्वतंत्रता जो किसी अनुभव के के खूंटे से नहीं बंधी होती।

इसे समझना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हमारे स्कूलों में, हमारी शिक्षा व्यवस्था में, हमें केवल स्मृति को पोषित करना, सूत्रों को रटना पर सिखाया जाता है—मन को केवल अनुकरण करने के लिए ही प्रशिक्षित किया जाता है। जब आप इतिहास पढ़ते हैं, जब आप विज्ञान का अध्ययन करते हैं, भौतिक-शास्त्र का, दर्शनशास्त्र का अथवा मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं तो शिक्षक एक प्रकार से अनुकरण ही करवा रहा होता है—आप उससे सीखते हैं और आप भी अनुकरण करने लगते हैं। इसलिए बचपन से लेकर मृत्यु तक यह प्रक्रिया, स्मृति का यह पोषण चलता ही रहता है। आप बस अनुकरण की लीक पर, परंपरा की पटरी पर ही जिया करते हैं। आप बस उतना ही जानते हैं, वही आपकी संस्कृति होती है। इसलिए सृजनशील विरले ही होते हैं। उस सबसे स्वयं को मुक्त कर लेना और यह समझ लेना कि स्मृति कितनी आवश्यक है या बाधक है, हानिकारक है—यही तो शिक्षा का कार्य है। किंतु हम गलत सिरे से शुरुआत करते हैं; पहले हम स्मृति का विकास कर लेते हैं, फिर कहते हैं, 'मैं उस दूसरे सिरे तक कैसे पहुंचूंगा?' परंतु यदि उस दूसरे हिस्से पर ध्यान दिया जाए, उस पर विचार-विमर्श किया जाए, उसे देख लिया जाए, उसकी जांच की जाए, उसे महसूस किया जाए—जो कि वस्तुतः शिक्षा है—तो किसी खास व्यवसाय के लिए कोई कौशल सीखना गौण हो जाता है हालांकि वह भी आवश्यक होता है।

क्या शिक्षा का कार्य मुख्यतः यही नहीं है कि मन अपने अनुभवों से मुक्त रहना सीख सके ताकि जीवन सृजनशील हो जाए, उसमें वह सृजनशीलता आ पाए जिसे हम सत्य या ईश्वर कहते हैं?

प्रश्न : हम किसी से घृणा क्यों करते हैं और हममें घृणा की भावना कहां से पैदा होती है?

कृष्णमूर्ति : कोई मनुष्य घृणा क्यों करता है? क्या आप किसी से घृणा करते हैं? या यह सवाल बस यूं ही कर दिया गया है? क्या आप किसी को नापसंद करते हैं? मुझे पूरा विश्वास है कि करते होंगे। पहली बात यह है कि आप कुछ लोगों को इसलिए नापसंद करते हैं क्योंकि उन्होंने आपका कुछ अहित किया होता है, उन्होंने आपका अपमान किया होता है, आपकी निंदा की होती है या आपका खिलौना चुरा लिया होता है—या फिर आपको उनका चेहरा पसंद नहीं होता, उनकी मुस्कान अच्छी नहीं लगती या वे अशिष्ट, अभद्र और कुरूप, उबाऊ होते हैं। इसलिए अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में आप कहते हैं, 'मेरे पास मत आओ'। यह बिलकुल स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है—है न? इसमें कुछ गलत नहीं है।

किसी चीज़ की निंदा करना सबसे मूर्खतापूर्ण काम है। आपको घृणा की निंदा नहीं, परीक्षा करनी चाहिए कि आखिर नापसंदगी या घृणा उत्पन्न क्यों होती है। यदि आप कहते हैं, 'घृणा करना गलत है, बेवकूफी है' तो आपके द्वारा की जाने वाली ऐसी निंदा ही वास्तव में मूर्खता है। किंतु यदि आप यह पूछना शुरू करें कि घृणा किस प्रकार अस्तित्व में आती है—जैसे कि सूर्य के प्रकाश में फूल खिलकर अस्तित्व में आता है—तो आप इस बारे में कुछ कर सकेंगे। लेकिन यदि आप इसे बस निंदा करते हुए ठुकरा देते हैं तो यह यथावत बनी रहती है।

आपकी नापसंदगी के बहुत से, अनेक कारण होते हैं। यह किसी व्यक्तिगत कारण से हो सकती है—चूंकि किसी ने आपको ठेस पहुंचायी है या आपसे कुछ छीन लिया गया है या आपका अपमान हुआ हो, या आप किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष रखते हों और उससे घृणा करते हों। किसी भले, साफ-सुथरे, संभ्रांत व्यक्ति को आप इसलिए नापसंद कर सकते हैं, क्योंकि आप वैसे नहीं हैं—आप उस जैसा होना तो चाहते हैं, किंतु हैं नहीं। आपने पूछा है कि घृणा की यह भावना कहां से उत्पन्न होती है। मैं आपको यही दिखाने का प्रयास कर रहा हूं कि यह किस प्रकार उत्पन्न होती है। आप एक नाज़ुक पौधा रोपते हैं, दूसरा एक लड़का आकर उसे उखाड़कर नष्ट कर देता है और आप उस लड़के को नापसंद करने लगते हैं क्योंकि जिससे आपको लगाव था, जिसकी आप फिक्र करते थे उसे नष्ट कर दिया गया।

बचपन से बुढ़ापे तक हमारा जीवन ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और कुंठा की एक सतत प्रक्रिया होता है, अकेलेपन और कुरूपता के भाव से भरा रहता है। किंतु यदि अध्यापक, अभिभावक, शिक्षक यह कहने के बजाय कि घृणा करना ठीक है या गलत है या इस पर कैसे काबू पाएं—जो कि घृणा के प्रश्न का सामना करने का एक मूर्खतापूर्ण तरीका है—यदि यह समझाने का प्रयत्न करें कि घृणा किस प्रकार पैदा होती है और इस प्रकार छात्र में प्रज्ञा

और स्पष्टता को जगाएं तो छात्र स्वयं ही देख लेगा कि घृणा कैसे अस्तित्व में आती है; तब वह अपने भीतर उठने वाले द्वंद्व को स्वयं ही देख लेगा और वह यह समझ जाएगा कि यह संघर्ष और कलह उसे नष्ट ही करेंगे।

प्रश्न : रोष से मुक्त होने का क्या तरीका है?

कृष्णमूर्ति : रोष से आपका आशय क्या है? क्या आपका आशय यह है कि जब कोई आदमी भारी बोझ से लदे गधे को पीटता है तो उसे देखकर आपको गुस्सा आता है? आप कहते हैं कि जब कोई बड़ा आदमी किसी छोटे से बच्चे को पीटता है तो आपको गुस्सा आना उचित है। क्या उचित क्रोध जैसी कोई चीज़ वास्तव में होती है?

आपने प्रश्न तो पूछ लिया है पर मुझे संदेह है कि इसे जानने में आपकी सच में रुचि है। हममें से अधिकतर लोग भिन्न-भिन्न कारणों से क्रुद्ध हो जाते हैं और क्रुद्ध हो जाने के पश्चात हम यह खोजने का प्रयास करते हैं कि क्रोध को नियंत्रण में कैसे रखें। किंतु जो बात वास्तव में महत्त्वपूर्ण है वह है यह जानना कि क्रोध किस प्रकार से कार्य करता है, यह कैसे उत्पन्न होता है और इसका जहर फैले इससे पहले ही इसको कैसे रोका जाए। आप समझ रहे हैं न कि मैं क्या कह रहा हूं? हमारी समस्या यह नहीं है कि क्रोध से मुक्त कैसे हों, हमारी समस्या यह है कि क्रोध कैसे उत्पन्न होता है—क्या आप समझ रहे हैं? मुझमें ईर्ष्या की भावना इसलिए आती है क्योंकि आपके पास कोई ऐसी चीज़ है जो मेरे पास नहीं है, आपकी पत्नी मेरी पत्नी से अधिक सुंदर है और मुझे आपसे ईर्ष्या होने लगती है, तब मैं द्वंद्व में पड़ जाता हूं, अपने आपमें स्वयं को मैं सर्वाधिक कुरूप महसूस करने लगता हूं, अपने बारे में कटुता से भर जाता हूं और कहने लगता हूं, 'मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए, मुझे क्रोध पर विजय पानी चाहिए। इसे जीतने के लिए मैं क्या करूं?' चूंकि मैं नहीं जानता कि इसे कैसे रोका जा सकता है, ईर्ष्या को उठने से कैसे रोका जाता है, इस भावना को जगने से पहले ही कैसे मिटाया जा सकता है, अतः मैं किसी गुरु के पास पहुंच जाता हूं। परंतु समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

क्या यह समझना संभव है कि ईर्ष्या किस प्रकार से अस्तित्व में आती है ताकि यह भावना उत्पन्न ही न हो? आप जानते हैं कि गलत प्रकार का भोजन करने, फिर बीमार पड़ जाने और फिर डॉक्टर के पास जाने से बेहतर यही है कि सही भोजन लिया जाए। हम लगातार गलत ढंग का भोजन करते रहते हैं फिर हम गोलियां खाते हैं या डॉक्टर के पास जाते हैं। किंतु यदि हम ठीक तरह का भोजन लेंगे तो हमें डॉक्टर के पास जाने की ज़रूरत ही नहीं होगी।

अतः मैं यह कह रहा हूं : हम यह जान लें कि सही प्रकार का भोजन कैसे लिया जाता है, इन सबको किस प्रकार से देखा जाता है ताकि ये

समस्याएं पैदा ही न हों। निश्चित ही शिक्षा यही है, यानी समस्या का इलाज ढूंढ़ने के बजाय उसे उठने ही नहीं देना।

प्रश्न : क्या क्लेशों को लगातार सहन करते रहने से मनुष्य की संवेदनशीलता और विवेक नष्ट होने लगते हैं?

कृष्णमूर्ति : आप क्या सोचते हैं? जो मन सतत किसी न किसी बहाने व्यस्त रहता है, पूजा में, किसी का अनुकरण करने में, अपने ही दुख में, अपनी ही सुंदरता में, अपने ही क्लेशों में, अपनी ही सफलताओं और असफलताओं में डूबा रहता है—ऐसा मन अवश्य ही असंवेदनशील हो जाता है। आप जानते हैं कि यदि आपका मन, आपका ध्यान किसी एक चीज़ पर सतत लगा रहे तो आपको किसी और बात का ख्याल करने का मौका ही नहीं मिलेगा। क्या इस तरह का मन संवेदनशील हो सकता है?

संवेदनशील होने का तात्पर्य है कि अपने चारों ओर ध्यानपूर्वक देखा जा रहा है—सुंदरता को, कुरूपता को, मृत्यु को, दुख को, पीड़ा को, खुशी को। इसलिए यह तो स्पष्ट ही है कि क्लेशों से व्यथित रहने वाला मन असंवेदनशील हो जाता है क्योंकि व्यथा झेलते रहना इसकी आदत बन जाती है और मन व्यथा झेलते रहने को अपनी सुरक्षा के साधन के रूप में इस्तेमाल करने लगता है। किसी स्त्री के पुत्र या पति की मृत्यु हो जाती है और वह अकेली हो जाती है और उसे लगने लगता है जैसे जीवन अंधकारमय हो गया हो। अतः व्यथा को बनाए रखा जाता है और मन व्यथा से मुक्ति का विचार तक नहीं करता, बल्कि व्यथा को ही अपने अस्तित्व का सहारा बना लिया जाता है। आप समझ रहे हैं न? मन अपने आपको भरने के लिए व्यथा को वैसे ही काम में लाने लगता है जैसे वह खुशी को काम में लाता है, क्योंकि मन यह महसूस करने लगता है कि कोई व्यस्तता न हो तो वह विपन्न है, रिक्त है, नीरस है। मन की ऐसी व्यस्तता ही उसके विनाश का कारण बन जाती है। खुशी की तरह दुख भी ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसमें रमा जाए। मन को यह समझना होगा कि दुख क्यों है और निरंतर दुख में ही लिप्त न रहे। मन सुरक्षा चाहता है, फिर चाहे उसे यह व्यथा में मिले या खुशी में। इस प्रकार दुख सुरक्षा का साधन बन जाता है। मैं जो कह रहा हूं उसमें क्रूरता बिलकुल नहीं है क्योंकि यदि आप इस बारे में चिंतन करेंगे, इस पर सोच-विचार करेंगे तो आप देखेंगे कि मन कैसे स्वयं से ही छल करता है। अपनी उधेड़बुन से मुक्त मन ही प्रज्ञावान होता है, संवेदनशील होता है।

मन का इस उधेड़बुन से कैसे छुटकारा हो यह पूछना ही फिज़ूल है। 'कैसे' का प्रश्न उठाना ही मन की अपने साथ छलावे की कोशिश है।

प्रश्न : कौन सी स्मृति आवश्यक और उपयोगी होती है और कौन सी अनावश्यक और हानिकारक, इसे कैसे समझा जाए?

कृष्णमूर्ति : मन अनुभव के द्वारा परंपरा और स्मृति को निर्मित करता है। क्या मन के लिए यह संभव है कि अनुभव को जारी रहने देते हुए भी संग्रह करने की प्रवृत्ति से वह मुक्त रहे? क्या आप इस अंतर को समझ रहे हैं? आवश्यकता इसकी नहीं है कि स्मृति को बढ़ाया कैसे जाए, बल्कि इस बात की है कि मन की संचय करते रहने वाली प्रक्रिया से कैसे मुक्त रहा जाए।

मान लीजिए आपने मुझे ठेस लगाई जो कि एक अनुभव है, मैं उस ठेस को याद रखता हूं और वह मेरी परंपरा बन जाती है और फिर मैं भी परंपरा के माध्यम से आपको देखता हूं, उसी के अनुसार प्रतिक्रिया करता हूं। यही मेरे व आपके मन की प्रतिदिन चलने वाली प्रक्रिया है। अब, क्या यह संभव है कि भले ही आपने मुझे ठेस लगाई, फिर भी मन की संचय करने वाली प्रक्रिया शुरू ही न हो? वे दोनों प्रक्रियाएं एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं।

यदि आप मुझे कठोर शब्द कहते हैं तो मुझे आघात पहुंचता है, परंतु यदि उस आघात लगने को महत्त्व न दिया जाए तो वह मेरे बर्ताव की पृष्ठभूमि नहीं बनता और इसलिए मेरी आपसे मुलाकात में एक ताज़गी बनी रहती है। गहरे अर्थों में यही सच्ची शिक्षा है। क्योंकि उस स्थिति में, हालांकि मैं अनुभव के संस्कारजनक प्रभावों को देखता तो हूं, किंतु मन उनसे संस्कारित होने से बच जाता है।

प्रश्न : परंतु मन संचय करता ही क्यों है?

कृष्णमूर्ति : आप क्या सोचते हैं इस बारे में—यह संचय क्यों करता है? जरा इस ओर ध्यान दीजिए। क्या आपको इसका उत्तर मालूम है? क्या आप मेरे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं ताकि आप उसमें 'हां' मिला सकें? यदि आप मेरे उत्तर की प्रतीक्षा न करें और खुद से पूछें कि 'मन संचय क्यों करता है?' तो इस प्रश्न को पूछना ही आपके भीतर सृजनशीलता लाता है। आपने इसे इसलिए पूछा है क्योंकि आप इसका उत्तर नहीं जानते हैं। किंतु यदि आप समस्या का सचमुच, प्रत्यक्ष रूप से सामना करें तो आपका मन सतर्क हो जाएगा और उसका उत्तर ढूंढ़ निकालेगा। इसलिए उस प्रश्न का पूछा जाना ही आपकी स्वत:प्रेरणा को जाग्रत कर देता है, आपकी उमंग को, आपकी सृजनशीलता को, खोज की आपकी क्षमता को स्फूर्ति से भर देता है, आपमें एक नितांत भिन्न दृष्टि जगाता है।

समस्या है : मन संचय क्यों करता है? कृपया समस्या पर गौर करें। शायद किसी धार्मिक ग्रंथ ने, किसी शिक्षक ने या किसी मनोवैज्ञानिक ने आपको बतलाया हो कि मन संचय क्यों करता है। इसे चाहे रामानुज ने, शंकर ने या जीसस ने कहा हो, पर कहा किसी दूसरे के द्वारा ही गया है, यह आपकी अपनी खोज नहीं है। आप समझ रहे हैं? इसकी खोज तो आपको ही करनी है। आप खोज कर सकें इसके लिए यह ज़रूरी है कि

अन्य लोगों ने क्या कहा है उसे दरकिनार कर दें—क्या नहीं? अतः इस बारे में आपको जो कुछ बताया गया है उसे एक ओर रख दें, इस बारे में आपने जो भी पढ़ा है उसे बीच में न आने दें। तब आप यह पता लगा सकेंगे कि मन संचय क्यों करता है।

आइए बिलकुल साधारण स्तर से बात शुरू करते हैं : आप कपड़ों का संचय क्यों करते हैं? सुविधा के लिए ही करते हैं न? ज़रूरत के अलावा, जिसमें सुविधा भी शामिल है, आपको साथ ही साथ एक शान का भी एहसास होता है कि आपके पास बहुत से कपड़े हैं—यह एहसास कि आपके पास अलमारी पर भर कपड़े हैं, आप इस भावना का मज़ा लेते हैं जिससे आपको सुखी होने की, सुरक्षित होने की तसल्ली होती है। पहले आवश्यकता होती है जो कि सुविधा भी है, सुविधा ही आगे चलकर दंभ का कारण बन जाती है और उसके साथ ही कपड़ों से भरी अलमारी आपमें 'मेरे पास कुछ है, मैं कुछ खास हूं' ऐसा भाव जगाती है। अलमारी आपकी सुरक्षा बन जाती है। इस प्रकार से मन ज्ञान, जानकारी हासिल करता है, बहुत अध्ययन करता है, बहुत बोलता है, बहुत जानने लगता है। जानकारियां, जो कि आपके मन की अलमारी में धीरे-धीरे इकट्ठी होती जाने वाली चीज़ें हैं, आपकी सुरक्षा का साधन बन जाती हैं। क्या ऐसा ही नहीं होता? अतः मन सुरक्षा की चाहत में संग्रह करता है।

क्या आपको इसका गर्व नहीं होता कि आप बहुत सी बातें जानते हैं? आप इतिहास, विज्ञान और गणित जानते हैं। आप यह जानते हैं कि कार किस तरह से चलाई जाती है। कुछ कर सकने की क्षमता क्या आपको सुरक्षा और संतुष्टि नहीं देती? यही वजह है कि मन संचय करता है। जब आप अपने भीतर भले होने का या दयालु होने का, प्रेमपूर्ण होने का अथवा उदार हृदय होने का सद्गुण विकसित करते हैं तो विकसित करने की यह प्रक्रिया संचय करने की ही एक प्रक्रिया होती है। इस प्रकार के संचय के द्वारा जिसे आप सद्गुण कहते हैं—आप बहुत सुरक्षित महसूस करते हैं। सुरक्षा पाने के लिए, सुरक्षित होने के लिए आपका मन सारे समय एकत्र करने के कार्य में लगा रहता है। इसके भीतर बहुत सी अलमारियां होती हैं। इसके पास सदैव एक-न-एक ऐसी अलमारी होती है जिसमें यह पूर्ण रूप से सुरक्षित महसूस कर सके। परंतु ऐसा मन अनुकरणशील होता है—सृजनशून्य मन होता है। यदि आप मन को कार्य करता हुआ देखें और संचय की प्रक्रिया को समझें तो आपका मन संचय करना बंद कर देता है। आपके पास स्मृति तो रहेगी क्योंकि उसका होना ज़रूरी है। किंतु उसका उपयोग आप सुरक्षित अनुभव करने के लिए या यह महसूस करने के लिए कि आप कुछ हैं, नहीं करेंगे।

कुछ स्मृतियों का बना रहना तो आवश्यक होता है। 'मैं 35 वर्षों से पुल बनाने का कार्य कर रहा हूं और अब मुझे यह सब भूल जाना चाहिए'—

ऐसा कहना तो मूर्खता ही है। मैं तो मन के द्वारा संचय करने की उस प्रक्रिया की बात कर रहा हूं जिससे परंपरा, परिपाटी रूपी पृष्ठभूमि निर्मित होती है और जिसमें से विचार की उत्पत्ति होती है। जब मन संचित करना और संचय को आधार बनाकर विचार करना बंद कर देता है, तभी यह सृजनशील हो सकता है।

प्रश्न : कोई व्यक्ति समाज को त्यागकर संन्यासी क्यों बन जाता है?

कृष्णमूर्ति : आप जानते हैं कि जीवन जटिल है इसलिए आपमें सरल जीवन जीने की चाहना होती है। जो मनुष्य जितना अधिक सुसंस्कृत, सौंदर्यपूर्ण, ध्यानपूर्ण और सजग होगा, सरल जीवन जीने की उतनी ही उत्कट चाह उसमें होगी। मैं उस नकली संन्यासी की बात नहीं कर रहा हूं जो कपड़े रंगवा लेता है और दाढ़ी बढ़ा लेता है, मैं उस सच्चे संन्यासी की बात कर रहा हूं जो जीवन की जटिलता को देखता है और उसे त्याग देता है। दुर्भाग्य से अधिकांश संन्यासी इसे गलत सिरे से आरंभ करते हैं। सरलता दूसरे सिरे पर होती है। वास्तव में दोनों सिरे मिल जाने चाहिए परंतु आप इसे बाहरी तल से शुरू नहीं कर सकते। सरलता की भावना हृदय में तब आती है, जब मन संचय नहीं करता।

संसार को त्यागने वाला संन्यासी प्रायः यही कहता है : संसार व्यर्थ है, बहुत जटिल है, यहां बहुत सारी चीज़ों की चिंताएं करनी पड़ती हैं, परिवार की, बच्चों की, नौकरी मिलेगी या नहीं इस सबकी। इसलिए वह कहता है, 'इस सबसे मेरा कोई वास्ता नहीं है।' और इस तरह से वह तथाकथित सांसारिक जीवन से दूर हो जाता है। वह गेरुआ वस्त्र धारण कर लेता है और कहता है, 'मैंने संसार को त्याग दिया है'। परंतु फिर भी वह एक साधारण सा मनुष्य होता है और उसमें वे सारी इच्छाएं, काम-वासनाएं एवं अन्य आवेग होते हैं, वे सारे पूर्वाग्रह और संशय होते हैं जो किसी भी सामान्य मनुष्य में पाए जाते हैं। अतः उसके संसार-त्याग का कुछ अर्थ नहीं होता।

हम कितनी आसानी से भ्रमित हो जाते हैं! हम सोचते हैं कि गेरुए कपड़े पहनने भर से हम सांसारिक जीवन से बाहर हो गए जबकि गेरुए कपड़े पहनना तो सबसे आसान है। किंतु सरलता की समझ तो तब पैदा होती है जब इच्छा के, विश्वास के, पीड़ा के, दुख के और ईर्ष्या के संचय की क्लिष्ट प्रक्रिया को समझा जाता है। किसी मनुष्य के पास हो सकता है कि बहुत सी सांसारिक वस्तुएं हों या ऐसी थोड़ी सी ही चीज़ें हों, किसी के यहां बच्चे हों या नहीं हों। पास में कुछ न होना सरलता का सूचक नहीं है। अपनी आंतरिक समृद्धि को, आंतरिक सौंदर्य को समझने पर ही सरलता आती है। और यदि पास में वह आंतरिक समृद्धि ही न हो तो कुछ बाहरी चीज़ों को त्याग देना या पीले वस्त्र ओढ़ लेना निरर्थक है।

गेरुए या पीले वस्त्रों से भ्रमित न हों। त्याग के बाहरी दिखावे की पूजा न करें, जो कि बिलकुल अर्थहीन होता है। जो वास्तव में अर्थपूर्ण है उसे दूसरे से पाया या सीखा नहीं जा सकता। जब आप सचमुच सरल होते हैं तो इस अर्थवत्ता को अपने ही भीतर पा सकते हैं—जब आप दिखावटी त्याग रूपी भस्म नहीं रमाते बल्कि जब सारे अंतर्द्वंद्वों से, दमन की तमाम प्रवृत्तियों से, महत्त्वाकांक्षाओं और छल-कपट आदि से आंतरिक रूप से मुक्त होते हैं। ऐसा व्यक्ति वस्तुतः एक सृजनशील मनुष्य होता है जो सच्चे अर्थों में संसार की सहायता करता है, न कि वह संन्यासी जो अपने ही स्वप्नों में तल्लीन नदी के तट पर बैठा होता है।

14 जनवरी 1954

ईर्ष्या

भय कितनी विचित्र चीज़ है, पता नहीं आपने कभी ऐसा महसूस किया है कि नहीं। हममें से अधिकांश किसी-न-किसी प्रकार के भय से ग्रस्त रहते हैं और भय अपने आपको कई रूपों में छिपाए रहता है, यह अनेक सद्गुणों की आड़ में छुपा रहता है। भय के कारण को, इसके मूल स्वरूप को ठीक-ठीक समझे बिना सौंदर्य की सारी अनुभूति उथली ही होती है। भय के गहनतर तलों की समझ के बिना सौंदर्य की अनुभूति में कोई गहराई नहीं होती। हममें से अधिकांश लोगों के सौंदर्य-बोध में ईर्ष्या का पुट दिखाई पड़ता है और यही बात सौंदर्य की कामना के मूल में रहती है। क्या आप जानते हैं कि ईर्ष्या क्या है? किसी अन्य के प्रति ईर्ष्यालु होना, दूसरे की योग्यता से ईर्ष्या करना, उसकी प्रतिष्ठा से, वह जिस प्रकार से दिखाई देता है और उसकी चाल से ईर्ष्या करना? हममें से अधिकांश के कार्य ईर्ष्या की नींव पर खड़े होते हैं; ईर्ष्या के हटते ही हम बेसहारा महसूस करने लगते हैं। हमारा सारा प्रयत्न सफलता से प्रेरित होता है और उसमें भी ईर्ष्या छिपी होती है और ईर्ष्या के मूल में भय होता है। भय ही वह स्फूर्ति, वह कारण, वह भाव होता है जो हमें संचालित करता है। भय और ईर्ष्या के वास्तविक अभिप्राय को समझे बिना हम बस सामाजिक और नैतिक स्तर पर नकलची ही बने रहते हैं।

अतः मुझे ऐसा लगता है कि जिसे हम ईर्ष्या कहते हैं उस चीज़ को समझा जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि आप अपने मन को कार्य करते हुए देखें, अपनी गतिविधियों को देखें, तब आपको पता लगेगा कि शायद ही कोई क्षण ऐसा बीतता है जब आप 'और अधिक' के लिए, और बड़ी चीज़ को पाने के लिए, और बड़े अनुभव को पाने के लिए कोशिश नहीं कर रहे होते। जैसे ही तुलना को महत्त्व दिया जाता है, ईर्ष्या भी आ खड़ी होती है। जब मैं और-और की कामना करता हूं, केवल भौतिक चीज़ों या सांसारिक पदार्थों की ही नहीं, बल्कि प्रेम, सौंदर्य और आंतरिक समृद्धि की भी, तो उस 'अधिक' की, उस लक्ष्य की, उस चीज़ की प्राप्ति के प्रयास में ईर्ष्या ही छिपी होती है।

सौंदर्य तो ऐसा कुछ है जिसमें ईर्ष्या की कोई जगह नहीं होती, सौंदर्य तो परम निरपेक्ष होता है। आप अधिक सुंदर अथवा अधिक अच्छे नहीं हो सकते—यह तो ईर्ष्या ही है जो कि कम या अधिक हो सकती है। आपको चीज़ों जैसी हैं उनको वैसे ही देखना-समझना पड़ेगा—जिसका मतलब यह नहीं है कि जो कुछ भी हो उससे आप संतुष्ट हो जाएं। जैसे ही आप संतुष्टि और असंतुष्टि के चक्कर में पड़ते हैं ईर्ष्या आ जाती है। वस्तुस्थिति जैसी भी है, आप जैसे भी हैं, अपने आपको यथारूप आप केवल तभी समझ

सकते हैं जब आप तुलना नहीं करते क्योंकि तुलना करने में ईर्ष्या होती ही है। मुझे तो लगता है कि जीवन का सच्चा सृजनात्मक सौंदर्य 'जो है' उसे समझने में है, न कि केवल किसी सद्गुण को, प्रतिष्ठा को, सत्ता या पद को पाने में। परंतु हमारी समूची शिक्षा, हमारी सारी सोच, मूल रूप से 'और अधिक' की दिशा में ही होती है—जिसे हम प्रगति कहते हैं।

मैं सोचता हूं कि अभी जब हम छोटे ही हैं, जब तक हम परिवार के, नौकरी के, पद-प्रतिष्ठा के, काम-धंधे के तथा अपने अंधेपन में और अज्ञान में स्वीकार की गयी ज़िम्मेदारियों के बंधन से, उत्तरदायित्व से जकड़े नहीं हैं, इसे समझ लेना बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्या शिक्षा का यह कार्य नहीं है कि यह मन को तुलनात्मक प्रवृत्ति से मुक्त करे? इससे मेरा क्या तात्पर्य है आप समझ रहे हैं? आप देख सकते हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था, हमारा सामाजिक जीवन, हमारी धार्मिक आकांक्षाएं, सभी कुछ 'और अधिक' के इसी आग्रह पर टिकी हैं—अधिक आध्यात्मिक जीवन जीना, अधिक खुशी पाना, अधिक धन, अधिक ज्ञान, अधिक अच्छे सद्गुण आदि इकट्ठा करना—ये ही परम ध्येय होते हैं जिन्हें पाने के लिए आप सभी चेष्टा करते हैं। उसी तरह के परिवेश में हम पलते-बढ़ते हैं और इसलिए हम वास्तविकता को, हम सचमुच जो कुछ हैं, उसे कभी नहीं जान पाते।

हम हमेशा कुछ और बनने की कोशिश में लगे रहते हैं। हम सदैव बेहतर बनने की, आदर्श व्यक्ति बनने की, उदाहरण बनने की, परिपूर्ण बनने की चेष्टा करते रहते हैं और यदि हम विशिष्ट बनने की इस कामना की तह में जाएं तो वहां हमें ईर्ष्या ही मिलेगी, और उस ईर्ष्या के मूल में भय मिलेगा, जो मैं हूं उसका भय। इसलिए जो हम हैं उसे हम इन सारी बाहरी और आंतरिक गतिविधियों से—जिन्हें हम प्रगति कहते हैं, जिसे हम कुछ बनना कहते हैं—उससे ढकना शुरू कर देते हैं। मन के लिए यह बहुत कठिन होता है कि वह कुछ बनने की भाषा में न सोचे, कुछ व्यापक व बड़े क्रियाकलापों की ओर न बढ़े, और उसका ऐसा आचरण भय और ईर्ष्या पर ही आधारित हुआ करता है। परंतु आचरण करने का इससे बिलकुल अलग तरीका भी है जो वास्तविक सृजनशीलता और सच्ची समझ है—अर्थात 'जो है' उसे समझने की, आप जो कुछ वस्तुतः हैं उसे समझने की क्रिया। उस क्रिया में आप 'जो है' उसे बदलते नहीं बल्कि उसे समझते हैं।

हम किसी लक्ष्य पर पहुंचने की, कुछ उपलब्ध करने की, सफल होने की, स्थितियों को बदलने की, हिंसा को अहिंसा में बदलने की सोच के आदी हो गए हैं—अहिंसा जो कि एक आदर्श मात्र है। अपने भीतर तो मैं दरिद्र हूं पर उन आंतरिक समृद्धियों को पाना चाहता हूं जिन्हें कभी अपवित्र किया जाना असंभव है। अभी हम इसी प्रक्रिया से परिचित हैं, उसमें ही पले-बढ़े हैं, उसमें ही हमारा पालन-पोषण हुआ है, उसमें ही संस्कारित किए गए हैं। यदि आप ध्यान से देखें तो उस प्रक्रिया में ईर्ष्या है,

भय है, व्यक्ति जो बनना चाहता है वह न बन पाने की आशंका है। कुछ बनने, होने की चाह ने ही इस समाज को, इस संस्कृति को, और इन सारे धर्मों को निर्मित किया है। हमारी संस्कृति ईर्ष्या की नींव पर टिकी है। अभी हम जिस तरह के धर्म का पालन करते हैं, जैसा सोचते और जानते हैं, वह किसी सुदूर भविष्य में मिल सकने वाली सफलता की पूजा मात्र है। इसलिए यह सारी प्रक्रिया ईर्ष्या, लोभ और भय पर आधारित है।

क्या शिक्षा का यह कार्य नहीं है कि इस प्रक्रिया का अंत करे और इससे बिलकुल भिन्न एक ऐसी गतिविधि को अस्तित्व में लाए जो वास्तविकता की समझ पर, हम जो कुछ भी वास्तव में हैं उसकी समझ पर आधारित हो? इस गतिविधि में भय नहीं होगा, ईर्ष्या नहीं होगी, कुछ बनने की कामना नहीं होगी। यथार्थ जैसा भी है, यह गतिविधि उसको समझने की शुरुआत होगी।

ईर्ष्या की गतिविधि तीखे असंतोष और विखंडन की ओर ले जाती है। लीजिए मैं इसे और सरल शब्दों में बताता हूं। मैं आक्रामक प्रवृत्ति का हूं, हिंसक हूं और बचपन से ही मुझे यह सिखाया जाता रहा है कि मुझे इस स्थिति को बदलना होगा और मुझे अहिंसक, अनाक्रामक प्रवृत्ति वाला बनना होगा, मुझे प्रेमपूर्ण होना होगा। यह सारी गतिविधि 'जो है' उसे बदलने की दिशा में किया जाने वाला प्रयास है और ईर्ष्या पर, भय पर आधारित है, क्योंकि जो मैं हूं उसे मैं किसी और चीज़ में बदलना चाहता हूं। परंतु यदि मैं उस गतिविधि की, जो कि ईर्ष्या और भय है, वास्तविकता को देख लेता हूं तब मैं अपने आपको, जो मैं हूं उसको देख सकता हूं। जब मैं देखता हूं कि मैं आक्रामक हूं तो मैं 'जो मैं हूं' उसे बदलता नहीं, बल्कि मैं आक्रामकता की गतिविधि का ध्यान से अवलोकन करता हूं। उस अवलोकन में भय नहीं होता, बाध्यता नहीं होती। 'जो मैं हूं' का अवलोकन ही एक सर्वथा भिन्न गतिविधि को अस्तित्व में लाता है। अवश्य ही, शिक्षा का यह कार्य है, यही सृजन है।

सृजनात्मक गतिविधि के लिए प्रत्यक्ष दर्शन, अंतर्दृष्टि और समझ का होना आवश्यक है। क्योंकि ऐसी गतिविधि मन की स्व-केंद्रित क्रिया को महत्त्व नहीं देती। वर्तमान में हमारी सारी गतिविधियां स्व-केंद्रित होने को महत्त्व देती हैं और उनसे ही हमारी सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयां तथा कष्ट जन्म लेते हैं। हम सभी अपने भीतर इन दोनों गतिविधियों का अवलोकन कर सकते हैं। और जब इन दोनों गतिविधियों का अवलोकन किया जाता है तो उनमें से एक, जो कि भय और ईर्ष्या की नींव पर खड़ी होती है, सरलता से छूट जाती है और केवल दूसरी गतिविधि जो कि सृजनात्मक गतिविधि होती है, शेष रह जाती है। उसी में स्वप्रेरणा और सौंदर्य होता है।

प्रश्न : अनुभव क्या है?

कृष्णमूर्ति : जब आप खुद को देखते हैं तो क्या यह एक अनुभव नहीं है? जब आप कुर्ता पहनते हैं तो क्या यह एक अनुभव नहीं है? और जब आप नदी की धारा की दिशा में जा रही नाव को देख रहे होते हैं तो क्या वह भी एक अनुभव नहीं है? जब आप रोते-चीखते हैं, जब आप हंसते हैं, जब आप ईर्ष्या करते हैं, जब आप किसी चीज़ को कब्ज़ाना चाहते हैं और इसके लिए दूसरों को एक ओर धकेल देते हैं, क्या यह अनुभव नहीं होता? जीवन को जीना अनुभव है। परंतु हम उन अनुभवों को तो बनाए रखना चाहते हैं जो हमें सुखद लगते हैं और उन अनुभवों से बचना चाहते हैं जो हमें नापसंद होते हैं। यह जीवन नहीं है। सुखप्रद और दुखप्रद के बीच चुनाव करना जीना नहीं है। जीवन सब कुछ है—काले बादलों से ले कर भव्य सूर्यास्त तक; जीवन वह सब कुछ है जिसे आप देख सकते हैं : पक्षियों का गान, हरे खेत और बंजर धरती, भय, हंसी, संघर्ष, मृत्यु। पर हम जीवन के प्रति कुछ अलग दृष्टि रखते हैं; हम कहते हैं, 'जीवन यह है, वह जीवन नहीं है', 'यह सुंदर है और वह सुंदर नहीं है', 'सुंदर को तो मैं गले लगाऊंगा और कुरूप को दूर रखूंगा', 'मैं दुखी हूं और मुझे खुशी चाहिए'। जब हम चयन करने लगते हैं तो जीवन विदा हो जाता है।

यदि आप वास्तव में इस सब पर चिंतन करें तो आप देखेंगे कि जैसे ही मन सुखप्रद और दुखप्रद प्रतीत होने वाली चीज़ों के बीच चुनाव करने लगता है, पतन होने लगता है, मौत की शुरुआत हो जाती है। परंतु इस समूची प्रक्रिया को कार्य करते हुए देखना, बिना किसी चुनाव के इसके प्रति पूर्ण रूप से सजग होना मन को झकझोर देता है और चुनाव की संकीर्ण करने वाली गतिविधियों से मुक्त कर देता है। चयन से मुक्त मन मेधावी होता है, ऐसा मन प्रज्ञावान एवं असीम गहराई तक जाने की क्षमता रखता है।

यह सब ध्यानपूर्वक सुनें। ये कोरे शब्द नहीं हैं जिन्हें सुनकर भुला दिया जाए। अनेक प्रकार के अनुभव हमारे मन से लगातार टकराते रहते हैं और अभी जैसी स्थिति हमारी है उसमें हमारे मन बस चयन करना ही जानते हैं, एक अनुभव को चुन लेते हैं, उससे जुड़ जाते हैं और अन्य की अवहेलना करने लगते हैं। जब मन किसी अनुभव को पकड़ता है तो उस अनुभव से वह किसी परिपाटी या परंपरा का निर्माण कर लेता है और वही परिपाटी चयन तथा कर्म में बदल जाती है। जो मन केवल इस और उसमें चुनाव ही करता रहता है, सत्य को कभी नहीं जान सकता। अतः केवल वही मन जो अंधकार एवं प्रकाश की समूची गतिविधि को देखता है प्रखर रूप से संवेदनशील एवं मेधावी होता है। केवल तभी वह प्रकट हो सकता है जिसे हम ईश्वर कहते हैं।

पिछले कुछ दिनों से आप यह सब सुन रहे हैं। क्या आपको इसका पता है कि आपके भीतर क्या-क्या हो रहा है, आपका मन किस प्रकार से सोच

रहा है, अपने आसपास की तमाम चीज़ों और लोगों को किस तरह से देख रहा है? क्या आप पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान से देखने लगे हैं, अधिक ध्यान से निरीक्षण करने लगे हैं, क्या आपकी अनुभूतियां पहले से अधिक प्रखर हुई हैं? क्या आप इस सब के प्रति सचेत हैं? क्या आप समझ पा रहे हैं कि मैं किस बारे में बात कर रहा हूं? क्या आप इस बारे में जागरूक हैं कि आपके हृदय में, आपके मन में, आपकी भावनाओं में क्या चल रहा है? क्या आप कभी वृक्षों को देखते हैं, नदी को देखते हैं? क्या आपका इस ओर ध्यान जाता है कि नदी को आप किस तरह से देखा करते हैं? जिस समय आप नदी का अवलोकन कर रहे होते हैं उस समय आपके मन में कौन से विचार होते हैं?

जब आप किसी चीज़ को देख रहे होते हैं, तब यदि आप सजग नहीं हैं कि आपके मन के भीतर उस समय क्या-क्या हो रहा है तो आप अपने मन की क्रियाविधि को कभी नहीं जान पाएंगे, और उसे जाने बिना आपको शिक्षित नहीं कहा जा सकता। अपने नाम के आगे कुछ उपाधियां लगा लेना शिक्षा नहीं है। शिक्षित होने के लिए आपको इसका पता लगाना होगा कि क्या आपका मन परंपरा की पटरी पर चलता है, क्या यह आदतों के ढर्रे पर चलने का आदी है? क्या आप बहुत से कार्य केवल इसलिए करते हैं कि आपके माता-पिता ऐसा चाहते हैं? क्या आप इसलिए जनेऊ पहनते हैं क्योंकि प्रथा के अनुसार यह ज़रूरी है? क्या आप मंदिर में इसलिए पूजा करते हैं कि आपको ऐसा करने के लिए कहा गया है, या इसलिए कि क्योंकि आप ध्यान करते रहे हैं, या आपको ऐसा करना अच्छा लगता है? निश्चित ही यह सब आपके मन के कार्यव्यापार को दर्शाता है, है न? और उसे जाने बिना आप शिक्षित कैसे कहला सकते हैं?

यदि आप अपने मस्तिष्क का ध्यान से अवलोकन करें तो पाएंगे कि मस्तिष्क एक विस्मयकारी चीज़ है। इसमें करोड़ों-अरबों कोशिकाएं होती हैं और यह एक अत्यंत जटिल यंत्र-तंत्र है। यह शायद सर्वाधिक जटिल और सूक्ष्म संरचना है क्योंकि जब मैं आपसे प्रश्न पूछता हूं, जब मैं कई बातों पर गौर करता हूं तो उत्तर देने के प्रयास में मन को कितना अधिक काम करना पड़ता है। आप समझ रहे हैं न कि मैं किस बारे में बात कर रहा हूं? यदि मैं पूछूं कि आप कहां रहते हैं तो आपका मन कितनी शीघ्रता से कार्य करने लगता है! आप देख सकते हैं कि स्मृति की गति कैसी आश्चर्यजनक रूप से तीव्र होती है। और जब आपसे कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाता है जिसका उत्तर आप नहीं जानते, तो इसका भी अवलोकन करें कि तब आपका मन किस स्थिति से गुजरता है।

हमारे अपने भीतर इतनी समृद्धि है परंतु उस समृद्धि का, उसकी सुंदरता का, उसकी गूढ़ता का हमें पता नहीं है इसलिए हम अन्य मामूली सम्पदाएं जैसे पद-प्रतिष्ठा, सरकारी ओहदा, यात्राएं, सुविधाएं और कुछ

ज्ञान आदि चाहने लगते हैं जबकि आंतरिक समृद्धि की तुलना में ये सारी सम्पदाएं बिलकुल तुच्छ हैं। मन किस प्रकार से कार्य करता है इसे जानना और उससे ऊपर उठ जाना ही मुझे वास्तविक शिक्षा जान पड़ता है।

अभी-अभी यह कहा जा चुका है कि जब हमारा किसी जटिलता से सामना होता है, जब हमारे समक्ष ऐसी कोई समस्या होती है तो मन सोचने में असमर्थ, शून्य-सा हो जाता है। क्या आपका मन कभी इस प्रकार स्तब्ध होता है? आप समझ रहे हैं न कि मैं आपसे क्या पूछ रहा हूं? देखिए आपका मन सतत क्रियाशील रहता है, यह अबाध रूप से चलता रहता है। जब आप आंखें खोलते हैं तो अनेक प्रभावों से आपका सामना होता है और मन उन सारे प्रभावों को—प्रकाश को, चित्रों को, खिड़कियों को, हरे पत्तों को तथा पशु-पक्षियों, मनुष्यों आदि की गतिविधियों से उत्पन्न प्रभावों को ग्रहण करता रहता है। जब आप आंखें बंद कर लेते हैं तो आपका सामना विचार की आंतरिक गतिविधि से होता है। इस तरह मन लगातार कार्यरत रहता है, ऐसा कोई क्षण नहीं होता जब यह ठहर जाता हो। यही मन है—केवल बाहरी सतह पर ही नहीं बल्कि भीतर भी बहुत गहराई तक। आप जानते ही हैं कि गंगा जल की सतह भर नहीं है जिस पर उठती-गिरती लहरों और सूर्य की रोशनी का सौंदर्य आप देखा करते हैं—इसमें बहुत गहराई भी है, उस सतह से लगभग साठ फुट नीचे तक जल की गहराई है। मन भी रोष, खुशी, कामना, हर्ष और विषाद की सतही अभिव्यक्ति भर नहीं होता, बल्कि गहरे में मन की एक समग्रता होती है, और यह सब उसमें सतत गतिशील रहता है—प्रश्न पूछना, संदेह करना, कुंठाग्रस्त होना, लालसाएं होना इत्यादि। जब वह गतिशीलता किसी ऐसी चीज़ के संपर्क में आती है, जिससे उसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता तो इसे पल-दो-पल के लिए स्तब्ध कर देने वाला एक आघात लगता है, पर फिर यह सक्रिय हो उठती है।

जब आप कोई सुंदर वस्तु देखते हैं, किसी सुंदर पर्वत को, किसी सुंदर नदी को, किसी सुंदर मुस्कान को देखते हैं तो क्या आपका ध्यान कभी इस पर नहीं गया कि तब आपका मन कितना शांत हो जाता है? क्योंकि उस पल में कुछ समझ पाना मन की क्षमता से बाहर होता है, इसलिए यह पल भर के लिए ठिठक जाता है और उसके बाद फिर कार्य करने लगता है। हममें से अधिकांश के साथ ऐसा होता है। यह देख लेने के बाद, क्या मन के लिए ऐसा करना संभव है कि पूरे समय तक, एक ही स्तर पर नहीं, बल्कि पूर्णरूप से यह शांत रहे? क्या आपका मन सौंदर्य या पीड़ा के किसी आघात के कारण नहीं, किसी प्रयोजन से नहीं, वरन् स्वाभाविक रूप से सारे समय पूर्ण रूप से मौन रह सकता है—बिना किसी उद्देश्य के क्योंकि जैसे ही आपके पास कोई उद्देश्य होगा भय और ईर्ष्या भी उसके साथ हो लेंगे। अतः क्या किसी प्रयोजन के बिना भी आपका मन इस तरह नितांत

निश्चल हो सकता है कि यह गहराई के तल पर, और सतह पर भी शांत हो? आप बस इसका पता लगा सकते हैं, हां अथवा न नहीं कह सकते हैं।

वास्तविक स्वतंत्रता तब होती है जब मन अपनी गतिविधियों को, अपने अंधेरे और उजले पहलुओं को, क्रियाकलापों को, विकल्पों को, अपनी खुशियों को भलीभांति जानने लगता है। भीतर की गहराइयों से लेकर ऊपरी सतह तक की अपनी समस्त गतिविधियों को मन जब देख-जान लेता है, तो ऐसा करना ही इसे शांत कर देता है। इस सब के बारे में अत्यंत विवेक से चिंतन किया जाना चाहिए, धैर्यपूर्वक इसे देखा जाना चाहिए और इसकी खोजबीन की जानी चाहिए, ताकि आप मन को समग्र रूप से, पूर्ण रूप से जान लें, ताकि आपको इस संपूर्ण प्रक्रिया के प्रति सजग हो सकें, केवल तभी मन वस्तुतः मौन होता है।

प्रश्न : ईर्ष्या क्या है?

कृष्णमूर्ति : क्या आप नहीं जानते कि ईर्ष्या क्या है? जब आपके पास कोई खिलौना होता है पर किसी दूसरे के पास इससे भी बड़ा खिलौना होता है तो क्या आप भी बड़ा खिलौना नहीं चाहते? जब आपके पास एक छोटी सी साइकिल होती है और आप कहीं एक बड़ी और अधिक सुंदर साइकिल देख लेते हैं तो क्या आप उसे पाना नहीं चाहते हैं? यही ईर्ष्या है। लोग इस ईर्ष्या में ही जीते हैं, इसके चलते एक-दूसरे का शोषण करते हैं और फलते-फूलते हैं।

इस बालक की शिक्षा में लगे शिक्षक कृपया ध्यान देंगे और उसे इस बारे में समझाएंगे? कृपया थोड़ा समय निकालें और उसे यह समझाने का कष्ट करें कि ईर्ष्या क्या है—यदि आप स्वयं यह समझते हों।

ईर्ष्या किसी छोटे से कारण से शुरू होती है और फिर व्यक्ति विभिन्न नामों के आवरण में इसे छिपाकर अनेक तरह के कार्यों में उलझ जाता है। हम सभी ईर्ष्या करना जानते हैं। यह छोटा बालक जानना चाहता है कि ईर्ष्या क्या है। कृपया यह न कहें कि ईर्ष्या करना ठीक है कि गलत है, इसकी निंदा न करें। उसे यह न कहें कि ईर्ष्या करना ठीक नहीं है, ईर्ष्या गंदी, बुरी चीज़ है। यदि कुछ बुरा है तो वह है ईर्ष्या की निंदा, न कि ईर्ष्या। कृपया उसे ईर्ष्या का समस्त कार्य-व्यवहार समझाएं, यह कैसे उठती है, हमारा समाज किस प्रकार से ईर्ष्या की नींव पर टिका हुआ है, कैसे हमारी मौलिक प्रवृत्तियां इस पर आश्रित हैं और यह हमारे सारे कृत्यों को किस प्रकार ढालती है। आप किसी नक्शे की निंदा नहीं करते, आप यह नहीं कहते कि इस सड़क को इस तरफ से नहीं गुजरना चाहिए। आप यह नहीं कहते कि गांवों को यहां पर नहीं वहां पर होना चाहिए। इसी तरह से आपको चाहिए कि ईर्ष्या का अवलोकन करें न कि उसकी अवहेलना—

उसे रूपांतरित करने का प्रयास न करें, उसे किसी आदर्श में बदलने की चेष्टा नहीं करें।

ईर्ष्या तो ईर्ष्या ही है। इसे बदलकर आप किसी नयी वस्तु का रूप नहीं दे सकते हैं। परंतु यदि आप इसे ध्यान से देखें, इसे समझें, तो यह रूपांतरित हो जाती है, यह अपने आप रूपांतरित हो जाएगी और आपको इसके लिए कुछ नहीं करना होगा। यदि आप प्रत्येक बालक और बालिका को गहराई से इस बारे में समझा पाएं, तो एक ऐसी पीढ़ी तैयार हो सकेगी जो बिलकुल भिन्न होगी।

प्रश्न : हम किसी भी तरह का दिखावा करना और स्वयं को यह भरोसा दिलाना क्यों चाहते हैं कि हम कुछ खास हैं?

कृष्णमूर्ति : आप अपने आप को यह भरोसा दिलाना क्यों चाहते हैं कि आप कुछ हैं? मैं इस बारे में सुनिश्चित होना क्यों चाहता हूं कि मैं कुछ हूं?

आप जानते ही हैं कि कोई भी महाराजा ऐसा प्रदर्शित करना चाहता है कि वह विशिष्ट है। वह गौरवपूर्वक अपनी कारों को, अपनी उपाधियों को, अपनी प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य को प्रदर्शित करना चाहता है। एक प्रोफेसर, पंडित स्वयं को अपने ज्ञान के सहारे यह भरोसा दिलाता है कि वह कोई है। आप भी अपने मित्रों के बीच कक्षा में यह दिखाना चाहते हैं कि आप भी कुछ हैं। चाहे छोटे पैमाने पर हो या बड़े पैमाने पर, पर है यह एक ही बात। हम ऐसा क्यों करते हैं? मैं जो कहने जा रहा हूं कृपया उसे ध्यान देकर सुनें।

यदि आप अपने भीतर से समृद्ध हैं तो किसी भी प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उसका अपना ही सौंदर्य है। पर हमारे भीतर यह डर होता है कि हम कुछ नहीं हैं, इसलिए हम कुछ होने का नाटक करने लगते हैं। संन्यासी ऐसा करता है, प्रधानमंत्री और धनवान लोग भी ऐसा करते हैं। उनसे उनकी सत्ता, उनका धन, उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा छीन लें तो वे बुद्धिहीन, मूढ़ और खोखले हो जाएंगे। इसलिए जो व्यक्ति दिखावा करना चाहता है, या जो यह सुनिश्चित करना चाहता है कि वह कुछ है, अथवा जो अपने आप से यह कहता है कि वह खास व्यक्ति है वास्तव में अत्यंत खोखला है। यह ढोल पीटने जैसा है, आप ढोल को इसलिए पीटते हैं कि उससे शोर हो और शोर मचाने का मतलब है प्रदर्शन करना, ढिंढोरा पीटना, यह भरोसा पैदा करना कि आप कोई हैं। परंतु ढोल की अपनी कोई आवाज़ नहीं होती, आवाज़ पैदा करने के लिए इसे पीटा जाता है, अपने आप में यह खोखला होता है। अपने आपमें आप खोखले हैं, मंद हैं, लकीर के फकीर हैं और चूंकि आप कुछ भी नहीं हैं, इसलिए अपने आपको भरोसा दिलाना चाहते हैं कि आप कुछ हैं। ईर्ष्या-द्वेष की यही गतिविधि है। लेकिन यदि आप कहते हैं, "हां मैं खोखला हूं, मेरे पास

कुछ नहीं है" और स्थिति को बदलने की चेष्टा नहीं बल्कि उसे समझने का प्रयास करते हैं, उसका अध्ययन करते हैं, उसकी गहराई तक जाते हैं तो वे संपदाएं आपके हाथ लगती हैं जिन्हें भ्रष्ट नहीं किया जा सकता। ऐसा करना आपको इस बात का कोई भरोसा नहीं दिलाएगा कि आप विशिष्ट हैं क्योंकि आप तो कोई हैं ही नहीं। जो मनुष्य वास्तव में कोई नहीं है, जो अपने आपमे कुछ नहीं है केवल वही सच में सुखी है।

प्रश्न : इन बीते दिनों में इस भावना से आप हमसे चर्चाएं करते रहे हैं कि हमारे जीवन में कोई परिवर्तन आ सके। यदि आप यह चाहते हैं कि हम कुछ भिन्न ढंग से विचार करें, तो हम अभी तक जिस ढंग से विचार करते आ रहे हैं उससे वह किस प्रकार से भिन्न है? आज जो हम नहीं हैं वह हो पाने के हमारे विचार से वह किस प्रकार भिन्न है?

कृष्णमूर्ति : प्रश्न को थोड़ा सरल बनाया जाए। आपका प्रश्न है : आप चाहते हैं कि हममें बदलाव आए, यह बदलाव उससे किस प्रकार से भिन्न होगा, जिसे लाने की इच्छा हम पुराने ढांचे में सोचते हुए करते हैं?

क्या मैं आपमें बदलाव लाना चाहता हूं? यदि आपमें बदलाव इसलिए आता है क्योंकि मैं आपमें बदलाव लाना चाहता हूं तो वैसा बदलाव ईर्ष्या की, भय की, पुरस्कार की और दंड की गतिविधि ही होगा। क्योंकि आप 'यह' हैं और 'वह' में आप इसलिए बदलना चाहते हैं क्योंकि 'वह' में बदलने के लिए मैं आपको बाध्य कर रहा हूं—जो वस्तुतः ईर्ष्या, भय एवं द्वेष की ही क्रिया है। यदि मुझे यह एहसास होता है कि मैं क्या हूं, सिर्फ एहसास होता है, बदलाव की किसी इच्छा के बिना, निंदा के किसी भाव के बिना, यदि मैं इसे प्रत्यक्ष रूप से जान लेता हूं, देख लेता हूं—तब एक पूर्णतः भिन्न गतिविधि शुरू हो जाती है। किंतु ऐसी पूर्णतः भिन्न गतिविधि शुरू हो सके इसके लिए यह ज़रूरी है कि ईर्ष्या की, भय की, निंदा करने की और तुलना करने की गतिविधि का अंत हो जाए। क्या यह स्पष्ट हुआ?

प्रश्न : अभी तो स्थिति यह कि हम उस तरीके से विचार नहीं कर पाते जिस तरीके से आप करते हैं। आप जिस तरीके से चिंतन करते हैं उसे हम समझ सकें इसलिए, हमें सहायता करने की दृष्टि से, आप हमसे चर्चा कर रहे हैं। ऐसा ही है न? क्या यही वह बदलाव नहीं है जिसे हम स्वयं ही अपने भीतर लाएं ऐसा आप चाहेंगे? आपके और हमारे चिंतन में कोई सूक्ष्म अंतर है। हम आपके ढंग से चिंतन इसलिए नहीं कर पाते हैं क्योंकि जीवन को आप जिस प्रकार से देखते हैं हम उसे उस प्रकार से नहीं देख पाते।

कृष्णमूर्ति : विचार करने का हमारा तरीका प्रायः इस पर निर्भर करता है कि हम किन परिस्थितियों में पले-बढ़े हैं—हमारा विचार करने का तरीका उसी ढांचे के अनुरूप, उसी पटरी पर, उसी लीक पर हुआ करता है। अब, जैसे ही आपका ध्यान इस पर जाता है कि आपका सोचना-

विचारना संस्कारग्रस्त है वैसे ही क्या आपकी वह संस्कारग्रस्तता टूटने नहीं लगती है? जैसे ही मुझे यह महसूस होता है कि मैं कम्युनिस्ट या कैथोलिक या हिंदू विचारधारा के ढांचे में सोचता हूं, क्या तुरंत ही मैं उससे बाहर नहीं निकलने लगता? मैं बस यही कह रहा हूं। एक ऐसा बाहर निकलना होता है जो अभ्यासगत सोच-विचार से नितांत भिन्न होता है—जो कि बदलाव नहीं होता।

जब हम बदलाव की बात करते हैं तो हमारा आशय यह होता है कि हमें 'यह' से 'वह' में बदलना है। जब हम 'यह' से 'वह' में परिवर्तित होते हैं तो 'वह' तो पहले से ही ज्ञात होता है; इसलिए यह हकीकत में बदलाव नहीं होता। जब मैं लोभ को निर्लोभ में बदलता हूं तो यह निर्लोभ मेरे मन की ही रचना होती है, मेरी ही कल्पना होती है। अतः निर्लोभ की अवस्था को मैं पहले से ही जानता हूं। इसलिए जब मैं कहता हूं कि मुझे लोभ को निर्लोभ में बदलना होगा तो बदलाव लाने की यह गतिविधि भी ज्ञात के क्षेत्र में होती है, अर्थात ज्ञात से ज्ञात तक ही सीमित रहती है। इसलिए यह बदलाव कदापि नहीं है। क्या आप इसे देख सकते हैं?

कृपया सुनें—आप सभी ध्यानपूर्वक सुनें। वे सज्जन जिन्होंने प्रश्न पूछा था, वे ही नहीं बल्कि इससे आप सबका संबंध है। जब हम बदलाव की बातें करते हैं, जब हम क्रांति की बातें करते हैं, 'यह' को 'वह' में बदलने की बात करते हैं तो 'वह' एक ऐसी दशा होती है जिसे हम पहले से ही जानते होते हैं, अतएव वह बदलाव नहीं है। जब मैं हिंदू मन से कैथोलिक मन में परिवर्तित होता हूं तो मुझे यह पहले से ही मालूम होता है कि कैथोलिक मन क्या है। इस चीज़ को मैं पाना चाहता हूं। मुझे यह चीज़ पसंद नहीं है और मैं 'वह' पाना चाहता हूं। जिसे मैं पसंद करता हूं उसे मैं जानता ही हूं। इस प्रकार से वह पहले से जानी हुई चीज़ होती है जो एक नये रूप में मुझे मिलती है।

मैं बदलने की बात नहीं कह रहा बल्कि बदलने की इच्छा के समाप्त होने की बात कर रहा हूं, जिसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो कुछ भी है उससे संतुष्ट रहा जाए। यह आवश्यक है कि ज्ञात को उस अज्ञात में बदलने की इच्छा का अंत हो जाए जो यद्यपि ज्ञात ही है, मैं उसे अज्ञात समझ रहा हूं। यदि यह गतिविधि रुक जाती है तो एक सर्वथा भिन्न गतिविधि की शुरुआत होती है।

15 जनवरी 1954

ताकत

मेरा विचार है कि हम किसी ऐसे विषय पर बात करें जिसके बारे में हममें से कुछ लोगों को पता हो—जैसे, दूसरों पर और खुद पर भी प्रभुत्व जमाने की उस खास इच्छा के बारे में जो कि हममें से ज्यादातर लोगों में होती है।

मुझे लगता है कि प्रभुत्व की कामना गहनतर इच्छाओं में से एक होती है जिसके मूल में वह भय होता है जो अकेलेपन की भावना से, कुंठा की भावना से उपजता है। मैं जो कह रहा हूं हो सकता है वह थोड़ा कठिन लगे पर कृपया उसे ध्यान से सुनें। यदि आप इसे समझ सकें और इसके पार जा सकें तो एक अलग ही अवस्था प्रकट होती है जिसमें प्रेम होता है। यदि मनुष्य में वह प्रेम नहीं है तो जीवन नीरस हो जाता है, बोझिल, खाली-खाली और उथला हो जाता है।

मैं सोचता हूं कि जिसे हम शक्ति कहते हैं, ताकत कहते हैं, समझना ज़रूरी है—यहां शक्ति से मेरा मतलब बिजली या भाप की शक्ति से नहीं है और न उस सामर्थ्य से है जो किसी काम को कुशलता से करने के लिए ज़रूरी होती है—हालांकि इन सबकी भी अपनी उपयोगिता होती है। मैं एक ऐसे चीज़ के बारे में कह रहा हूं जिसका महत्त्व इनकी अपेक्षा बहुत अधिक है तथा जिसकी सार्थकता भी अधिक गहन है तथा जिसे समझे बिना विभिन्न कार्यों को करने की क्षमता, दक्षता आदि और भी बड़ी व्यथाओं का, और अधिक क्लेशों का कारण बन जाती है।

हममें से अधिकांश किसी-न-किसी तरह का आधिपत्य चाहते हैं—चाहे वह पुत्र पर हो या पत्नी पर अथवा पति पर, चाहे यह लोगों के किसी समूह पर हो अथवा किसी आदर्श के या राष्ट्र के नाम पर हो। दूसरों पर प्रभुत्व रखने की यह इच्छा हममें हमेशा सक्रिय रहती है—यहां तक कि अपने नौकर के प्रति किए जाने वाले हमारे व्यवहार में, उसे लगातार हुक्म देते रहने और उससे रूखे ढंग से बात करने में भी इसे देखा जा सकता है। क्या दूसरों पर सत्ता की यह इच्छा अकेलेपन के एहसास से उत्पन्न नहीं होती? क्या आपने कभी अकेलेपन का अनुभव किया है? क्या आप जानते हैं कि अकेले होना, बिलकुल अकेले हो जाना, कोई संगी-साथी न होना, कोई साथ न होना, क्या होता है? एक भी दोस्त न होना, ऐसा कोई व्यक्ति न होना जिस पर आप निर्भर कर सकें, जिस पर आप भरोसा कर सकें, सब लोगों से पूरी तरह से अलग-थलग पड़ जाना, यह अवस्था कैसी होती है? हो सकता है आपने इसे कभी महसूस न किया हो। आपमें से अधिकतर इससे बचने की कोशिश करते हैं, इससे दूर भागते हैं। इस ओर आपका ध्यान केवल किसी बड़ी विपत्ति के आने पर ही जाता है, मृत्यु के अवसर

पर ही आप इस ओर देखते हैं, लेकिन तब भी आप इससे भाग खड़े होते हैं। इस खालीपन को समझे बिना केवल प्रभुत्व का सहारा लेकर इसे नियंत्रित करना बस कुंठाओं की तरफ ही ले जाता है।

शायद अभी जब आप छोटे हैं तो यह समझ पाना आपको बहुत कठिन जान पड़े, लेकिन फिर भी इस बारे में विस्तार से चर्चा की जानी चाहिए क्योंकि जैसे-जैसे व्यक्ति बड़ा होता है, उसके पास दूसरों पर और अपने आप पर भी प्रभुत्व रखने की शक्ति बढ़ने लगती है। संन्यासी स्वयं अपने पर ही इस शक्ति का प्रयोग करना चाहता है और इसलिए तपस्या के द्वारा अपने पर नियंत्रण रखने में लगा रहता है; इस तरह से वह अपने भीतर शक्ति का एहसास करता है कि उसमें स्वयं पर और अपनी कामनाओं पर अंकुश रखने की सामर्थ्य है। अपने लिए कम-से-कम वस्तुएं चाहने की भावना उसमें अपने असाधारण रूप से शक्तिमान होने का ख्याल जगाती है; यह स्व-केंद्रित शक्ति होती है। और आप भी दूसरों पर प्रभुत्व पाना चाहते हैं और उस तरह आप एक गहरी राहत, प्रसन्नता और सुख महसूस करते हैं। आपको ऐसा लगता है कि किन्हीं विचारों के माध्यम से, राजनीतिक शक्ति का सहारा लेकर, शब्दों की शक्ति से आप हजारों लोगों पर हावी होने में सक्षम हैं। शक्ति की लालसा के पीछे भय छिपा रहता है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब आप किसी अन्य से अपनी तुलना करते हैं, किसी कल्पना से, व्यक्ति से या आदर्श से अपने को तोलते हैं तो क्या इस तरह की तुलना में वर्चस्व की इच्छा ही नहीं छिपी होती? मेरे पास न तो शक्ति है, न पद है, न योग्यता, लेकिन अगर मैं किसी महान व्यक्ति जैसा आचरण कर सकूं, उसकी नकल कर सकूं, तो मैं ताकतवर बन जाऊंगा, मैं कुछ खास हो जाऊंगा। इस तरह कुछ विशिष्ट होने की इच्छा, नकल, अनुकरण और तुलना मुझमें शक्तिशाली होने की भावना जगाती है।

मुझे लगता है कि हमें अपने बचपन में ही इस बात को ज़रूर समझ लेना चाहिए क्योंकि इसी को संसार में हर कोई पाने की कोशिश में लगा है। एक क्लर्क अपने से नीचे वाले क्लर्क पर प्रभुत्व पाना चाहता है, और बॉस अपने अधीनस्थ काम कर रहे अनगिनत कर्मचारियों पर अपना प्रभुत्व चाहता है। मंत्रियों के हाथ में भी ऐसी शक्ति होती है जिसके द्वारा वे किसी को पद या प्रतिष्ठा दे सकें और इस रूप में उनके पास भी दूसरों को नियंत्रित करने की शक्ति होती है। समाज का पूरा ढांचा इसी नींव पर टिका है और हमें लगता है कि इस शक्ति के द्वारा हम लोगों के जीवन बदल सकते हैं। अपने हाथ में ही सत्ता का होना बड़ा रोमांचकारी होता है। सत्तासंपन्न व्यक्ति कहता है, 'मैं ऐसा अपने राष्ट्र के हित में कर रहा हूं, मैं यह सब अपने आदर्श के लिए कर रहा हूं।' जब वह यह कह रहा होता है तो उसे भली-भांति मालूम होता है कि वह शक्तिशाली पद पर है और लोगों पर नियंत्रण रख सकता है।

जब आपकी शिक्षा चल रही होती है, जब आप स्कूल या कॉलेज में होते हैं, तब ही इसे समझ लेना बहुत ज़रूरी है। आपको यह पता लगाना होगा कि लोगों पर दवाब डाले बिना, उन पर नियंत्रण रखे बिना, उनके मन को प्रभावित किए बिना ही क्या आप इस दुनिया में जी सकते हैं। क्योंकि हममें से प्रत्येक व्यक्ति आखिर उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि वह राजनीतिज्ञ जिसके पास शक्ति है, हममें से हर कोई स्वतंत्रता में विकसित होना चाहता है, ताकि हम वह हो सकें जो कि हम हैं, ताकि हम समझ सकें कि हम क्या हैं और उस समझ से आचरण करें, ताकि समाज अथवा शिक्षक अथवा हमारे माता-पिता या कोई भी व्यक्ति जो हमारे व्यक्तिगत जीवन को किसी विशेष ढंग से ढालना चाहता है हम पर हावी न हो सके। इस सबके बीच स्वतंत्रतापूर्वक अपने ढंग से रह पाना बहुत कठिन होता है क्योंकि हममें से हर कोई शक्ति पाना चाहता है। शिक्षक प्रधानाचार्य होना चाहता है क्योंकि प्रधानाचार्य अनेक लोगों पर प्रभुत्व रखता है और उसके पास अधिक पैसा भी होता है।

जब कोई दूसरा व्यक्ति धन, पद और सामाजिक प्रतिष्ठा के असर से आपको अंकुश में रखना चाहता है तो आपके अंदर की यह भावना कि आप एक व्यक्ति हैं, एक मनुष्य हैं, एक स्वतंत्र इकाई हैं, पूर्णतः नकार दी जाती है, खत्म कर दी जाती है। जबकि मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रकार के किसी विद्यालय में ऐसी भावना का होना बहुत ज़रूरी है कि यह स्कूल हमारा है, आपका तथा मेरा है—और एक छात्र होने के नाते आप भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना कि कोई शिक्षक या प्रधानाचार्य। 'अपनत्व' का एहसास संसार में कहीं नहीं दिखाई देता—यह एहसास कि यह धरती हमारी है, आपकी तथा मेरी है, रूसियों, अमरीकियों या अंग्रेजों की या अफ्रीकियों की ही नहीं है; यह एहसास कि यह संसार हमारा संसार है, न कि यह साम्यवादी, समाजवादी या पूंजीवादी संसार है; यह भावना कि यह पृथ्वी हमारी है जिस पर आप और मैं तथा अन्य लोग जिएं और जीने के संपूर्ण अभिप्राय को खोजने के लिए स्वतंत्र हों। यदि हम किसी भी स्तर पर सत्ता की तलाश कर रहे हैं तो हम जीने के अर्थ और उसकी समझ से दूर हो जाते हैं। मां अपने नन्हे से बच्चे पर अधिकार रखती है और चाहती है कि वह खास ढंग से बड़ा हो। पिता अपने अनुसार उसे बनाना चाहता है और बच्चे को बलपूर्वक किसी खास ढांचे में बड़ा किया जाता है। लेकिन शिक्षा का अर्थ तो मन को इस तरह से मुक्त करना है कि वह बिना किसी विवशता के स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके, वर्चस्व और तुलना की भावना के कारण उसमें विकार न आए। हमें इस तरह का विद्यालय निर्मित करना चाहिए, आपको और मुझे निश्चित तौर पर ऐसे विद्यालय का निर्माण करना चाहिए। नहीं तो यही होगा कि आप भी बाकी लोगों की तरह इस स्कूल या कॉलेज से शिक्षा पाकर कहीं चले जाएंगे, आप भी वैसे ही जड़बुद्धि होंगे, हालांकि आपके मस्तिष्क में सतही जानकारियां ठूंस-ठूंस कर भरी होंगी

लेकिन आपके भीतर अपनी कोई अंतःस्फूर्ति न होगी और आप ऐसी मशीन बन कर रह जाएंगे जो परिस्थितियों, समाज और राजनेताओं द्वारा चलाई जा रही हो, और इसका कारण है कि आपमें से हर कोई उस राजनेता की ही तरह सत्ता का भूखा है।

मैं जो कह रहा हूं उसे आप अभी न भी समझ पाएं तो भी आप अपने अध्यापकों से इस बारे में चर्चा करें, उनसे कहें कि वे आपको यह सब समझाएं कि यह हम सबकी धरती है जहां सभी मनुष्य रह सकते हैं और बिना किसी दूसरे को नष्ट किए समझदारी से रह सकते हैं, अपनी योग्यता का इस्तेमाल कर सकते हैं। जैसे ही हम अपनी योग्यता का इस्तेमाल सत्ता-प्राप्ति के लिए, पद, प्रतिष्ठा आदि पाने के लिए करने लगते हैं हम विनाश करने लग जाते हैं। इसलिए हमें इस बारे में बातचीत करनी चाहिए कि एक ऐसा विद्यालय कैसे निर्मित करें जहां हममें से प्रत्येक छात्र, शिक्षक एवं फाउंडेशन के सदस्य सभी मिलजुलकर इस स्थान को सृजित कर सकें— जिसमें आप एक छात्र के नाते पेड़-पौधों और सड़कों की देखभाल कर सकें, धरती की सभी वस्तुओं की साज-संभाल स्नेहपूर्वक कर सकें, पर ऐसा इसलिए नहीं कि यह विद्यालय आपका है बल्कि इसलिए कि यह धरती हम सबकी है।

मैं सोचता हूं कि केवल ऐसी भावना ही संसार को नष्ट होने से बचा सकती है। चतुराई भरे वैज्ञानिक आविष्कार नहीं बल्कि यह भावना कि आप और हम एक साथ अपने संसार को बना रहे हैं संसार को नष्ट होने से बचा सकती है। किंतु ऐसा हो पाना अत्यंत कठिन है क्योंकि आज तो स्थिति यह है कि सब कुछ 'मेरा' है, 'आपका' नहीं, और यह 'मेरा' भी पुनः अनेक श्रेणियों में, अनेक समुदायों में, भिन्न-भिन्न कार्य-कलापों में, अनेकों राष्ट्रीयताओं आदि में बंटा हुआ है। 'अपनत्व' की भावना संसार में कहीं नहीं दिखाई देती, लेकिन इसके बिना संसार में हमें शांति नहीं मिल सकेगी। इसलिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि आप अपने बचपन में ही इसे समझें और यह भावना आपमें जागे ताकि जब आप यहां से कहीं जाएं तो आप एक नया संसार और एक नयी पीढ़ी का निर्माण कर सकें।

प्रश्न : जब किसी ऐसे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है जिसे हम जानते थे, जिससे हमें प्यार था, तो हमें दुख क्यों होता है?

कृष्णमूर्ति : जब आपके किसी मित्र की या निकट संबंधी की मृत्यु हो जाती है तो आप दुखी हो जाते हैं। क्या आप उस व्यक्ति के लिए दुखी होते हैं जो मर चुका है, या आप अपने लिए दुखी होते हैं? जो मर गया वह जा चुका होता है, और जीवन का सामना करने के लिए आप अकेले रह जाते हैं। जब वह व्यक्ति आपके साथ था तो आप कुछ सुरक्षित सा अनुभव करते थे, थोड़ा सुखी अनुभव करते थे, आपको मित्रता का, साथ होने का अनुभव होता था। वह विदा हो चुका है और पीछे रह गए आप अपनी

असुरक्षा के साथ, ऐसा ही है न? आपका अकेलापन आपको लगातार कचोटता रहता है। आपको पता है कि आपसे आपका साथ छीन लिया गया। ऐसा व्यक्ति था जिसके प्रति आप निस्संकोच होकर, आप जैसे भी हैं, जो भी हैं, उसे व्यक्त कर सकते थे, उससे कह सकते थे। जब वह व्यक्ति जा चुका है, तो आप बहुत दुखी हैं, चूंकि आप अकेलापन महसूस कर रहे हैं, चूंकि अब कोई ऐसा कहीं नहीं है जो इस अकेलेपन को दूर करने में आपकी सहायता कर सके इसलिए आप बहुत दुखी हैं। परंतु आप उस व्यक्ति के लिए दुखी नहीं हैं, आप अपने लिए दुखी हैं। और दुखी होने के कारण आप अनेक तरह के सिद्धांत गढ़ लेते हैं, अनेकों विश्वास अपना लेते हैं।

क्या यह बहुत ज़रूरी नहीं है कि निर्भरता की इस प्रक्रिया को समझा जाए? मनुष्य किसी दूसरे पर निर्भर क्यों रहता है, मैं दूधवाले पर, पोस्टमैन पर और उस व्यक्ति पर जो कि इंजन चलाता है, बैंक पर और पुलिसवाले पर अवश्य ही निर्भर करता हूं, पर इन पर निर्भर करना उस तरह की निर्भरता से एकदम अलग चीज़ है जो कि भय पर और सुख-सुविधा की आंतरिक मांग पर आधारित होती है। मैं नहीं जानता कि जिया कैसे जाता है, मैं भ्रमित हूं, अकेला हूं इसलिए चाहता हूं कि कोई मेरी मदद करे, कोई मेरा मार्गदर्शन करे, कोई आध्यात्मिक शिक्षक, कोई पुस्तक या कोई सिद्धांत हो जिस पर मैं भरोसा कर सकूं। जब वह आश्रय मुझसे छीन लिया जाता है तो मैं असहाय महसूस करने लगता हूं और अपने असहाय हो जाने का बोध मेरे लिए क्लेश का कारण बन जाता है।

जब हम विद्यालय में हैं, क्या उस समय ही यह ज़रूरी नहीं है कि आश्रित होने की इस समस्या को समझ लें, ताकि हम मानसिक रूप से किसी पर आश्रित हुए बिना ही विकसित हो सकें? इसके लिए यह ज़रूरी है कि हममें गहरा विवेक हो, गहराई से खोजबीन करने की क्षमता हो। किसी भी प्रकार के भय की अनुभूति इस प्रकार की निर्भरता उत्पन्न करती है, अतः निस्संदेह शिक्षा का कार्य मन को भय के एहसास से मुक्त करना है। निर्भर होने के कारण हम कहते हैं, 'मुझे निर्भरता से कैसे छुटकारा मिले?' परंतु यदि इसकी प्रक्रिया को, निर्भरता के कारणों को समझ लिया जाए तो यह समस्या ही नहीं होगी कि इससे मुक्त कैसे हुआ जाए। इस प्रकार की समझ ही मन को किसी पर भी आश्रित होने से मुक्त कर देती है।

प्रश्न —तारा क्या होता है?

कृष्णमूर्ति —मुझे अफसोस है कि मैं आपको इसकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं दे सकूंगा। तारा क्या होता है इसके बारे में आप किसी विज्ञान की पुस्तक से अथवा अपने विज्ञान के शिक्षक से जान सकते हैं।

क्या आपने कभी किसी तारे को देखा है? जब आप किसी तारे को देखते हैं तो आपको क्या महसूस होता है? जब आप किसी दिन शाम के समय आकाश को देखते हैं और जब आपको वहां करोड़ों तारे और ग्रह-नक्षत्र दिखाई देते हैं तो आपको कैसा लगता है? क्या आप उन पर एक नज़र डालकर आगे निकल जाते हैं? हममें से ज्यादातर लोग ऐसा ही करते हैं। हम किसी से बात कर रहे होते हैं और हम कहते हैं, 'तारों को और चंद्रमा को देखो, रात कितनी सुंदर लग रही है!' और फिर अपनी बातों में लग जाते हैं। परंतु यदि आप अकेले हैं, या आपके साथ जो लोग हैं वे बहुत बातूनी नहीं हैं बल्कि जो अपने आसपास की चीज़ों को ठीक से देखते हैं, तब आप तारों को देखते हैं तो आपको कैसा लगता है? क्या आप यह महसूस करते हैं कि इस विराट विश्व में आप बहुत छोटे हैं या यह कि ये सब आपका ही हिस्सा हैं, ये सब तारे, चंद्रमा, वृक्ष और नदी? क्या आपके पास तब इतना समय होता है कि यह सब ठीक से देखें और आपको क्या महसूस होता है उसे जान सकें?

यह कितना कठिन है कि किसी सुंदर वस्तु को आप देखें और मन अपनी स्मृतियों के साथ उसमें हस्तक्षेप न करे, जब मन यह न कहे, 'यह उतनी सुंदर रात्रि नहीं है जितनी कि वह थी', 'यह उतनी सुंदर नहीं है जितनी कि पिछले वर्ष देखी थी', 'आज तो बहुत ठंड है, मैं नहीं देख सकूंगा।' मन शब्द रहित होकर, तुलना से मुक्त रहकर कभी नहीं देखता। और जब आप तुलना से मुक्त रहकर, शब्द से रहित रहकर देख सकें केवल तब ही तारे, धरती, वृक्ष और चंद्रमा तथा जल पर फैले आलोक के असाधारण अर्थ प्रकट होते हैं। वहां पर गहन सौंदर्य होता है। तुलनामुक्त होकर देखने के लिए मन को समझना ज़रूरी है, क्योंकि मन ही देखता है और मन जिसे भी देखता है, उसे नाम देकर उसकी व्याख्या करने लगता है। मन के द्वारा किसी भी वस्तु को नाम दिया जाना ही उससे दूर हो जाने का कारण बन जाता है।

इस प्रकार जब आप किसी तारे को या किसी पक्षी अथवा वृक्ष को देखें तो इसका पता लगाएं कि उसे देखते समय आपके भीतर क्या घटित हो रहा है, और इससे आपको अपने ही बारे में अनेक बातों का पता चलेगा।

प्रश्न : भौतिक जगत में मनुष्य ने उल्लेखनीय प्रगति की है। दूसरे क्षेत्रों में कोई प्रगति क्यों नहीं दिखाई पड़ती?

कृष्णमूर्ति : भौतिक जगत में हम प्रगति क्यों कर रहे हैं, खासकर आधुनिक विश्व में, यह तो समझना आसान ही है, क्योंकि वहां लोगों में प्रचुर उत्साह है, मनुष्य की बौद्धिक क्षमताओं का ज्वार उमड़ पड़ा है और उसे पर्याप्त अवसर मिल रहे हैं। जब आप एक नया विश्व बना रहे हों तो आपको नया सृजन करना होता है, परिश्रम करना होता है। धनुष-बाण के काल से मनुष्य अब परमाणु बम तक की प्रगति कर चुका है, वह बैलगाड़ी

के युग से जेट विमानों के युग तक प्रगति कर चुका है, जो अब 1600 मील प्रति घंटे की गति से उड़ सकते हैं। इसे ही सामान्यतः प्रगति कहा जाता है। परंतु क्या किन्हीं अन्य तलों पर, मानसिक तल पर कोई प्रगति हुई है? व्यक्तिगत रूप से अपने भीतरी तल पर आपने कोई प्रगति की है? क्या अपने भीतर कुछ पाया है?

दूसरे लोगों ने क्या कहा है, क्या पाया है, यह तो हम जानते हैं। परंतु क्या स्वयं अपने लिए हमने कुछ पाया है? क्या हम अधिक उदार, अधिक सहृदय हुए हैं? क्या हमारे मन, हमारे हृदय अधिक विशाल, अधिक जागरूक हुए हैं? क्या हम भय को छोड़ सके हैं? इन बातों के बिना संसार में प्रगति करना अपने आपको नष्ट करना है।

प्रश्न : ईश्वर क्या है?

कृष्णमूर्ति : आप जानते हैं कि कैसे एक ग्रामीण व्यक्ति, कोई किसान उस प्रतिमा को ईश्वर मान लेता है जिस पर वह कुछ फूल आदि चढ़ाता है। आदिम मानव मेघ-गर्जना को भगवान मानता है और कुछ दूसरे मनुष्य पेड़-पौधों और प्रकृति को भगवान मानते हैं। एक समय ऐसा भी था जब यूरोप में लोग सेब के और जैतून के वृक्षों की पूजा किया करते थे। भारत में आज भी कई लोग वृक्षों की पूजा करते हैं।

किसी भी मंदिर में जाइए तो वहां आप कोई मूर्ति पाएंगे जिस पर तेल, फूलों के हार और आभूषण चढ़ाए जाते हैं, उसे आप भगवान कहते हैं और उस पर फूल चढ़ाकर आप उसकी पूजा करते हैं। आप चाहें तो इससे और भी एक कदम आगे जाकर अपने मन में ही एक प्रतिमा बना सकते हैं, एक कल्पना रच सकते हैं, जो आपकी परंपरा से, आपकी पृष्ठभूमि से उत्पन्न हुई हो और उसे अपना ईश्वर कह सकते हैं। जिस व्यक्ति ने परमाणु बम गिराया था, उसका सोचना था कि ईश्वर उसके साथ है। हिटलर से लेकर किचनर तक सारे युद्ध-प्रणेता और छोटे-बड़े सेनानायक भी ईश्वर के नाम पर युद्ध करने से हिचकते नहीं। क्या वह प्रतिमा अथवा विचार ईश्वर हो सकता है? या क्या ईश्वर कोई ऐसी चीज़ है जो हमारी कल्पनाशक्ति से परे है, जिसका आकलन हमारा मन नहीं कर सकता?

ईश्वर की गूढ़ता की थाह ले पाना हमारे लिए संभव नहीं है और इसके सत्य का स्पर्श तब होता है जब हमारे मन मौन होते हैं, जब हमारे मन मानसिक प्रक्षेपण नहीं कर रहे होते, संघर्षरत नहीं होते। मन जब निश्चल होता है संभवतः तब हम यह जान पाते हैं कि ईश्वर क्या है।

इसलिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि छोटी आयु से ही ईश्वर शब्द में हम अटकें नहीं, ईश्वर के बारे में जो कुछ हमें बताया जाता है उसे स्वीकार न कर लें। ऐसे अनेक लोग हैं जो हमें ईश्वर के संबंध में बताने के लिए उत्सुक हैं। किंतु वे हमसे जो कहते हैं हमें उसकी जांच करनी चाहिए। और ऐसे भी

कई लोग हैं जो कहते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। उन लोगों की बातों में भी हमें नहीं अटकना है बल्कि सावधानी से उसकी भी जांच-पड़ताल करनी है। न विश्वास करने वाले न ही अविश्वास करने वाले कभी भी ईश्वर को पा सकेंगे। जब मन विश्वास तथा अविश्वास दोनों से मुक्त होता है, जब मन निश्चल होता है केवल तभी ईश्वर के सत्य का बोध संभव है।

इन सब पहलुओं के बारे में हमें कभी नहीं बताया जाता। बचपन से ही आपको यह बताया जाता है कि ईश्वर है और आप उसे दोहराते हैं। जब आप किसी गुरु के पास जाते हैं तो वह आपसे कहेगा, 'ईश्वर है। इस-इस प्रकार से यह-यह करो। इस मंत्र को जपो, उस पूजा को करो, अमुक अनुशासन का, व्रत का पालन करो और तुम्हें ईश्वर प्राप्त हो जाएगा।' आप यह सब कर सकते हैं पर इसके पश्चात आपको जो प्राप्त होगा वह ईश्वर नहीं होगा। यह बस आपके ही मन का प्रक्षेपण होगा, आप जो चाहते हैं उसकी ही मानसिक छवि होगा।

यह सभी कुछ कठिन है और इसे समझने के लिए बहुत अधिक चिंतन और खोजबीन करने की ज़रूरत है। और यही वजह है कि जब आप इस तरह के किसी विद्यालय में हैं तो आपको स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होना चाहिए ताकि आपका मन स्वयं इसका पता लगा सके, स्वयं ही इसका रहस्य खोल सके। तब मन सृजनशील होने लगता है, आश्चर्यजनक रूप से सतर्क हो जाता है।

प्रश्न : अपनी संपूर्ण उपलब्ध क्षमता का सर्वोत्तम प्रयोग करते हुए भी मनुष्य पीड़ा क्यों भोगता है?

कृष्णमूर्ति : मुझमें कितनी भी क्षमता हो किंतु जब मुझे अपने ध्येय में सफलता नहीं मिल पाती, जब मैं अपने इरादे पूरे नहीं कर पाता तो मैं दुखी क्यों हो जाता हूं? जब आप अपनी संपूर्ण शक्ति लगा कर कुछ कर रहे होते हैं तो आप दुखी क्यों होते हैं? क्या यह एक सरल सा प्रश्न नहीं है?

अपने प्रिय कार्य को कर पाने से जो तृप्ति मिलती है हम उतने से ही खुश नहीं होते। हम चाहते हैं कि हम जो कर रहे हैं वह कार्य सफल हो। हमारे लिए कार्य को करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना कि सफल होना, उसका परिणाम, उस करने से हमें जो प्राप्त होगा। और जब हमें अपने काम में सफलता नहीं मिलती, जब हमें हमारा मनचाहा फल नहीं प्राप्त होता तो हम दुख के बोझ तले दब जाते हैं। सफल होने की इच्छा, सत्ता, मान्यता, पद और सम्मान पाने की चाह ही हमारे कार्य की मूल प्रेरणा होती है। हम चाहते हैं कोई आकर हमसे कहे : 'आपने कितना बढ़िया काम किया है।' इस सबका सच में यही मतलब है कि किसी चीज़ से प्रेम करना हम नहीं जानते, और केवल उसकी खातिर ही उस काम को नहीं करते बल्कि कुछ पाने की लालसा से उसे करते हैं। हम हर काम सफलता

को दृष्टि में रखकर करते हैं, भविष्य पर, कल पर दृष्टि रखकर करते हैं और जब उस कल के आने का कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता तो हम व्याकुल हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हम ऐसा कुछ नहीं करते जिसे करने भर से हमें प्रेम हो।

यहां पर अनेक लोग ऐसे हैं जो शिक्षक हैं, प्रोफेसर हैं, बड़े व्यवसायी या उच्च अधिकारी आदि हैं। आप इन कार्यों में क्यों लगे हैं? इसलिए नहीं कि आप जो कर रहे हैं उससे आपको लगाव है बल्कि इसलिए लगे हैं क्योंकि करने के लिए आपके पास कोई और काम है ही नहीं। इसलिए आप जो भी कार्य कर रहे हैं उसे सफल होते देखना चाह रहे हैं। आप सफलता की लहर पर सवार होना चाहते हैं और इसलिए आप सदैव होड़ में लगे रहते हैं, संघर्ष करते हैं और इस तरह से मन की क्षमताओं को नष्ट कर लेते हैं।

प्रश्न : हम अनुभव और स्मृति के बिना जीवन कैसे जी सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : आप यह जानना चाहते हैं कि हम स्मृति से कैसे मुक्त हों। यानी आप कोई तरीका, कोई विधि ढूंढ़ रहे हैं। परंतु कोई भी विधि, कोई भी तरीका आपके अनुभव में और इजाफा करेगा—इससे तो स्मृति और अधिक मज़बूत होगी, होगी न? जब मैं किसी कार्य को करना जानता हूं तो उसका अभ्यास हो जाता है। यदि मुझे यह पता हो कि कैसे पढ़ा-लिखा जाता है तो 'कैसे' की प्रक्रिया मेरी याददाश्त का हिस्सा बन जाता है और उस याददाश्त के सहारे मैं प्रत्येक शब्द को, प्रत्येक स्वर को, व्यंजन को लिख और पहचान सकता हूं।

उस दिन मैं जो कुछ कह रहा था उसका मतलब इससे बिलकुल अलग है। मैंने कहा था कि जीवन अनुभव एवं स्मृति की एक प्रक्रिया है। जीवन को जीना ही अनुभव है तथा अनुभव परंपरा को जन्म देता है, स्मृति को जन्म देता है तथा उस परंपरा, स्मृति और अभ्यास के साथ हम जीते हैं। इसलिए जीने में नया कुछ नहीं होता। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम अनुभव के साथ इस प्रकार जिएं कि वह जीवन को दूषित न कर सके, जो केवल स्मृति भर बनकर न रह जाए और जिसके माध्यम से हम जीवन को देखने लगें? इस बारे में हमने बहुत सतर्कतापूर्वक चर्चा की थी। परंतु यह आवश्यक है कि बार-बार इस पर अलग-अलग दृष्टियों से विचार किया जाए ताकि इसका पूरा आशय स्पष्ट हो सके।

प्रश्न : क्या इतिहास ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करता है?

कृष्णमूर्ति : क्या यह सिद्ध करने की बात है? ईश्वर है या नहीं है, शायद इसे इतिहास सिद्ध कर पाए या शायद न कर पाए। लाखों लोग कहते हैं कि ईश्वर है और इतना ही ज़ोर देकर लाखों लोग दावा करते हैं कि ईश्वर नहीं है। प्रत्येक पक्ष इस बारे में प्रमाण, इतिहास, वैज्ञानिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

मन भयभीत होता है, यह किसी का सहारा चाहता है, कुछ ऐसा जिस पर आश्रित रह सके। मन ऐसी कोई स्थायी वस्तु चाहता है जिसे सदा सहारे की तरह साथ रख सके। स्थायित्व पाने की इस इच्छा के साथ यह किसी सत्ता-प्रामाण्य की तलाश करता रहता है, फिर वह चाहे नकारात्मक ढंग से मिले या सकारात्मक ढंग से। जब यह उनकी बातों में प्रामाण्य खोजता है जो कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, तो यह भी इसे ही दोहराने लगता है। अपने उस विश्वास में पूरी तरह संतुष्ट रहता है। फिर, दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जो स्थायित्व की तलाश में यह कहने लगते हैं कि ईश्वर है। अतः मन उस बात से बंध जाता है और यह प्रयास करता है कि इतिहास के, किताबों के, दूसरों के अनुभवों के माध्यम से यह सिद्ध कर सके कि ईश्वर का अस्तित्व है। पर वास्तव में वह यथार्थ या ईश्वर नहीं होता। ईश्वर क्या है इसका पता लगा पाने के लिए यह आवश्यक है कि मन बिलकुल शुरू से ही मुक्त हो। और जब मन सुरक्षा की खोज में है, स्थायित्व की तलाश में है, भय से ग्रस्त है, तब यह मुक्त नहीं है।

18 जनवरी 1954

आनंद

बचपन से ही आपकी परवरिश इस प्रकार की जाती है कि आप कुछ चीज़ों या लोगों की निंदा करना और कुछ की प्रशंसा करना सीख लेते हैं। क्या बड़ों के मुंह से आपने ऐसा कभी नहीं सुना कि 'तुम बहुत शैतान लड़के हो'? वे सोचते हैं कि ऐसा करके उन्होंने समस्या को समाप्त कर दिया। परंतु किसी चीज़ को समझने के लिए सहिष्णुता नहीं, गहन अंतर्दृष्टि और बोध ज़रूरी हैं—सहिष्णुता तो उस मन की तरकीब होती है जो अपने अथवा अन्य लोगों के क्रियाकलापों को जायज़ ठहराना चाहता है—अतः जो आवश्यक हैं, वे हैं समझ, मन की गहराई और व्यापकता।

आज मैं एक ऐसे विषय के बारे में चर्चा करना चाहूंगा जो कुछ कठिन अवश्य है पर मुझे ऐसा लगता है कि उसे समझना ज़रूरी है। हममें से बहुत कम लोग ही किसी चीज़ का लुत्फ उठा पाते हैं। सूर्यास्त या पूर्णिमा के चांद को, किसी सुंदर व्यक्ति अथवा मनमोहक वृक्ष को, आकाश में उड़ती चिड़िया या किसी नृत्य को देखने में हम शायद ही मज़ा ले पाते हों। वास्तव में हम किसी भी चीज़ का आनंद नहीं उठा पाते। हम उस ओर देखते हैं, सतही तौर पर खुश हो लेते हैं, उत्तेजित हो जाते हैं, हममें कोई संवेदन जागता है जिसे हम आनंद कहते हैं। परंतु आनंद कहीं अधिक गहन विषय है जिसे समझना और जिसकी विस्तार से जांच-पड़ताल करना बहुत ज़रूरी है। बचपन में हम कितनी ही बातों का आनंद उत्साहपूर्वक लिया करते हैं—चाहे खेल हो, कपड़े हों, कोई पुस्तक हो, कविता लिखना हो या चित्रकारी करना हो या एक दूसरे के आगे पीछे दौड़ना। लेकिन जैसे-जैसे हम बड़े होने लगते हैं, यह मज़ा पीड़ा, मुसीबत और संघर्ष में बदलने लगता है। जब हम छोटे होते हैं तो रुचिपूर्वक भोजन करते हैं, पर बड़े होते ही हम ऐसा भोजन करने लगते हैं जिसमें बहुत ज्यादा मिर्च-मसाला हो, जो चटपटा हो, और इसलिए स्वाभाविक स्वाद को, उसकी शुद्धता और सूक्ष्मता को हम खो बैठते हैं। छोटी आयु में हम पशु-पक्षियों को, कीड़ों-मकोड़ों आदि को उत्सुकतापूर्वक देखना पसंद करते हैं। परंतु बड़े होते-होते हालांकि हम विभिन्न बातों का आनंद उठाना चाहते तो हैं, पर उसकी क्षमता करीब-करीब खो चुके होते हैं, और हम दूसरे प्रकार की उत्तेजनाओं को अधिक महत्त्व देने लगते हैं, जैसे आवेग, काम-भावना, सत्ता-सुख, पद-प्रतिष्ठा आदि। ये सभी जीवन की स्वाभाविक बातें हैं हालांकि वे सतही होती हैं; न तो उनकी निंदा की जानी चाहिए और न इन्हें उचित ठहराया जाना चाहिए बल्कि उन्हें समझकर उनका यथोचित स्थान उन्हें दिया जाना चाहिए। यदि आप उन्हें तुच्छ, उत्तेजनात्मक, मूर्खतापूर्ण या अध्यात्म-विरोधी कहकर उनकी निंदा करते हैं तो आप जीवन की जीवंतता को

कुंठित कर देते हैं। यह वैसा ही हुआ जैसे मैं कहूं : 'मेरा दायां हाथ भद्दा दिखता है, मैं इसे काटकर फेंक दूंगा।' जीवन तो इन्हीं सब से बना है। हमें प्रत्येक पहलू को बिना उचित-अनुचित ठहराए समझना होगा।

जब हम बड़े होने लगते हैं, जीवन की सारी चीज़ें अर्थहीन प्रतीत होने लगती हैं, हमारे मन शुष्क, असंवेदनशील हो जाते हैं और इसलिए हम आनंद उठाने के लिए प्रयास करने लगते हैं, हम कोशिश करते हैं कि किसी तरह सुंदर चित्रों को देख पाने में हमारा मन रमे, हम वृक्षों को, खेलते हुए छोटे-छोटे बच्चों को देखने की चेष्टा करते हैं। हम किसी धार्मिक ग्रंथ को पढ़ लेते हैं और उसका अर्थ, उसका गूढ़ अभिप्राय और उसका तात्पर्य जानने का प्रयत्न करते हैं। परंतु यह सब कष्ट-साध्य प्रयत्न है, जिसमें संघर्ष ही संघर्ष है।

प्रसन्नता क्या है और चीज़ों का आनंद उठाना क्या है, यह समझना बहुत महत्त्व रखता है। जब आप किसी अत्यंत सुंदर चीज़ को देखते हैं तो आप उस पर अपना अधिकार करना चाहते हैं, आप उसे छोड़ना नहीं चाहते, आप उसे अपना कहना चाहते हैं—जैसे 'यह पेड़ मेरा है', 'यह पक्षी मेरा है', 'मेरा घर', 'मेरा पति', 'मेरी पत्नी' आदि। हम उस पर अपना कब्ज़ा जमाए रखना चाहते हैं, और उसे अपने कब्ज़े में रखने की चेष्टा में ही आपने उससे जो आनंद पाया था वह खो दिया होता है, क्योंकि इस पर अपनी पकड़ बनाए रखने में ही उस पर निर्भरता आ जाती है, इसमें भय होता है, अलगाव होता है, और इसलिए जिस चीज़ से आपको खुशी मिली थी, आंतरिक सौंदर्य प्राप्त हुआ था, वह खो चुकी होती है और जीवन चारों ओर से बंद-सा होता है। आप सोचते हैं कि वह वस्तु आपकी है, अतः उससे प्राप्त हो सकने वाला आनंद धीरे-धीरे आपके लिए स्वामित्व और अधिकार का विषय बन जाता है, जिस पर आप अपना हक समझने लगते हैं। आप किसी कर्मकांड में उसे पाने लगते हैं, किसी पूजा के द्वारा, या संसार में एक विशिष्ट व्यक्ति बनने में; एक के बाद एक नई उत्तेजनाएं और मनोरंजन ढूंढ़ते हुए आप सतही जीवन से ही संतुष्ट हुए रहते हैं। यही है हमारा जीवन, है न? आप एक देवता से ऊब जाते हैं तो किसी अन्य देवता को पाना चाहते हैं। यदि आप अपने गुरु से संतुष्ट नहीं हैं तो दूसरा गुरु ढूंढ़ लेते हैं और उससे अनुरोध करते हैं: 'कृपया मेरा मार्गदर्शन कीजिए'। इस सबमें मूल रूप से आप आनंद ही तलाशते हैं। आप सतही ढंग से जीते रहते हैं, और सोचते हैं कि इससे आप मौज-मस्ती कर पाएंगे।

वास्तविक आनंद को जान पाने के लिए बहुत गहराई तक जाना होता है। आनंद उत्तेजना भर नहीं है। इसके लिए मन का असाधारण परिष्कार किया जाना आवश्यक है, न कि उस 'स्व' का जो स्वयं के लिए अधिक और अधिक की तलाश में लगा रहता है। ऐसा 'स्व'—इस प्रकार के आनंद की अवस्था को कभी नहीं जान सकता जिसमें आनंद उठाने वाला कोई

नहीं होता। इस अद्‌भुत बात को समझ लेना ज़रूरी है, नहीं तो जीवन अत्यंत क्षुद्र, तुच्छ और सतही बनकर रह जाता है—तब जन्म लेना, दो-चार बातें सीख लेना, क्लेश उठाते रहना, संतान उत्पन्न करना, उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना, धन कमाना, थोड़ा-बहुत बौद्धिक मनोरंजन करना, और फिर मर जाना—जीवन यहीं तक सीमित होकर रह जाता है। यह होता है हमारा जीवन। हमारे कपड़ों में, हमारे व्यवहार में और हमारे खान-पान में बहुत थोड़ा सा परिष्कार दिखता है। इस तरह धीरे-धीरे मन अपनी सजीवता खोने लगता है।

इसका बड़ा महत्त्व है कि आप खाते क्या हैं। पर आपको तो स्वाद से मतलब होता है, आप अपने पेट को ढेर सारी अनावश्यक चीज़ों से भर लेते हैं क्योंकि वे चीज़ें आपको बढ़िया स्वाद देती हैं। कृपया ध्यान देकर इन बातों को सुनिये। आप किस ढंग से बातें करते हैं, किस तरह से चलते हैं, आप किस ढंग से लोगों को देखते हैं, यह सब अत्यंत महत्त्वपूर्ण बातें हैं। अपने मन को तलाशें, सजग रहें, अपने हावभावों पर ध्यान दें, अपने द्वारा कहे जाने वाले शब्दों के अर्थ पर ध्यान दें। यदि आप वास्तव में बहुत सचेत हैं, तो मन अत्यंत संवेदनशील, परिष्कृत और सरल हो जाता है। उस सरलता और सूक्ष्मतर समझ के बिना जीवन बहुत कृत्रिम होता है। लेकिन स्व का परिष्कार किसी खूबसूरत दीवार के पीछे बंद हो रहने जैसा है, जिसे चित्रों वगैरह से खूब सजाया गया हो। स्व के इस परिष्कार में कोई आनंद नहीं है, क्योंकि इसमें व्यथा है, इसमें खोने का भय और प्राप्ति की आशा सदैव बने रहते हैं। पर अगर मन स्व के परिष्कृत होने से पार जा सके, 'मैं' का अतिक्रमण कर सके, तो वहां एक सर्वथा अभिनव प्रक्रिया कार्य करने लगती है और उस प्रक्रिया में अनुभवकर्ता के लिए कोई स्थान नहीं होता।

यह सब थोड़ा कठिन अवश्य लग रहा होगा परंतु उसकी चिंता न करें। बस इसे ध्यानपूर्वक सुनें। जब आप बड़े होंगे तो शायद ये शब्द आपको सार्थक प्रतीत होंगे, इनका महत्त्व आप जान पाएंगे, जब आपको जीवन बोझिल लगने लगेगा, जब जीवन कठिन और अंधकारमय लगने लगेगा, जब जीवन में संघर्ष ही संघर्ष रह जाएगा तब शायद इनकी अर्थवत्ता पर आपका ध्यान जाएगा। इसलिए इसे चित्त लगाकर वैसे ही सुनें जैसे आप किसी संगीत को सुनते हैं, जिसे आप पूरी तरह समझते भी नहीं—फिर भी जिसे आप चाव से सुनते हैं।

भले ही हम एक स्तर से दूसरे स्तर पर परिष्कार करते रहें, एक प्रकार की सूक्ष्मता के स्थान पर दूसरे प्रकार की सूक्ष्मता का परिष्कार करने लगें, एक उपभोग को छोड़कर दूसरे उपभोग को महत्त्व देने लगें, परंतु इस सब के केंद्र में तो 'मैं' ही होता है—वह 'मैं' जो कि उपभोग कर रहा होता है, जो कि अधिक खुशी पाना चाहता है, जो खुशी को तलाश रहा होता है, जो खुशी के लिए तरस रहा होता है, वह 'मैं' जो संघर्ष कर रहा होता है, वह

अधिक से अधिक 'परिष्कृत' होता जाता है पर कभी खत्म होना नहीं चाहता है। जब 'मैं' अपने सारे सूक्ष्म रूपों सहित खत्म हो जाता है, केवल तब ही आनंद-विभोरता की वह दशा आती है जिसे खोजा नहीं जा सकता है, वह एक परम-मुग्धता की, वास्तविक आनंद की दशा होती है जिसमें पीड़ा और विकार का नामोनिशान नहीं होता। अभी तो हमारी सारी प्रसन्नता, हमारी सारी खुशी विकारग्रस्त है, इसमें पीड़ा छिपी है, इसमें भय छिपा है।

जब मन 'मैं' के विचार से परे चला जाता है, अनुभवकर्ता से, अवलोकनकर्ता से, विचारकर्ता से परे चला जाता है तब उस आनंद की संभावना होती है जिसे विकार छू तक नहीं सकता। उस आनंद को स्थायी नहीं बनाया जा सकता है, जैसा कि हम सोचते हैं। लेकिन हमारा मन स्थायी सुख खोजता रहता है, एक ऐसा सुख जो टिकाऊ हो, जो सदैव बना रहे। उसके सतत बने रहने की चाह ही विकृति है। परंतु जब मन 'मैं' से मुक्त हो जाता है तो एक ऐसा आनंद क्षण-प्रतिक्षण होता है जो बिना किसी खोज और प्रयास के आप तक स्वतः पहुंच जाता है; तब आनंद को बटोरना, उसको संचित करना, बचा कर रखना, यह सब नहीं रह जाता। यह ऐसी कोई वस्तु नहीं होती जिस पर आप अपना कब्ज़ा जमा सकें। 'मैं कल सुखी था पर अभी नहीं हूं पर उम्मीद है कि कल मैं सुखी हो जाऊंगा'—ऐसा कहने वाला मन तुलना में लगा होता है और उसमें भय हमेशा रहता है। ऐसा मन हमेशा नकल और परित्याग में, पाने और खोने में लगा रहता है, इसलिए यह कभी सच में सुखी नहीं होता।

यदि हम जीवन की प्रक्रिया को बिना उसकी निंदा किए, बिना उसे सही या गलत कहे समझ सकें, तो मुझे लगता है कि एक ऐसे सृजनात्मक आनंद का आगमन होता है जो 'आपका' या 'मेरा' नहीं होता। यदि आप धूप को अपने तक ही समेट कर रखना चाहेंगे तो यह स्वच्छ, उष्ण और जीवनदायिनी सूर्य की रोशनी नहीं रह पाएगी। इसी तरह, यदि आप आनंद इसलिए चाहते हैं क्योंकि आप कष्ट में हैं या किसी प्रिय व्यक्ति से आपका बिछोह हो गया है, या आप जीवन में सफल नहीं हो सके हैं, तो यह एक प्रतिक्रिया मात्र होगा। परंतु यदि हम इससे ऊपर उठ सकें तो एक ऐसा आनंद आपको मिलेगा जो मन की रचना नहीं होगा।

यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बचपन से ही अच्छी अभिरुचियां पनपें, सुंदरता, अच्छा संगीत, अच्छे साहित्य की ओर चित्त का रुझान रहे ताकि मन अत्यंत संवेदनशील हो सके, निकृष्ट या मूढ़ न बने। जीवन की वास्तविक गहनता को समझने के लिए बारीक सूझबूझ की ज़रूरत होती है, और यही वजह है कि जब हम छोटे हैं तभी ये सारी बातें बहुत महत्त्व रखती हैं कि हमें किस तरह से शिक्षित किया जा रहा है, हम क्या खा रहे हैं, क्या पहन रहे हैं, कैसे घरों में रह रहे हैं, आदि। मैं निश्चयपूर्वक आपसे

कहता हूं कि सौंदर्य को समझना और उससे प्रेम करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और उसके बिना वास्तविकता का दर्शन कर पाना संभव नहीं है। पर हम स्कूल जाते हैं, जीवन को जीते हुए हमें बर्बर बना दिया जाता है, हमें अनुशासन में बांधा जाता है और इसे हम शिक्षा कहते हैं, इसे हम जीना कहते हैं।

यह बात बहुत महत्त्व रखती है कि जब हम इस विद्यालय में हैं तो नदी का, हरे-भरे खेतों का और इन वृक्षों का अवलोकन करें; अच्छा भोजन ग्रहण करें पर ऐसा भोजन नहीं जो कुछ ज़्यादा ही स्वादिष्ट हो, जो बहुत मसालेदार हो, और उसे उतना लें जितना आवश्यक हो; और साथ ही बिना स्पर्धा की भावना के खेलों का आनंद उठाएं और अपने कॉलेज को जिताने के उद्देश्य से नहीं बल्कि खेलने के लिए ही खेलें। तब आप देखेंगे कि यदि आप सचमुच अवलोकन कर रहे हैं तो मन अत्यंत सजग, सचेत और एकाग्र हो जाता है और जैसे-जैसे आपका विकास होता है आप जीवन में हर चीज़ का आनंद लेने लगते हैं। परंतु उपभोग के उथले तल पर पर ही जीते रहना और मानवीय क्षमताओं की वास्तविक थाह न लगाना किसी गंदी गली में रहते हुए उसे बार-बार साफ बनाने की कोशिश में लगे रहने जैसा है। यह लगातार गंदी होती रहती है, इस पर हमेशा कचरा इकट्ठा होता रहता है, इसलिए यह हमेशा मलिन रहेगी। परंतु यदि सही शिक्षा के माध्यम से यह जाना जा सके कि विचार कैसे किया जाता है और विचार से परे कैसे जाया जाता है, तो उस स्थिति में एक असाधारण शांति होती है, एक ऐसा आनंद होता है जिसे सतही सुखों में जीता हुआ सतही मन कभी नहीं पा सकता।

भोजन, वस्त्र और स्वच्छता के बारे में मैंने जो कुछ कहा उसे आपने सुना। इससे भी बढ़कर, इससे परे की कुछ बातें पता लगाने का प्रयत्न आप स्वयं करें। इसे देखें कि बहुत मसालेदार और चटपटा भोजन लेने से क्या आप स्वयं को रोक सकते हैं? क्योंकि आखिर अपने युवा काल में ही आप क्रांतिकारी हो सकते हैं, न कि तब जब आप साठ या सत्तर साल के हो जाएं। शायद हममें से इने-गिने लोग तब भी क्रांतिकारी हो सकते हैं, पर एक बड़े तबके के लोग ऐसे नहीं होते। जैसे-जैसे आप बड़े होते हैं आप व्यवस्था में ढल जाते हैं। जब आप युवा होते हैं केवल तभी आपमें क्रांति की, विद्रोह की, असंतोष की यह संभावना होती है।

उस तरह के विद्रोह के लिए आपको पूरे जीवन भर असंतुष्ट रहना होगा। विद्रोह करना अपने आपमें गलत नहीं है। गलत तो यह है कि आप अपने लिए ऐसा सुरक्षित स्थान खोज लें जो आपको संतुष्ट कर दे, जो आपके असंतोष को ठंडा कर दे।

प्रश्न : जब मैं कुछ पढ़ने लगता हूं मेरा मन इधर-उधर भटकने लगता है। मैं एकाग्रता कैसे लाऊं?

कृष्णमूर्ति : क्या आप जानते हैं कि एकाग्रता क्या है? जब आप कोई ऐसा नृत्य देखते हैं जो आपको सचमुच बहुत अच्छा लगता है तो क्या आप एकाग्र होते हैं? कल रात हमने एक नृत्य देखा था। जब आप उसे देख रहे थे, तो क्या आपको इसका ध्यान था कि आप एकाग्र हैं? जब आप किसी ऐसी चीज़ को देखते हैं जिसमें आपकी रुचि है—फिर वह दो सांड़ों की लड़ाई हो या उड़ान भर रहा कोई पक्षी हो या नदी में प्रवाह के विरुद्ध अपने सारे पाल फैलाकर जा रही दो नौकाएं हों—क्या तब आपको ख्याल रह जाता है कि आप एकाग्रचित्त हो रहे हैं?

जब आपका मन किसी चीज़ के प्रति आकर्षण का अनुभव नहीं करता, जब आप ऐसे संगीत को सुनने के लिए स्वयं को बाध्य करते हैं जिसमें आपको वास्तव में बिलकुल आनंद नहीं आ रहा, उस समय आपको यह पता रहता है कि आप उसे सुनने के लिए जानबूझकर प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार के प्रयास को आप एकाग्रता कहते हैं। परंतु यदि आप उसे चावपूर्वक इसलिए सुनते हैं क्योंकि आप वास्तव में उससे आनन्दित हो रहे हैं तो आपका सम्पूर्ण मन, आपका सारा चित्त इसमें तल्लीन हो जाता है। आप यह नहीं कहते, 'अच्छा तो मुझे एकाग्रचित्त होना है'। आप वैसे भी नर्तक से एकात्म हो चुके होते हैं, एक तरह से मानो आप स्वयं ही नृत्य कर रहे होते हैं। परंतु आप देखिए, हम उस तरह से कभी कुछ नहीं देखते, सुनते या पढ़ते हैं, हम किसी भी चीज़ में कभी इतनी एकाग्रता के साथ रुचि नहीं लेते। हम केवल आंशिक रूप से ही रुचि लेते हैं। मन का एक हिस्सा कहता है, 'मैं उस बेहूदा किताब को बिलकुल नहीं पढ़ना चाहता, वह बहुत उबाऊ है', जबकि दूसरा हिस्सा कहता है, 'मुझे परीक्षा पास करने के लिए पढ़ना ही होगा।' जब आपके मन का एक हिस्सा यह कहता है कि आपको किताब का अध्ययन करना ही पड़ेगा, तब दूसरा हिस्सा, जो यह जानता है कि वह किताब भयंकर ऊब भरी है, इधर-उधर भटकने लगता है। इसलिए आप झंझट में पड़ जाते हैं और सोचने लगते हैं, 'मुझे एकाग्रता का अभ्यास करना होगा'।

आपको एकाग्रता का अभ्यास करने की ज़रूरत नहीं है। कृपया ध्यान से सुनें। एकाग्रचित्त होने के लिए स्वयं को बाध्य न करें बल्कि रुचि उत्पन्न करें, जो कार्य आप कर रहे हैं उसे करने के लिए ही उससे प्रेम करें। जब आप चित्रकारी करें तो इसे चित्रकारी से प्रेम की खातिर करें, जब आप नृत्य देखें तो इसका लुत्फ उठाएं, इसे ध्यान से देखें, इसके सौंदर्य को देखें ताकि आपका मन अनेक हिस्सों में न बंटा रहे, ताकि मन अपने आप में समग्र हो, अखंडित हो, और उसकी दृष्टि अनेक अंशों में न बंटी रहे, उस मन की तरह जो यह कहता है, 'मुझे ध्यान से देखना होगा'।

एकाग्रता नहीं बल्कि जो कुछ भी हम कर रहे हैं उससे लगाव ही महत्त्वपूर्ण बात है। जब किसी कार्य से हमारा गहरा जुड़ाव होता है, उसे

करना हमें अच्छा लगता है, तो एक अद्‌भुत ऊर्जा का संचार होता है, एक ऐसी शक्ति का, जो कि अवधान है, जागरूकता है, जिसके बिना आपका सीखना, पढ़ना सब कुछ निरर्थक है। उसके अभाव में आप बस परीक्षाएं पास करते रह जाएंगे व कहीं महिमामंडित क्लर्क बन जाएंगे।

प्रश्न : क्या यह सच है कि चंद्र-ग्रहण हमारे जीवन को प्रभावित करता है? यदि करता है तो ऐसा कैसे होता है?

कृष्णमूर्ति : यदि आप विक्षिप्त हैं, यदि आपके दिमाग में कोई गड़बड़ी है तो यह आपको प्रभावित कर सकता है। परंतु मुझे इसके अलावा ऐसी कोई वजह नज़र नहीं आती कि यह आपको कैसे प्रभावित कर सकता है।

यह प्रश्न अंधविश्वास की समस्या को खोलकर सामने रखता है। आप किसी ऐसे समाज में, उन धार्मिक लोगों के बीच रहते हैं, जो कहते हैं, 'चंद्र-ग्रहण मस्तिष्क को प्रभावित करता है।' उनके पास इस बारे में ढेर सारे सिद्धांत हैं और आप उनके बीच रह कर बड़े हुए हैं। आप जानते ही हैं कि तीर्थयात्री, हज़ारों ऐसे लोग संगम पर एकत्रित होते हैं, और गंगा नदी में स्नान किया करते हैं। जब हजारों लोग किसी एक धारणा से प्रेरित हो कर कोई कार्य कर रहे हों तो आस-पास के लोग भी उस बारे में सोचने लगते हैं। ऐसा होता है न? उस वातावरण में, उस गतिविधि के बीच, बच्चा सब कुछ देखता है और उससे प्रभावित होता है। जब आप बहुत छोटे होते हैं तो आपका मन उस फोटो-फिल्म सा संवेदनशील होता है जो आस-पास के प्रभावों को तत्काल ही ग्रहण कर लेता है। यही वजह है कि आप किस वातावरण में रहते हैं इसका बहुत महत्त्व है। पर हम इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते। इस अराजकता भरे, अंधकारमय, विषाद भरे संसार में हम बहुत सतही स्तर पर जीते रहते हैं। आप बूढ़ों के मुंह से सुनते हैं, 'चंद्र-ग्रहण तुम्हारे जीवन पर असर डालता है', और आप उसे मान लेते हैं। आप इस पर सवाल नहीं उठाते, आप स्वयं खोज कर इसका पता नहीं लगाते।

सीधे-सरल ढंग से चिंतन करना बहुत कठिन होता है क्योंकि मन सरल नहीं होता है, मन कल्पनाएं कर लेता है, यह हर प्रकार के भ्रम पाल लेता है, रहस्य निर्मित कर लेता है और फिर उनके बीच फंस जाता है। जीवन की जटिलता को नकार देने भर से आप 'मेरा मन सरल है' कहने के हकदार नहीं हो जाते। सरल मन कुछ ऐसा नहीं है जिसे आप प्रयास से विकसित कर सकें। जब आप अस्तित्व की जटिलता को समझने लगते हैं तो अनायास ही इसका आगमन हो जाता है।

प्रश्न : हमारे जीवन का क्या उद्‌देश्य है?

कृष्णमूर्ति : जीवन की सार्थकता क्या है? जीवन का क्या उद्‌देश्य है?

आप इस तरह का प्रश्न क्यों पूछते हैं? आप यह प्रश्न तब पूछते हैं जब आपके भीतर अव्यवस्था हो, और आप संशयग्रस्त हों, अनिश्चय से घिरे हों। अनिश्चय की स्थिति में आप निश्चयपूर्ण होना चाहते हैं, आप जीवन में कोई सुनिश्चित लक्ष्य चाहते हैं, एक तय गन्तव्य चाहते हैं, क्योंकि अपने आपमें आप अनिश्चित हैं। आप त्रस्त हैं, दुविधा में हैं, आप नहीं जानते कि आपको क्या करना है। इस दुविधा के कारण, इस व्यथा के कारण, इस संघर्ष के कारण, इन भयों के कारण आप कहते हैं 'जीवन का क्या उद्देश्य है?' आप कोई ऐसी स्थायी चीज़ चाहते हैं जिसको पाने के लिए आप संघर्ष कर सकें और किसी ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आप जो संघर्ष करते हैं वह एक मिथ्या स्पष्टता भी देता है जो कि बस एक तरह की भ्रांति ही है।

जीवन के उद्देश्य का पता लगाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि अपनी भ्रांति और संशय को, अपनी व्यथा और आंसुओं और उससे जुड़ी तमाम दूसरी बातों को समझना जिनमें मनुष्य फंसा हुआ है। हम इस भ्रांति को समझे बिना ही इससे छुटकारा पा लेना चाहते हैं। यथार्थ तो यहां है, कहीं और नहीं। जिसे इसका महत्त्व महसूस हो जाता है वह यह नहीं पूछता कि जीवन का क्या लक्ष्य है। वह भ्रांति को मिटाने के प्रति गंभीर होता है, वह उस दुख के निवारण की चिंता करता है जिसमें वह पड़ा है। जब वह दूर हो जाता है तो वह ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछता। आप यह कभी नहीं पूछते कि 'सूर्य के प्रकाश का क्या मतलब है?' या 'सौंदर्य का क्या मतलब है?' अथवा 'जीते रहने का ही क्या अर्थ है?' जब जीवन व्यथा से भर जाता है, एक अनवरत युद्ध बन जाता है और उस व्यथा से, उस युद्ध से आप जब पलायन करना चाहते हैं तो कहते हैं, 'जीवन का क्या उद्देश्य है मुझे बतलाएं'। तब आप अनेक लोगों के पास यह प्रश्न लेकर जाते हैं, भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक शिक्षकों के पास जाते हैं और यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि जीवन का लक्ष्य क्या है। वे आपको इस बारे में बताते भी हैं परंतु वे भी आप जैसे नासमझ होते हैं। आप ऐसे ही किसी व्यक्ति को अपना गुरु बना लेते हैं जो आप जैसा ही संशयग्रस्त होता है और उससे आपको वह सब प्राप्त हो जाता है जो आप पाना चाहते हैं।

यदि आप भ्रांति को, संघर्ष को, पीड़ा और अपने भीतर गहराई में दबी लालसाओं को समझ लें तो उस समझ के चलते आप कुछ ऐसा देख पाएंगे जिसके बारे में आपको किसी और से पूछने की ज़रूरत ही न होगी।

प्रश्न : हम रोते क्यों हैं?

कृष्णमूर्ति : आप जानते हैं कि आंसू प्रसन्नता के भी होते हैं और पीड़ा के भी होते हैं। प्रसन्नता के आंसू कभी-कभी ही आते हैं। जब आप किसी से प्रेम करते हैं तो आपकी आंखों में आंसू छलक आते हैं। पर ऐसा अक्सर नहीं होता। हमारे साथ ऐसा इसलिए नहीं होता क्योंकि हममें प्रेम होता ही नहीं है। जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं हम और भी गंभीर होने लगते हैं।

असफलता और हताशापूर्ण व्यथा से उत्पन्न होनेवाली गंभीरता से तो हमारा परिचय हो ही जाता है—जिसकी गहराइयों की थाह हमने कभी नहीं लगाई, जिसे भोगा नहीं, जाना नहीं। छोटे बच्चों से लेकर वृद्ध मनुष्यों तक—सभी ने आंसू बहाए हैं। हम जानते हैं कि उन आंसुओं का क्या मतलब है—पीड़ा के आंसुओं का, किसी प्रिय वस्तु या प्रिय व्यक्ति को खो देने के आंसुओं का, सफल न होने के आंसुओं का तथा वैवाहिक जीवन के सुखद न हो पाने के आंसुओं का। हम उन सारी बातों को जानते हैं। परंतु उन सबको समझकर उससे परे जा पाने के लिए बहुत अधिक अंतर्दृष्टि की ज़रूरत होती है।

प्रश्न : अचेतन के संबंध में हमें क्या करना चाहिए?

कृष्णमूर्ति : यह प्रश्न किसी बड़े व्यक्ति ने नहीं बल्कि एक बच्चे ने पूछा है। कोई भी बच्चा अचेतन के बारे में कुछ नहीं जानता। वह तो बस कुछ खेल आदि खेलता है, अपनी पढ़ाई से जुड़े विषयों को पढ़ता है, आसपास के लोगों के साथ शैतानी करता है, भूख, डर आदि महसूस करता है।

आप बच्चे हैं और इस उम्र में आप अभी बहुत कुछ नहीं देख पाएंगे। परंतु यदि आप थोड़ा भी ध्यान दें तो आप पाएंगे कि आपके मन की ऊपरी सतह से नीचे भी अनेक प्रकार की गतिविधियां होती हैं। क्या आपने कभी नदी को देखा है? आपको मालूम है कि नदी की सतह से नीचे, उसके गहरे तलों पर जीवन अद्‌भुत रूप से गतिशील है। एक फ्रांसीसी व्यक्ति जल की गहराई में अत्यंत नीचे तक उतरा और उसने वहां पर जीवन का आश्चर्यजनक रूप देखा, ऐसी मछलियां उसने वहां देखीं जिन्हें मनुष्य ने इससे पहले कभी न देखा था, ऐसे रंग देखे जिनकी कल्पना तक हमें नहीं हो सकती, और ऐसा अंधकार देखा जो अविश्वसनीय था, एक ऐसा अभेद्य सन्नाटा वहां उसने महसूस किया। परंतु हम तो बस उन लहरों को ही जानते हैं जो पानी की सतह पर हलचल मचाती हैं, जल की सतह के प्रवाह को ही हम जान पाते हैं। किंतु यदि हम पानी की गहराई में जाएं—और वहां तक जाने के लिए कुछ विशेष वैज्ञानिक तरीके भी हैं—यदि हम उन तरीकों से वहां पहुंच सकें तो वहां हम कई प्रकार की मछलियां देखेंगे, जीवन के नाना रूप देखेंगे, जल की गहराई में होनेवाली अनोखी घटनाएं देखेंगे।

इसी तरह से, मन की सतह के नीचे क्या है यह देख पाने के लिए, इसकी तरंगों और सतह पर हो रही हलचल के नीचे क्या है यह जान सकने के लिए, आपको मन के भीतर बहुत गहरे तक जा पाने की सामर्थ्य जुटानी होगी। यह जानना बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि मात्र ऊपरी तल पर हो रही सतही हलचल ही मन नहीं है; यह समझना भी ज़रूरी है कि आप केवल परीक्षाएं पास करने के लिए पढ़ाई नहीं कर रहे हैं, आप अपने पहनावे में या पूजा-पाठ में या कुछ और करने में किन्हीं परंपराओं को ही नहीं ढो रहे हैं।

सतही गतिविधियों से नीचे, गहराई तक जा पाने के लिए आपका मन इस योग्य होना चाहिए कि उस गहराई तक कैसे जाया जाता है, यह समझ सके। मेरे विचार से शिक्षा के कार्यों में से यह भी एक है कि मन के ऊपरी स्तर पर जो कुछ हो रहा है, भले ही सुंदर हो या भद्दा, आप केवल उसमें ही न उलझे रहें बल्कि गहरे स्तर तक जा सकें, जैसे कोई गोताखोर विशेष पहनावे का सहारा लेकर बहुत गहरे तलों तक जा पहुंचता है, ताकि उस गहराई में जाकर भी सहजता से सांस ली जा सके और अपनी खोजबीन जारी रखते हुए जीवन की समस्त जटिलताओं को, हदों को, उसके उतार-चढ़ावों को तथा विचारों की विविधता को जान सकें—क्योंकि व्यक्ति अपने आपमें यह सभी कुछ होता है—और फिर उस सबसे परे जा सकें, उस सबका अतिक्रमण कर जाएं।

यदि आप अपने मन की ऊपरी सतह को नहीं जानते हैं तो बहुत गहराई तक नहीं जा सकेंगे। सतह को जानने के लिए गहन निरीक्षण ज़रूरी है; हम कैसे कपड़े पहनते हैं, उन्हें किस ढंग से पहनते हैं, कैसे जनेऊ आदि धारण करते हैं, पूजा-पाठ वगैरह करते हैं, और ऐसा क्यों करते हैं—मन को इस सबका ध्यान से निरीक्षण करना होगा। इसके बाद ही आप गहराई में उतर सकते हैं परंतु गहराई तक पहुंचने के लिए आपके मन का बहुत सरल होना ज़रूरी है। इसीलिए जो मन निष्कर्षों से बंधा होता है, निंदा करने और तुलना करने में लगा रहता है, वह अपनी सतही गतिविधियों के परे कभी नहीं जा पाता।

प्रश्न : हमें अवलोकन कैसे करना चाहिए?

कृष्णमूर्ति : महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आपको कैसे अवलोकन करना चाहिए, बल्कि यह है कि आप वस्तुतः अवलोकन करते कैसे हैं।

आप नहीं जानते कि अवलोकन कैसे किया जाता है। अनेक लोग आपको बता देंगे कि यह कैसे करते हैं, उसे मान लेना तो मूर्खता होगी। आपको स्वयं ही इसका पता लगाना होगा कि सच में आप चीज़ों को कैसे देखते हैं। क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि आप चीज़ों को किस तरह से देखते हैं? आप किसी वृक्ष को किस प्रकार देखते हैं? क्या आप उसे उसकी पूर्णता में देख पाते हैं, या आप उसे उड़ती निगाह से देखकर तुरंत ही कोई नाम दे देते हैं और फिर आगे बढ़ जाते हैं? जैसे ही आप उसे एक नाम दे देते हैं, आपका मन कहीं और जा चुका होता है। जब आप किसी तोते को देखते हैं, तो क्या आपका ध्यान उसकी लाल चोंच पर, उसके पंजों पर और उसकी उड़ान के अजीब तरीके पर जाता है? बस इसे ध्यानपूर्वक देखें भर, और जैसे-जैसे आप ध्यानपूर्वक देखने लगते हैं, आप अवलोकन भी करने लगते हैं, और यह सीख लेते हैं कि अवलोकन कैसे किया जाता है। जिस क्षण आप यह कहते हैं कि यह पक्षी तोता है, उसी क्षण आपका मन अवलोकन से हट कर कहीं और भटक जाता है।

हम किसी भी चीज़ को खुले मन से, समग्र रूप से नहीं देख पाते हैं क्योंकि हमें तुलना किए बिना देखना ही नहीं आता। हम कहते हैं, 'यह पक्षी उस दूसरे पक्षी के जैसा सुंदर नहीं है', 'यह वृक्ष उस वृक्ष की तरह ऊंचा या भव्य नहीं है', और हम इसे एक नाम भी दे डालते हैं। तुलना करने की प्रक्रिया निरंतर चलती ही रहती है। जो वास्तव में अवलोकन करता है, केवल वही मन इस प्रक्रिया से मुक्त रहकर देख पाता है। जब आपसे कहा जाता है कि तुलना से बाहर निकलकर देखें, नाम दिए बिना देखें, तो ऐसा सुनकर आप उस ढंग से देखने की कोशिश करने लग जाते हैं। किंतु उस ढंग से देखने के लिए आप कोई कोशिश न करें। केवल इस पर ध्यान दें कि आप किसी सुंदर वस्तु को कैसे देखते हैं, आप तुलना कैसे करते हैं, आप निष्कर्ष कैसे निकालते हैं। केवल इसका ध्यान रखें कि किस प्रकार आपका मन किसी भी वस्तु को पूरी तरह से देखे बिना ही सदा भटकता रहता है। देख पाने के लिए यह आवश्यक है कि मन निश्चल हो, भटक न रहा हो, कहीं और न हो।

19 जनवरी 1954

आधा-अधूरापन

हमारी एक बहुत बड़ी कठिनाई यह पता लगा सकने की है कि आधा-अधूरापन किन कारणों से बना रहता है। क्या आप जानते हैं कि इस शब्द का क्या अर्थ है? आधा-अधूरा मन वस्तुतः वह मन है जो कि सामर्थ्यहीन है, जो मुक्त नहीं है, जो भयग्रस्त है, जो किसी न किसी समस्या में उलझा हुआ है—यह एक ऐसा मन है जो बस स्वार्थ को ही केंद्र बनाकर उसके चारों ओर, अपनी ही सफलता और असफलता के इर्द-गिर्द, अपने ही दुखों के तात्कालिक समाधानों की तलाश में रहता है, और एक क्षुद्र मन इन दुखों से अनिवार्यतः घिरा ही रहता है। एक औसतपन में जीने वाले मन के लिए विचार करने की विशिष्ट आदतों से, आचरण के तौर तरीकों से छुटकारा पाना और स्वतंत्रतापूर्वक जीना, गतिशील होना, कार्य करना आदि खासी मुश्किल बात होती है? हममें से अधिकांश की सोच बहुत क्षुद्र और संकीर्ण है। आप अपने ही मन को देखें, आपको मालूम होगा कि यह किन-किन बातों में लिप्त रहता है—आपकी अपनी सफलता, लोग आपके बारे में क्या सोचते हैं, आप कैसे किसी से डरे रहते हैं। आप नौकरी ढूंढ़ रहे हैं और जब आपको नौकरी मिल जाती है तो आप एक बेहतर नौकरी तलाशने लगते हैं और यह क्रम जारी रहता है। यदि आप अपने मन पर दृष्टि डालें तो आप पाएंगे कि यह सदैव इसी तरह क्षुद्र, उथली स्व-केंद्रित गतिविधियों में मसरूफ रहता है। इसके इस तरह से व्यस्त रहने से समस्याएं पैदा होने लगती हैं—होती हैं न? अपनी क्षुद्रता के ही माध्यम से यह उन्हें सुलझाने की चेष्टा करता है किंतु ऐसा कर नहीं पाता और उनमें और भी वृद्धि करता रहता है। मुझे लगता है कि शिक्षा का कार्य इस सोच को समाप्त करना है।

औसत दर्जे का मन अर्थात वह मन जो बनारस की संकरी गलियों में इधर-उधर भटकता रहता है और वहीं अटका रहता है, हो सकता है वह पढ़-लिख लेता हो, शायद इसने कुछ परीक्षाएं भी पास कर ली हों, संभव है वह सामाजिक स्तर पर बहुत सक्रिय भी रहता हो किंतु फिर भी वह अपनी ही बनाई छोटी, संकीर्ण गलियों में रहता है। मैं सोचता हूं कि हम सभी के लिए, बड़ों और छोटों के लिए यह देखना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि मन इतना छोटा मामला है कि यह कितने भी प्रयास करे, कितने ही संघर्षों से गुज़रे, उसमें चाहे जो आशाएं, भय या लालसाएं हों, वे सभी छोटी और तुच्छ ही होंगी। हममें से अधिकतर लोगों के लिए यह समझ पाना बहुत कठिन होता है कि इस क्षुद्र मन द्वारा जिन गुरुओं, आध्यात्मिक मार्गदर्शकों, संप्रदायों और धर्मों आदि का निर्माण किया जाता है वे भी अत्यंत क्षुद्र होंगे। सोच के ढर्रे में बदलाव लाना बहुत कठिन कार्य होता है।

हमारी स्कूल की शिक्षा के दौरान हमारे जो शिक्षक, अध्यापक आदि हमें पढ़ाते हैं वे औसतदर्जे की मानसिकता वाले न हों, क्या यह बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है? क्योंकि हमें शिक्षा प्रदान करने वाले यदि स्वयं ही उत्साहहीन हों, थके-हारे हों, छोटी-छोटी बातों को सोचते रहते हों, अपनी ही लघुता में जकड़े हुए हों तो यह बिलकुल स्वाभाविक है कि वे ऐसा वातावरण निर्मित न कर सकेंगे जिसमें छात्र स्वतंत्र महसूस कर सकें और उस परंपरा को तोड़कर ऊपर उठ सकें जिसे समाज द्वारा लोगों पर लाद दिया जाता है। मुझे लगता है कि अपने औसतपने के यथार्थ को जानने में समर्थ हो पाना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हममें से अधिकांश यह स्वीकार नहीं करते कि हम आधे-अधूरे हैं, हम सभी यही सोचते हैं कि अवश्य ही हममें कोई न कोई अद्‌भुत बात भीतर कहीं छिपी हुई है। हमें यह बोध हो जाना चाहिए कि हम औसतपने की मानसिकता लिए हैं तथा उस औसतपने से और अधिक क्षुद्रता आती है, पर फिर भी इसके विपरीत कुछ नहीं करना है। क्योंकि आधे-अधूरेपन के विरुद्ध किया जाने वाला प्रयास भी मूलतः आधे-अधूरेपन का ही द्योतक है। औसतपने से बाहर आने की हर कोशिश क्षुद्र, तुच्छ हुआ करती है।

क्या आप यह सब नहीं समझ पा रहे? खेद की बात है कि मैं सिर्फ अंग्रेज़ी में ही बोल सकता हूं परंतु मुझे उम्मीद है कि इसे समझने में आपके शिक्षक आपकी मदद करेंगे। जब वे इस बारे में आपको समझाएंगे तो वे स्वयं भी अपनी क्षुद्रता के प्रति जागरूक होने लगेंगे। क्षुद्र मन प्रेम नहीं कर सकता, उदार नहीं हो सकता, तुच्छ बातों पर लड़ता-झगड़ता है। भारत में ही नहीं बल्कि सारी दुनिया में चतुर लोगों की, डिग्रीधारियों की, उपाधि प्राप्त या उच्च पद प्राप्त लोगों की नहीं बल्कि आपके और मेरे जैसे आम इनसानों की आवश्यकता है जो अपने मामूलीपन को छिन्न-भिन्न कर पाए हों।

अपने बारे में विचार करते रहना ही मूलतः तुच्छता है। यही बात मन को तुच्छ बनाती है—अपनी सफलता के बारे में, अपने ध्येयों के बारे में, पूर्ण होने की अपनी इच्छाओं के बारे में सतत चिंता में डूबे रहना—यही मन को क्षुद्र बनाता है। क्योंकि 'मैं', स्व, कितना भी विस्मृत हो जाए, उसका बौनापन बना ही रहता है। इसलिए व्यस्त मन सदैव संकीर्ण हुआ करता है, जो सतत किसी सोच में डूबा रहता है, परीक्षाओं के संबंध में चिंताग्रस्त रहता है, नौकरी मिल पाएगी या नहीं, इस चिंता में खोया रहता है, माता-पिता या शिक्षक, गुरु या पड़ोसी उसके बारे में क्या राय रखते हैं इसकी चिंता करता रहता है, ऐसा मन अवश्य ही क्षुद्र होता है। इन कल्पनाओं में डूबा मन सम्मान तो पा सकता है, पर ऐसा सम्मानित मन तुच्छ ही होता है, वह खुशियों भरा नहीं होता।

कृपया यह सब ध्यानपूर्वक सुनें। आप सभी प्रतिष्ठित बनना चाहते हैं, नहीं क्या? आप सभी चाहते हैं कि श्रेष्ठ कार्य करें, दूसरे आपके बारे में अच्छी राय रखें, आपके पिता, या आपके पड़ोसी या आपका समाज आपको अच्छा समझे, और इसके कारण आपमें भय उत्पन्न होता है, ऐसा मन किसी नयी चीज़ के बारे में कभी नहीं सोच सकता। इस पतन की ओर उन्मुख संसार में यदि कुछ आवश्यक है तो वह है ऐसा मन जो सृजनशील हो, जो केवल कुछ ईजाद करने में ही नहीं लगा हो या इस तरह की किसी अन्य योग्यता में ही अटककर न रह गया हो। सृजनशीलता केवल तब संभव होती है जब भय नहीं होता, जब मन स्वयं की समस्याओं में उलझा हुआ न हो। इस सब के लिए ऐसा वातावरण आवश्यक है जहां छात्र वस्तुतः स्वतंत्र हो—स्वेच्छाचारिता के लिए नहीं, बल्कि प्रश्न करने के लिए, जांच-पड़ताल करने के लिए, पता लगाने के लिए, तर्क करने के लिए और तर्क से ऊपर उठ पाने के लिए स्वतंत्र हो। छात्र को ऐसी स्वतंत्रता मिल सके जिसमें वह इस बात का पता लगा सके कि जीवन में वह क्या करना चाहता है ताकि उसे किसी ऐसे कार्य में न धकेला जाए जिसमें उसकी रुचि ही न हो, जिसे वह पसंद न करता हो।

औसतपने में कैद मन कभी विद्रोह नहीं करता, वह सरकार के समक्ष, माता-पिता की अधिसत्ता के सामने झुक जाता है, सब कुछ सहता है। मुझे अफसोस है कि ऐसे देश में, जहां जनसंख्या इतनी अधिक है कि आजीविका पाना खासा मुश्किल हो जाता है, ये सारे दबाव हमें आज्ञापालन करने के लिए, झुकने के लिए बाध्य कर देते हैं और हमारी विद्रोह की भावना, असंतोष की भावना क्रमशः नष्ट हो जाती है। इस तरह के किसी भी स्कूल में छात्रों को यह शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे अपने सारे जीवन भर इतने उग्र असंतोष को अपने भीतर जगाए रखें जिसे सचमुच कोई संतुष्ट नहीं कर सके। जब असंतोष को संतुष्टि का, परितृप्त होने का कोई रास्ता नहीं मिल पाता, तो यह अन्वेषण में प्रवृत्त होता है, और सच्चे अर्थ में प्रज्ञावान हो जाता है।

अतएव शिक्षा एक अत्यंत जटिल चीज़ है, यह केवल कुछ कक्षाएं पढ़ लेना और परीक्षाएं उत्तीर्ण करना तथा नौकरी पा लेना भर नहीं होता। शिक्षा एक जीवंत प्रक्रिया है, जीवन के तमाम पहलुओं की अनवरत खोज है, और शिक्षक की इस सबके लिए तैयारी नहीं है। इसीलिए यह ज़रूरी है कि उन्हें भी शिक्षित किया जाए ताकि वे बच्चों को शिक्षित कर सकें। आप ये सारी परीक्षाएं देते हैं, नौकरियां प्राप्त कर लेते हैं और फिर आप क्या करते हैं? आप विवाह कर लेते हैं, माता-पिता बन जाते हैं, आप चिंताग्रस्त होने लगते हैं, आपके पास पैसे नहीं होते और आप औसत मानसिकता वाले असंख्य लोगों के बीच कहीं गुम हो जाते हैं। प्रायः यही हुआ करता है। किसी भी विश्वविद्यालय की शिक्षा पाने, परीक्षाएं पास करने के पश्चात न

जाने कहां खो जाते हैं, वे विद्रोह नहीं करते और वे कोई नया समाज नहीं बनाते, वे नयी वैचारिकता का निर्माण नहीं करते और न पुराने ढांचे को ध्वस्त करने के लिए कोई प्रयत्न करते हैं। बल्कि इसके स्थान पर वे भी औसत कोटि के हो जाते हैं, परिष्कार-शून्य हो जाते हैं। मेरे विचार में राजघाट स्थित इस स्कूल का कार्य यह होना चाहिए कि इस औसतपने को ध्वस्त करे ताकि जब आप यहां से जाएं तो एक बिलकुल भिन्न मनुष्य बनकर, एक सृजनशील मनुष्य बनकर यहां से निकलें जो एक नये संसार की रचना करे। आप देख सकते हैं कि इसके लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षकों में, बड़ों में, अभिभावकों में, अत्यंत गहरी समझ हो, अपार स्नेह हो। और यदि इस प्रकार का स्कूल यह नहीं कर सकता तो उसे बने रहने की कोई ज़रूरत नहीं है। यह हम सभी के लिए, छात्रों के लिए, शिक्षकों के लिए, अभिभावकों के लिए, जो भी यहां आता है उसके लिए, अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि इस बात को समझें और ऐसी परिस्थितियां निर्मित करें जिनमें क्षुद्र, तुच्छ, परिष्कार-शून्य मन इस प्रकार से रूपांतरित हो सके कि वह उस सृजनशील भावना से ओतप्रोत, निर्भय होकर रह सके। ऐसा करने के लिए हममें गहन स्नेह और समझ का होना आवश्यक है।

प्रश्न : हम लड़के-लड़कियां एक-दूसरे से शर्माते क्यों हैं?

कृष्णमूर्ति : आप एक-दूसरे से क्यों शर्माते हैं? क्या आपने कभी दो चिड़ियों का जोड़ा देखा है जिनमें से एक नर और दूसरी मादा चिड़िया होती है, खिड़की की चौखट पर बैठी दोनों आपस में चहचहाते हुए बातें करती हैं? वे एक दूसरे से कुछ अलग तरह की हुआ करती हैं, हैं न? नर चिड़िया का सीना काला होता है जबकि मादा का सीना वैसा नहीं होता। उनमें से एक थोड़ी शर्मीली होती है जबकि दूसरी कुछ आक्रामक होती है, वह आक्रमण करती है। क्या आपने उनको कभी ध्यान से नहीं देखा? इसी प्रकार यह समझना आसान है कि शारीरिक बनावट की दृष्टि से एक लड़के और लड़की में कुछ भिन्नता हुआ करती है। लड़कियों का शरीर कुछ अलग बनावट का होता है, उनकी क्षमताएं कुछ भिन्न तरह की होती हैं। प्रायः लड़कियां अधिक संवेदनशील, अधिक संकोचशील होती हैं जबकि लड़के सामान्यतः शायद कुछ लापरवाह होते हैं। शारीरिक रचना की दृष्टि से लड़की का शरीर लड़के के शरीर से अलग तरह का बना होता है। इस सबके मूल में एक विशिष्ट समस्या है अर्थात काम-भावना की समस्या, जो कि प्रकृति की व्यवस्था के अंतर्गत बच्चों के जन्म के लिए आवश्यक होती है। हमें इस बारे में कोई कुछ नहीं बताता और इससे जुड़ी दूसरी बातों के बारे में भी कोई कुछ नहीं बताता। हम इस सब से अनजान, जंगलीपन की रौ में बड़े होते चले जाते हैं और यही वजह है कि हम शर्मीले होते हैं।

दूसरी ओर, भारतीय समाज भी पुरुषों, स्त्रियों व छोटे बच्चों को अलग-अलग श्रेणियों में बांटे रखता है। पुराने लोगों की इस बारे में अनेक

मान्यताएं हैं कि क्या उचित है और क्या अनुचित है—जैसे, स्त्री को घर की चारदीवारी में बंद रखा जाना चाहिए, स्त्री का स्थान नीचा है, वह उपेक्षा के ही लायक है, उससे बस कोई न कोई कार्य लेते रहना चाहिए, उसे रसोई का कार्य करना चाहिए, उसे बस बच्चे पैदा करने चाहिए। इसलिए लड़कियां भयग्रस्त रहते हुए बड़ी होती हैं, आशंकित रहती हैं, घबराहट एवं असमंजस में जीते हुए बड़ी होती हैं और इसके फलस्वरूप सृजनशील व्यक्ति बनने के बजाय बस एक बेजान, काम से लदी औरत बनकर रह जाती हैं। आपके पास कोई मनोरंजन नहीं होता, आप चित्रकारी नहीं करतीं, चिंतन नहीं करतीं, हो सकता है आप कुछ परीक्षाएं पास कर लें पर उनका आपके लिए कोई उपयोग नहीं होता। आप भी औरों की तरह एक साधारण नारी बन जाती हैं और यही स्थिति लड़कों की भी है।

आज की शिक्षा मनुष्यों से बर्ताव करने का सर्वाधिक विनाशकारी तरीका है। हमें इसके बारे में कोई मदद नहीं दी जाती कि हम जीवन को समझ सकें, जीवन से प्रेम कर सकें, अस्तित्व के असीम सौंदर्य को, उसके ऐश्वर्य को देख सकें। मृत्यु के बारे में और जीवन की जीवंतता के बारे में भी जान सकें। हमें वह सब नहीं बतलाया जाता। हमें बस 'यह करो' और 'यह मत करो' इतना ही कहा जाता है। आपको निर्दयतापूर्वक व हिंसक ढंग से मारा-पीटा जाता है, डांटा-फटकारा जाता है, धमकाया जाता है। इसलिए जब आप छोटे होते हैं तब, और बड़े हो जाने के बाद भी झिझक महसूस करते रहते हैं। इस समूची समस्या को कभी समझा ही नहीं जाता क्योंकि उसे समझने में भय छिपा होता है। क्या शिक्षक का यह कार्य नहीं है कि इस बारे में छात्र को समझाए, आपको यह सब बतलाए, ताकि एक छात्र के रूप में आप इन कठिनाइयों को, इन बारीकियों को, इन सब बातों में निहित गहन समस्याओं को समझ सकें, और केवल तभी आप निर्भय हो सकेंगे।

प्रश्न : क्या यह सही है कि मनुष्य के मरने के पश्चात ही उसका यश फैलता है?

कृष्णमूर्ति : क्या आपको लगता है कि एक ग्रामीण की मृत्यु के उपरांत उसका यश फैलता है?

एक श्रोता : कोई महान व्यक्ति जब मर जाता है तो उसकी ख्याति चारों ओर फैलती है और उसका सम्मान होता है।

कृष्णमूर्ति : महान मनुष्य किसे कहते हैं? आइए इस सवाल के यथार्थ का पता लगाएं। क्या वह ऐसा मनुष्य होता है जो प्रसिद्धि पाना चाहता है? क्या वह ऐसा मनुष्य होता है जो अपने आपको अत्यधिक गौरव देता है? क्या वह कोई ऐसा मनुष्य होता है जो अपने देश से अपनी पहचान जोड़ लेता है और नेता बन जाता है? यदि वह ऐसा करता है तो जीवित रहते हुए

ही उसकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी होती है। हम सभी यही तो चाहते हैं, हम सब ऐसे ही महापुरुष बनना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि जुलूस का नेतृत्व आप ही करें, आप गवर्नर बनना चाहते हैं, आप एक महान आदर्श-पुरुष बनना चाहते हैं, एक ऐसे महापुरुष बनना चाहते हैं जो भारत का पुनर्निर्माण करे। चूंकि आप ऐसा करना चाहते हैं अतः संभव है कि आप जुलूस का नेतृत्व अपने हाथों में ले लें। परंतु क्या यही महानता है? क्या आपका प्रचार होना, अखबारों में आपका नाम प्रकाशित होना, लोगों पर आपका वर्चस्व होना, चूंकि आपमें इच्छाशक्ति की दृढ़ता है या आपका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है, अथवा आपके ख्यालों में कोई अद्‌भुत सनक है, क्या इससे आप महान हो जाते हैं? महानता निश्चित ही इस सबसे भिन्न बात होती है।

अनाम रहना महानता है, अज्ञातप्राय रहना महानतम चीज़ है। महान पूजागृह, महान शिल्प, जीवन की समस्त श्रेष्ठ चीज़ें अनाम रहनी चाहिए। सत्य की तरह वे किसी खास व्यक्ति की नहीं हुआ करतीं। सत्य आपका अथवा मेरा नहीं होता, यह पूर्णतः निर्वैयक्तिक और अज्ञात होता है। यदि आप कहते हैं कि आपने सत्य पा लिया है तो आप अनाम नहीं रह जाते, आप अपने आप को सत्य से भी अधिक महत्त्व प्रदान कर रहे होते हैं। परंतु जो वस्तुतः अनाम है वह हो सकता है कभी महान न माना जाए, क्योंकि उसे महान होने की इच्छा तक नहीं होती—लौकिक अर्थों में और आंतरिक तल पर भी, क्योंकि वह अकिंचन होता है, वह कुछ होता ही नहीं। न तो उसके अनुयायी होते हैं और न स्मारक होता है, वह अपना बखान नहीं करता। परंतु दुर्भाग्यवश हममें से अधिकतर लोग अपनी प्रशंसा स्वयं ही करते हैं, हम महान होना चाहते हैं, हम चाहते हैं कि सब लोग हमें जानें, हम सफल होना चाहते हैं। सफलता से प्रसिद्धि तो मिल सकती है परंतु प्रसिद्धि एक थोथी चीज़ होती है, होती है न? यह राख की तरह होती है। हर राजनीतिज्ञ को लोग अच्छी तरह जानने लगते हैं, क्योंकि उसका धंधा ही यह होता है कि लोग उसे जानें, अतः वह वास्तव में महान नहीं होता। महानता है अज्ञात हो रहना, भीतर बाहर से कुछ-न हो जाना, और उसके लिए अत्यंत प्रखरता, गहन समझ तथा गहरी प्रीति का होना ज़रूरी है।

प्रश्न : किसी का आदर करने में भय छिपा होता है। फिर हम किसी का आदर क्यों करते हैं?

कृष्णमूर्ति : यह समझना तो आसान है। यदि आप भय के कारण किसी का आदर करते हैं तो आप अवश्य ही उस व्यक्ति से कुछ चाह रहे होते हैं, है न? इसलिए वस्तुतः आप उसका आदर तो बिलकुल नहीं करते। आप केवल उससे कुछ पाना भर चाहते हैं। इसलिए आप बहुत झुक जाते हैं, उसके चरण स्पर्श करते हैं और उसके गले में पुष्पहार पहनाते हैं। वह

आदर करना नहीं होता, आदर करना तो इससे नितांत भिन्न बात होती है। किसी का आदर करने का अर्थ है उससे स्नेह-संबंध होना, न कि उसका डर। जब आप एक ऐसे व्यक्ति का आदर करते हैं जिससे आपको कुछ प्राप्त होने की आशा होती है तो आप अपने अधीनस्थ लोगों की उपेक्षा भी अवश्य करेंगे, दूसरे लोगों को तुच्छ समझेंगे। और जिस मनुष्य के मन में दूसरों के प्रति उपेक्षा की भावना हो वह भय से मुक्त कैसे हो सकता है, क्या ऐसा संभव है?

क्या यह संभव नहीं है कि दूसरों से हमें क्या प्राप्त हो सकता है इसका विचार किए बिना हमारे भीतर ऐसी प्रीति हो, जो हर व्यक्ति के प्रति आदर के रूप में प्रकट हो सके? इस बात पर ध्यान दीजिए कि आप किसी कुली से, किसी मजदूर से, अपने छात्रावास के किसी कर्मचारी से किस ढंग से व्यवहार करते हैं और यह भी देखिए कि अपने छात्रावास के अधीक्षक से, प्राचार्य से या फाउंडेशन के सदस्य से आपका व्यवहार किस प्रकार का हुआ करता है—जैसे-जैसे पैमाना ऊपर चढ़ता है आपका व्यवहार भी तदनुरूप बदलता जाता है। जब कुली आपके कमरे में आता है तो आप उठकर खड़े तक नहीं होते हैं परंतु जैसे ही आपके शिक्षक का आगमन होता है आप उछलकर खड़े हो जाते हैं और शिक्षक भी आपसे यही उम्मीद करता है कि आप तत्काल उसके सम्मान में उठ खड़े हों, क्योंकि वह भी सोचता है कि आपको उसके प्रति सम्मान प्रकट करना चाहिए। परंतु वह आपसे यह आग्रह नहीं करता कि आप छात्रावास के कर्मचारी से भी इतने ही आदरपूर्वक पेश आएं और उससे भी नम्रतापूर्वक और मृदु स्वरों में बात करें।

क्या अभी, जब आप बच्चे ही हैं तब ही यह जान लेना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आप अधिकार प्राप्त लोगों के गुलाम न बनें, ताकि आपके मन में सभी लोगों के प्रति सच्चा स्नेह और आदर हो, जिसे आप किसी कर्मचारी के प्रति, और जिसे आप अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देते हैं उसके प्रति भी, समान रूप से प्रकट कर सकें? परंतु जब तक आपमें भय है और स्नेह का अभाव है तब तक आप किसी से तो घृणा करेंगे और किसी अन्य का तथाकथित रूप से आदर करेंगे।

प्रश्न : बड़ा भाई छोटी बहन को और छोटी बहन अपने से छोटे भाई को क्यों मारते हैं?

कृष्णमूर्ति : यह एक बहुत अच्छा प्रश्न है। क्या आपने कभी मुर्गी के चूज़ों को देखा है कि कैसे उनमें से अधिक ताकतवर, कमजोर को चोंच मारता है और कमजोर चूज़ा और कमजोर को? परंतु आप तो कुछ देखते ही नहीं, जबकि आपके चारों ओर जीवन ही जीवन फैला हुआ है। आप देखते ही नहीं, आप अवलोकन ही नहीं करते—न तो आपके शिक्षक, और न आप! जीवन इस तरह का है। जानवरों में, अधिक ताकतवर कमजोर

को मिटा डालता है। और ऐसा ही हम अपने मनुष्यों के समाज में भी करते हैं। शक्तिशाली सीना तानकर खड़ा हो जाता है और हर किसी को मारता है, और कमजोर, अपने से निर्बल पर अपना गुस्सा निकालता है।

आप पूछते हैं कि हम ऐसा क्यों करते हैं। इसका सीधा सा कारण यही है कि हम ऐसा करना चाहते हैं। यदि किसी बड़े व्यक्ति ने हमारी पिटाई की हो तो हम अपने से छोटे किसी व्यक्ति से इसका बदला चुका लेते हैं। आप जानते हैं कि दूसरों को पीड़ा पहुंचाने की प्रवृत्ति हममें बहुत प्रबल होती है। हम लोगों को चोट पहुंचाना चाहते हैं। लोगों को चोट पहुंचाने में, उन्हें कठोर शब्द कहने में, उन्हें अपशब्द कहने में, उनकी बेइज़्ज़ती करने में हमें मज़ा आता है। हम दूसरों के बारे में कभी सौजन्यतापूर्वक बात नहीं करते। हम उनकी अच्छाइयों की चर्चा नहीं करते, बल्कि उनका मखौल उड़ाते हैं। बड़ी बहन, छोटी बहन को क्यों मारती है आदि बातों की बजाय इस चीज़ को समझा जाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। हो सकता है बड़ी बहन को माता अथवा पिता ने मारा हो, इसलिए इसका बदला वह किसी और से लेना चाह रही हो। वह अपने से छोटे को पीटती है और छोटा और भी छोटे बच्चों को पीटकर अपना गुस्सा निकालता है।

क्रूरता को, शत्रुता को समझना और यह सब उत्पन्न न होने देना अधिकांश लोगों के लिए आसान नहीं होता। हम इन सब बातों पर कभी सोचते तक नहीं। हमारे विद्यालयों में क्रूरता के इन कृत्यों की ओर हमारा ध्यान कभी नहीं खींचा जाता, क्योंकि शिक्षक इन बातों को स्वयं ही नहीं देख पाता है। उसकी अपनी समस्याएं होती हैं, उसे कक्षा में पढ़ाना होता है, और छात्रों को परीक्षाओं के लिए तैयार कराना होता है। कृपया अपने आस-पास हो रही विभिन्न घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखिए—मुर्गी के चूज़े आपस में कैसे झगड़ते हैं, एक ताकतवर बुलडॉग कैसे हर किसी पर हावी होता है। आप पाएंगे कि दूसरों पर वर्चस्व स्थापित करने की, क्रोध की, घृणा और शत्रुता की प्रवृत्ति हम सभी में हुआ करती है। इसे दूर करने के लिए इसके प्रति सजग रहना ही पर्याप्त होता है, इसे उचित या अनुचित कहने से हम इसे दूर नहीं कर सकते।

प्रश्न : स्वतंत्रता क्या है?

कृष्णमूर्ति : मैं कह नहीं सकता कि स्वतंत्रता क्या है इसे जानने में आपकी वस्तुतः रुचि है भी या नहीं। क्या हममें से कोई भी यह जानता है कि स्वतंत्रता क्या है? हमें तो बस इतना ही पता है कि हमें कुछ न कुछ करना पड़ता है, परिस्थितियों के दबाव में या अपने ही भयों से हम कुछ करने के लिए विवश होते हैं और हम चाहते हैं कि हमें इन सबसे छुटकारा मिल जाए। नियंत्रण से, बाध्यता से, भय से या ऐसी ही किसी बात से पलायन को हम स्वतंत्रता कहते हैं। कृपया ध्यान से सुनें।

पाबंदियों से, बाधाओं से, बाध्यताओं से छुटकारा पा लेना स्वतंत्रता नहीं होता। स्वतंत्रता तो बस स्वतंत्रता होती है, किसी स्थिति से पलायन को स्वतंत्रता नहीं कह सकते। कृपया इसे समझें। किसी कारण से जेल में बंद व्यक्ति यही चाहता है कि किसी तरह से वह भाग पाए और स्वतंत्र हो जाए। वह वहां से भागने का ही विचार करता है। यदि मैं ईर्ष्यालु हूं तो मुझमें यही भावना उठती है कि यदि मैं ईर्ष्या करना छोड़ पाऊं तो मैं स्वतंत्र हो जाऊंगा। परंतु ईर्ष्या पर विजय पाना स्वतंत्रता नहीं है, ईर्ष्या से पलायन, ईर्ष्या का दमन वस्तुतः उसी भाव की एक और अभिव्यक्ति भर होती है। किसी वस्तु या कार्य से बिना किसी अन्य प्रयोजन के किया जानेवाला प्रेम स्वतंत्रता है। जब आप इसलिए चित्रकारी करते हैं क्योंकि आपको चित्रकारी करने से लगाव है, और इसलिए नहीं कि इससे आपको ख्याति या पद प्राप्त होगा, तो यह स्वतंत्रता है। यदि आपको इस स्कूल में चित्रकारी करना अच्छा लगता है—जब आपको चित्रकारी करने से लगाव होता है तो वह लगाव ही स्वतंत्रता है, और इसके लिए यह आवश्यक है कि मन के सारे तौर-तरीकों के बारे में आपकी समझ अद्‌भुत रूप से गहरी हो। किसी भी कार्य को उसकी अपनी खातिर ही करना अवश्य ही बहुत सरल है, न कि इसलिए कि उससे क्या प्राप्त होगा, दंड या पुरस्कार। किसी भी कार्य को करने मात्र से ही प्रेम होना स्वतंत्रता का आरंभ है।

क्या आप अपनी कक्षा में नियत अध्ययन अवधि में दस मिनट के लिए समय निकालकर इन सब बातों पर चर्चा करते हैं। या पीरियड शुरू होते ही भूगोल, गणित, अंग्रेजी और दूसरे विषयों की पढ़ाई करने लगते हैं? क्या होता है कक्षा में? कुछ दूसरे निरर्थक कार्यों में जो आपको जरा भी अच्छे नहीं लगते, पर चूंकि उन्हें किया जाना ज़रूरी होता है, इसलिए आप उन्हें करते हैं—उन चीज़ों में समय व्यर्थ करने की अपेक्षा यह अधिक उचित होगा कि आप इसके लिए दस मिनट दें, आप ऐसा क्यों नहीं करते? अपनी कक्षा में अध्यापक से इन बातों पर चर्चा करने के लिए आप थोड़ा समय क्यों नहीं निकालते? जीवन में आगे जाकर यह काम आएगा, हालांकि यह ज़रूरी नहीं है कि इससे आपको महान बनने में, ख्याति प्राप्त करने में या सफल होने में सहायता मिले ही। यदि आप प्रतिदिन दस मिनट विवेकपूर्ण, निर्भयता से इन विषयों पर बातचीत करते हैं तो इससे आपको सारे जीवन भर मदद मिलेगी क्योंकि इससे आप चिंतन करना सीखेंगे और रट्टू तोते की तरह केवल दोहराते न रहेंगे। इसलिए, अपने शिक्षकों से अवश्य कहें कि बातों पर आपसे वे चर्चा करें। तब आप देखेंगे कि आपको शिक्षा देनेवाले और आप स्वयं भी अधिक मेधावी होने लगे हैं।

प्रश्न : क्या प्रकृति अपनी स्व-आश्रितता से मुक्त हो सकती है? यदि आश्रित होने का तात्पर्य भयग्रस्त होना है तो क्या कभी यह संभव होगा कि प्रकृति पर अपनी निर्भरता से हम मुक्त हो पाएं?

कृष्णमूर्ति : जब हम बहुत छोटे होते हैं, जब हम शिशु होते हैं तो हम किसी पर आश्रित होते हैं, दूध के लिए हम अपनी माता पर आश्रित होते हैं, हमें सुरक्षा की आवश्यकता होती है, यह ज़रूरी होता है कि कोई हमारी देखभाल करे, हमारा ध्यान रखे। एक बच्चे के लिए, प्रत्येक पक्षी के लिए, हर पशु के लिए यह अपरिहार्यतः आवश्यक होता है। इस स्थान पर आपने कुत्तों के बच्चों को देखा होगा, उन सबकी रक्षा उनकी माता करती है। यह एक प्राकृतिक व्यवस्था है। किंतु जब हम बड़े हो जाते हैं यदि तब भी प्रसन्नता के लिए, आराम के लिए, मार्गदर्शन के लिए, सुरक्षा आदि के लिए हम किसी अन्य पर आश्रित रहते हैं, तब उस निर्भरता से भय का जन्म होता है। निर्भरता हमें बुद्धिहीन, असंवेदनशील तथा भयभीत बनाती है। हां, रेलवे या पोस्ट ऑफिस आदि पर हम तब भी निर्भर करते हैं। वह निर्भरता वास्तव में निर्भरता नहीं बल्कि कामकाज का एक हिस्सा है जिसमें हम सहभागी होते हैं। परंतु मैं उस निर्भरता के बारे में कह रहा हूं जो आंतरिक होती है, भीतरी होती है। यह आंतरिक निर्भरता ही भय उत्पन्न करती है, यह हमारे मन को आच्छादित कर लेती है और उसे निष्प्राण, जड़ और असंवेदनशील बना देती है।

चूंकि हम अपने भीतर एकदम खोखले होते हैं इसलिए निर्भर रहते हैं, क्योंकि हममें स्वयं में तो कुछ होता नहीं, कहीं कोई बीज तक नहीं होता जो खिल सके। परंतु हमें इन सारी बातों का कुछ पता नहीं होता और क्या आपको नहीं लगता कि शिक्षा का काम ही है कि मानवीय अस्तित्व के सारे आंतरिक एवं बाह्य निहितार्थों का खुलासा करे? हमारा जीवन सिर्फ उतना ही नहीं है जैसा कि बाहर से प्रतीत होता है, वह तो बहुत सतही है। हममें और भी कई गहराइयां छिपी हैं। इन सबको समझने के लिए, इनका रहस्य बूझने के लिए और इनसे पार जा सकने के लिए शिक्षा का उपयोग है—है न?

20 जनवरी 1954

शांति

एक सुहावनी सुबह! क्या आपने नीले आकाश को देखा? यह कितना पारदर्शी, निर्मल और नीरव है! क्या आज सुबह आपने नदी को देखा? कोई लहर तक नहीं थी, और भोर में आपने सूरज को देखा होगा, वह कितना शांत था। केवल नदी के आस-पास रहने वाले ही नहीं बल्कि हम सभी इसे चाहेंगे—इस अनूठी शांति को और जब यह हमारे पास होती है तब हमें यह पता तक नहीं चलता कि यह हमारे पास है। इसकी सबसे विचित्र बात यही तो है। उस गांव में रहनेवाले मछुआरे भी इसे नहीं जानते। प्रकृति के सान्निध्य का समस्त सौंदर्य, वह मौन, प्रकृति के साथ एकांत में होने का आनंद उनके पास होता तो है किंतु उन्हें इससे संतोष नहीं होता क्योंकि वे भूख से पीड़ित होते हैं। जीने के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ता है इसलिए इस सारी असाधारण सुंदरता और निःस्तब्धता के बावजूद भी यह जद्दोजहद जारी रहती है। उन्हें अधिक पैसे की ज़रूरत होती है—उनके बच्चे बीमार हैं, उनकी स्त्रियां, उनके पति या माताएं मर रही हैं, और इसलिए इस प्रगाढ़ शांति के बावजूद भी वहां बहुत अशांति है। हममें से अधिकांश लोगों की स्थिति ऐसी ही है।

जब हम बच्चे होते हैं तो शांति, सौंदर्य, निःस्तब्धता से हमें कोई मतलब नहीं होता, हम तो बस खुश रहना, खेलना-कूदना और मौज करना चाहते हैं। फिर, जब हम बड़े हो जाते हैं तो अनेक चीज़ें चाहने लगते हैं, हम सुखी होना चाहते हैं, हम सद्गुणी होना चाहते हैं, हम संतान चाहते हैं, अच्छी नौकरी पाने के लिए हम प्रतिस्पर्धा करते हैं, हम कोई ऐसा पद पाना चाहते हैं, जहां हमारे हाथों में अधिक ताकत हो। परंतु अंदर ही अंदर हमारी मंशा यह होती है कि हमें कोई छेड़े नहीं, हमें कोई परेशान न करे। हम बंधी-बंधाई लीक पर ही चलना चाहते हैं, और इस तरह हम आसान सोच के आदी हो जाते हैं, सुविधाओं में, आरामदेह नौकरी में पहुंचकर वहीं ठहर जाते हैं। इसलिए हममें से अधिकांश जैसे-जैसे बड़े होते हैं, अपनी ही दुनिया में रहना चाहते हैं। हम यह नहीं चाहते कि कोई हमारे आराम में खलल डाले और छेड़े जाने से बचे रहने को ही हम शांति कहते हैं। हममें से अधिकांश के लिए यही शांति है—खुले आकाश की तरह, जिसमें बदली न हो। परंतु खुले प्रतीत होनेवाले आकाश की गहराइयों में अनेक चीज़ें घटती रहती हैं, पर्यावरण में अनेक गतिविधियां सतत चलती रहती हैं, जिन्हें हम देख नहीं सकते। जिसे हम देख पाते हैं वह बहुत उथला होता है, केवल सतह पर हो रहा होता है। हम जिस तरह की नीरवता चाहते हैं वह सतही खामोशी होती है, एक आसान ज़िंदगी और उसे ही हम शांति कह देते हैं। परंतु शांति इतनी आसानी से नहीं मिलती। शांति को हम केवल तब ही

समझ सकते हैं जब हमने उस बड़े उपद्रव को समझ लिया हो, उस असंतोष को जिसमें हममें से हर कोई फंसा हुआ है, जब मन विचार की सुविधाजनक लीक से मुक्त हो चुका होता है, जब वह आचरण के पूर्व-निश्चित तरीकों पर चलने के लिए बाध्य नहीं है, और जब हम वास्तव में अशांत हैं। पर हम इस सबसे बचते रहते हैं।

हम अशांत होना नहीं चाहते, हम चाहते हैं कि सब कुछ जैसा है वैसा ही चलता रहे। यदि आप को एक सुविधाजनक पद मिल गया है, यदि आपके पास एक अच्छा मकान या कार है, तो आप कोई खलल नहीं चाहते, आप चाहते हैं कि उस स्थिति में कोई बदलाव न हो। परंतु आपके चारों ओर, आपके बाहर और भीतर भी अनेक गतिविधियां तो सदैव चलती ही रहती हैं। सामाजिक स्तर पर व्यवधान होने पर आप प्रतिक्रियावादी या संरक्षणवादी हो जाते हैं तथा यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं। आप किसी भी प्रकार के बदलाव से निरंतर बचते रहते हैं और सदा उन पुराने अच्छे दिनों की ओर जाने का यत्न करते हैं जब सब कुछ ठीक-ठाक था। जब हम किशोर होते हैं, जब हम अशांत होते हैं, हम सवाल करते हैं, हम जिज्ञासु होते हैं, हम बहुत कुछ जान लेना चाहते हैं। पर जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हम चाहते हैं कि कोई हमें परेशान न करे, हम नहीं चाहते कि प्रश्नों के उत्तर हम खुद खोजें। हमारा धर्म हमें महज़ तसल्ली देता है, यह हमें एक तरह की शांति देता है, दिल को चैन पहुंचाता है, हममें यह आस जगाता है कि 'अगले जन्म में हमारी हालत बेहतर होगी'। यथास्थिति को हम स्वीकार कर लेते हैं। जब हम शांति की चर्चा करते हैं तो हममें से अधिकांश के लिए यह एक ऐसी अवस्था है जहां हमें किसी भी तरह का व्यवधान न पहुंच सके। उस शांति की कल्पना हम इस रूप में करते हैं, उसका ध्यान इस भावना से करते हैं कि उस अवस्था में किसी भी प्रकार की कोई परेशानी नहीं होगी, जहां कोई क्रांति नहीं होगी, कोई मौलिक बदलाव न होगा। इस तरह हमारे मन निस्तेज, प्रमादग्रस्त, मृत हो जाते हैं, और जिसे हम शांति कहते हैं वह मात्र मृत्यु होती है।

परंतु मुझे लगता है कि इससे अलग किस्म की भी एक शांति होती है, एक ऐसी शांति जिसे समझना बहुत कठिन है, एक ऐसी शांति जो प्रतिक्रिया नहीं होती, जो अंतर्द्वंद्व का विपरीत भर नहीं है। क्या आप समझ रहे हैं कि मैं किस बारे में कह रहा हूं?—मैं उस शांति के बारे में कह रहा हूं जिसमें अंतर्द्वंद्व नहीं होता। अभी तो हम विपरीतताओं को ही जानते हैं, उस प्रक्रिया को, जिसके दो रूप होते हैं—मैं कल सुखी था और आज दुखी हूं, और कल मैं पुनः उस सुख को पाना चाहूंगा। कार्यरत रहते हुए, संघर्षरत रहते हुए हम इन विपरीतों को जारी रहने देते हैं, और जब कोई क्षण ऐसा आता है जिसे हम दुख के विपरीत सुख की तरह ग्रहण करते हैं, तो हम उसी क्षण में टिके रहना चाहते हैं। उस अवस्था में टिके रहने को हम

शांति कहते हैं, सुख कहते हैं, स्थायी सुरक्षा कहते हैं। हम सिर्फ इतना ही जानते हैं, और हमेशा यही पूछते रहते हैं, 'मैं उस अवस्था में फिर कैसे पहुंच सकूंगा जहां मैं सुखी था, जिसमें मैं सुरक्षित था?' पर मुझे नहीं लगता कि वह अवस्था शांति है।

शांति कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो अंतर्द्वंद्व का विपरीत होती हो। यह संघर्ष का, पीड़ा का, क्लेशों का, विषाद का परिणाम नहीं होती। और यदि होती हो तो वह शांति कदापि नहीं हो सकती—उस स्थिति में यह बस, जो है उसकी ही एक विपरीत प्रतिक्रिया भर होती है। यह थोड़ा कठिन तो है, इसलिए कृपया अपने शिक्षकों से इस बारे में पूछिए क्योंकि इसे समझना अतिशय महत्त्वपूर्ण है। शांति, स्वतंत्रता की तरह होती है। स्वतंत्रता का अर्थ है किसी चीज़ से सिर्फ उसकी ख़ातिर ही प्रेम करना, ऐसी स्वतंत्रता गुलामी का विपरीत नहीं है। किसी चीज़ में गहरी दिलचस्पी इसलिए नहीं होती ताकि उससे आपको पद, प्रतिष्ठा, धन, शोहरत, प्रसिद्धि या और भी जो आप चाहें वह मिले। कार्य करना ही कार्य का प्रयोजन होता है, अन्य कोई हेतु इसमें नहीं होता, असफल होने का या दंड का भय नहीं होता, और न सफलता की आशा की जाती है। इसी तरह, जिसे शांति कहा जाता है वह द्वंद्व का, व्यवधान का, क्रांति का विपरीत नहीं होती।

इस शांति को, जो किसी चीज़ की विपरीत नहीं है, समझने के लिए हमें मन के द्वंद्वों को समझना होगा। उद्विग्न हो जाने पर मन शांत होना चाहता है, यह चाहता है इसे अकेला छोड़ दिया जाय, इसे परेशान न किया जाय। इसलिए यह एक काल्पनिक आश्रय खोज लेता है, कोई विश्वास, कोई शरण खोज लेता है जिसे यह 'शांति' कहता है। परंतु वह शांति नहीं बल्कि इसकी एक प्रतिक्रिया होती है, 'इस' से 'उस' तक पलायन की गतिविधि ही होती है। परंतु जीवन आपको अलग-थलग नहीं रहने देता। जीवन बहुत उथल-पुथल भरा है—इसमें गरीब लोगों का, संपन्न लोगों का, पीठ पर भारी बोझ लादे कष्ट से पीड़ित ऊंट का, राजनीतिज्ञों का, क्रांतियों का, युद्धों का, लड़ाइयों का, कटुता का, विषाद का—सबका स्थान है, खुशी और अंधकारमय छायाओं के लिए भी इसमें जगह है। यह सारा जीवन अत्यंत परेशानियों से भरा है, और चूंकि इसे हम समझ नहीं पाते हैं इसलिए हम इससे कहीं दूर भाग जाना चाहते हैं, हम नदी के किनारे जाकर बैठ जाते हैं अपनी आंखें बंद कर लेते हैं और किसी ऐसी चीज़ के बारे में सोचने लगते हैं जिसे हम शांति कहते हैं। हमारी यह चेष्टा पलायन होती है, प्रतिक्रिया होती है, अशांति की स्थिति के विपरीत एक गतिविधि होती है। किंतु यदि हम जीवन की इन सारी परेशानियों को—खुशी को, विषाद को, संघर्षों को, ईर्ष्याओं और द्वेषों को समझ सकें—यदि हम इस सबको समझ सकें और इससे पलायन न करें, *जो है* उसकी निंदा न करते हुए उसे देखें भर, *जो है* उसे समझें भर, तो उस देखने की गतिविधि से ही एक ऐसी

शांति अस्तित्व में आती है जो किसी का विपरीत नहीं होती। उस शांति में अतिशय गहराई होती है, एक ऐसी भिन्न गतिविधि होती है जो सृजनशीलता है, जो कि ईश्वर है, सत्य है। परंतु जब तक आप इन परेशानियों को नहीं समझ लेते तब तक इस तक नहीं पहुंच सकते। इन परेशानियों को समझने के पश्चात उनसे जुड़े असंतोषों को, अनवरत उठते प्रश्नों को, चिंताओं और व्याकुलता को समझ लेने पर मन अत्यंत निर्मल हो जाता है। शांति मन से पृथक अस्तित्व नहीं रखती, पर यह तब प्रकट होती है जब सारी कठिनाइयों को समझ लिया जाता है। कठिनाइयों को समझने के लिए यह ज़रूरी होता है कि उनकी निंदा न की जाए, उनकी परस्पर तुलना न की जाए। 'मैं अधिक दुखी हूं, आप कम दुखी हैं', ऐसा कहना ठीक नहीं है। दुख तो आखिर दुख ही होता है, न तो मैं कम और आप अधिक दुख भोगते हैं, न मैं अधिक और आप कम। यदि दुख को हम तुलना की दृष्टि से न देखें तो दुख क्या होता है हम समझ पाएंगे। उस समझ के आते ही मन अत्यंत सरल, बहुत स्पष्ट, बहुत निर्दोष-निश्छल हो जाता है और यह निश्छलता ही शांति है। वह मन जो अनुभव की प्रक्रिया से गुजरता है—उस अनुभव को समझता है किंतु उसे संचित नहीं करता, ऐसा मन निश्छल-निष्कपट होता है और शांति क्या है इसे जानता है।

हालांकि किसी छोटे से छात्र के लिए यह सब समझ पाना थोड़ा कठिन तो ज़रूर है परंतु फिर भी आपको इन सभी चीज़ों के बारे में जानना चाहिए क्योंकि इस स्थान से जाने के बाद आप ऐसे संसार में प्रवेश करने वाले हैं जहां भीषण प्रतिस्पर्धा है, जहां हर मनुष्य सिर्फ अपनी ही चिंता करता है—अपने ही परिवार, अपने ही देश, अपने ही ईश्वर की चिंता करता है। यदि इस प्रक्रिया को हम नहीं समझते हैं तो हम इसमें फंसकर रह जाएंगे, हमारे समाज की परिस्थितियों का प्रवाह हमें अपने साथ बहा ले जाएगा। जब हम छोटे होते हैं तब ही स्वयं को इतनी सहजता-सरलता से शिक्षित कर लें कि जीवन के संग्राम को समझ सकें। परंतु कठिनाई यह है कि अपने पूरे दिन को हम ऐसी गतिविधियों में बिता देते हैं जिनका विशेष महत्त्व नहीं होता। क्या आपने कभी ध्यान दिया है कि एक छात्र की तरह आप अपना दिन कैसे व्यतीत करते हैं? अधिकांश समय तो कक्षा में बीत जाता है, कुछ घंटे खेलने में, फिर थककर आप सो जाते हैं, फिर उठते हैं और फिर वही ढर्रा शुरू हो जाता है। इन सब बातों पर चर्चा करने के लिए, जो वास्तव में बहुत महत्त्व की हैं, हम दिन भर में एक घंटा तो क्या दस मिनट का समय भी नहीं व्यतीत करते हैं। न तो शिक्षक और न ही शिक्षा प्राप्त करने वाले इन सारी बातों पर बातचीत के लिए समय निकालते हैं, वे इसकी सच्चाई का पता लगाने और जीवन को बेहतर कैसे बनाया जा सकता है इस पर विचार-विमर्श के लिए, ज़रा भी समय नहीं देते। जबकि ऐसा करना परीक्षा पास करने से अधिक महत्त्व रखता है। दुनिया भर में हजारों लोग अनेक परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लेते हैं किंतु वे परिपक्व नहीं हो

पाते। जीवन अध्ययन की एक अनवरत प्रक्रिया है, समझने की एक सतत प्रक्रिया है। समझने का अंत कभी नहीं होता, 'मैंने सारी परीक्षाएं पास कर ली हैं, अब मैं अपनी सारी किताबें फेंक दूंगा और अब मैं जीवन के लिए तैयार हूं'—ऐसा आप कभी नहीं कह सकते। किंतु हम सब प्रायः यही करते हैं। परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लेने के बाद हम फिर कभी पुस्तकों को हाथ तक नहीं लगाते।

यदि हम सही ढंग से पढ़ सकें तो हमें बताने के लिए किताबों के पास बहुत कुछ होता है। किंतु एक चीज़ ऐसी भी है जो किताबों से अधिक गूढ़ है—और वह है हम स्वयं। अपने आपमें हम जो कुछ हैं उसे ठीक से कैसे पढ़ा जाय यदि इसे हम जान लें तो हम अपने ही भीतर असीम ऐश्वर्य पा सकते हैं। तब आपके लिए किसी पुस्तक का पढ़ना ज़रूरी न रह जाएगा। परंतु इसके लिए किसी पुस्तक को पढ़ने के बजाय कहीं अधिक योग्यता की ज़रूरत होती है। आप जो हैं उसे आप पढ़ पाएं इसमें आपकी मदद कोई नहीं करता, आप खुद भी कभी यह प्रयास नहीं करते कि इसे समझने के लिए प्रतिदिन थोड़ा समय दें, बल्कि आप तो इससे ऊब जाते हैं। जब वास्तविक चीज़ों का जिक्र किया जाता है तो आप मानो थक जाते हैं। हममें से अधिकांश किसी भी किस्म का व्यवधान नहीं चाहते, ऊपरी तौर पर हमें नौकरी या व्यवसाय आदि की व्यस्तता होती है, हम शिक्षक या इसी तरह के अन्य किसी पेशे में व्यस्त होते हैं और उसी में समय बिता देते हैं, जीवन का सौंदर्य तो हमसे बहुत दूर से ही निकल जाता है।

प्रश्न : संसार में रहते हुए हम प्रगति कैसे कर सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : समाज में कोई विशिष्ट व्यक्ति होना या सफलता की सीढ़ियां चढ़ते चले जाना ही क्या संसार में रहकर प्रगति करने का प्रमुख पैमाना है? हम इस संसार में प्रगति करना क्यों चाहते हैं? हम अधिक चतुर, अधिक विद्वान, या अधिक शक्तिशाली होना क्यों चाहते हैं? अधिक धनवान होना या बड़ा मकान होना ही हमारी दृष्टि में प्रगति का सूचक होता है और इसलिए हम सभी और अधिक की प्राप्ति करना चाहते हैं। हम सभी ऊंचे ही ऊंचे चढ़ना चाहते हैं और सिर्फ इस संसार में ही नहीं बल्कि अपने अंतर्मन के स्तर पर, आध्यात्मिक रूप से भी हम ऐसा चाहते हैं। इस सत्य को हमें देखना होगा कि यह तथाकथित प्रगति जो चाहे बाहरी स्तर की हो या आंतरिक हो, मौन एवं शांति नहीं लाती बल्कि केवल युद्धों की ओर, विनाश की ओर, बड़ी से बड़ी विपत्तियों की ओर ही ले जाती है। हम अपने आपको, अपने अस्तित्व के तौर-तरीकों को नहीं समझते और इसलिए हम इस प्रगति से मोहित हैं—हवाई जहाज की प्रगति, आधुनिकतम कारें और आविष्कारकों द्वारा आविष्कृत अद्‌भुत वस्तुएं हमें इसीलिए आकर्षित करती हैं। यद्यपि इन सबका भी अपना महत्त्व होता है लेकिन जब तक हम

अपने आपको पूरी तरह से बदल नहीं लेते तब तक हम इन चीज़ों का प्रयोग करते हुए विध्वंस और क्लेश ही पैदा करेंगे।

प्रश्न : आप अपनी प्रत्येक वार्ता में हमसे कहते हैं कि हम प्रतिदिन सुबह कम-से-कम दस मिनट तक शिक्षकों से विभिन्न बातों पर चर्चा किया करें किंतु हमारे बहुत से शिक्षक इन सभाओं में नहीं आते हैं। तो उनसे चर्चा करने के लिए हम क्या करें?

कृष्णमूर्ति : यदि उनमें से ज्यादातर यहां नहीं भी आते हैं तो जो आते हैं उनसे आप अनुरोध कर सकते हैं। जब आपकी कक्षा लगती है तो वहां कोई न कोई शिक्षक तो होंगे ही। आप उनसे क्यों नहीं कहते? आप उनसे ऐसा क्यों नहीं कहते, 'हमारी पढ़ाई शुरू हो इससे पहले कृपया सुबह की सभा में जो कुछ कहा गया उस पर चर्चा कीजिए।' किंतु मुझे लग रहा है कि प्रश्न थोड़ा और जटिल है। क्योंकि कक्षा में पढ़ाई शुरू हो इससे पहले किन्हीं बातों पर चर्चा करने के आपके अनुरोध से आपके शिक्षक नाराज़ हो जाते होंगे—ऐसा ही होता है न? वे इस तरह के प्रश्न पूछा जाना पसंद नहीं करते क्योंकि इन विषयों के बारे में शायद वे भी अधिक कुछ नहीं समझते। और वे यह महसूस करना भी नापसंद करते हैं कि वे नहीं समझ पाते। वे शिक्षक हैं, आप जानते हैं कि वे बड़े हैं और आप तो बस विद्यार्थी हैं। अतः वे चाहते हैं कि आप विद्यार्थी की ही हैसियत से रहें। और आप यह सच्चाई कि वे नहीं जानते हैं, उन पर प्रकट करके उन्हें लज्जित करने की ढिठाई करना चाहते हैं। इसलिए चर्चा न हो पाने के लिए आप और आपके शिक्षक दोनों ही ज़िम्मेदार हैं। क्या ऐसा नहीं है?

मैं समझता हूं कि शिक्षकों के साथ-साथ छात्रों के लिए भी यह महत्त्वपूर्ण है कि इन वार्ताओं को सुनें और मिलजुलकर इस पर विचार-विमर्श करें। मैं जीवन के बारे में बोल रहा हूं, यह कोई सनक नहीं है या विश्वास, धर्म अथवा संप्रदाय की बात नहीं है। यह जीवन के बारे में है, और यदि शिक्षक इसे नहीं समझते तो इसे समझने में छात्रों की मदद वे नहीं कर सकते हैं। यदि छात्र उनसे इस पर चर्चा करना चाहते हैं तो इसमें नाराज़ अथवा क्षुब्ध या विचलित होने की क्या वजह है? यदि वे सोच-विचार करेंगे तो वे भी समस्याओं को देख पाएंगे, और उन पर चर्चा करने का मौका उन्हें प्राप्त हो सकेगा। परंतु खेद की बात है कि हमारे अधिकांश शिक्षकों की इस सबमें दिलचस्पी नहीं है। उनकी अपनी समस्याएं हैं, उनकी नौकरियां हैं, वे समाज में एक सुविधापूर्ण स्थान पा चुके हैं, और वे चाहते हैं कि आप उन्हें तंग न करें। नौजवानों का मन, छात्रों का मन जिज्ञासु होता है, वह पता लगाना चाहता है, जांच-पड़ताल करना चाहता है, शिक्षक को शांत नहीं बैठने देना चाहता है। और इसलिए आप बड़े लोगों को चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है उस पर ध्यान दें, क्योंकि नयी पीढ़ी को आगे लाने की ज़िम्मेदारी आपके ही हाथों में है। यदि आप लोगों की इन सब बातों में रुचि

नहीं है तो आप अपने जैसी ही एक और अभिशप्त पीढ़ी तैयार कर लेंगे। यदि आप अपने बच्चों को अपने ढंग की शिक्षा देने का आग्रह रखते हैं तो आप इस धरती के लिए एक अभिशाप हैं। पुरानी पीढ़ी जिस सांचे में ढली है उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जिस पर गौरव किया जा सके। यह बात सचमुच महत्त्वपूर्ण है कि पुराने लोग, शिक्षकगण इस सबके बारे में खोजबीन करें।

प्रश्न : आत्मविश्वास किसे कहते हैं और मनुष्य में यह कैसे जाग्रत होता है?

कृष्णमूर्ति : आप बगीचे में एक गड्ढा खोदते हैं, उसमें खाद डालते हैं, पानी डालते हैं और फिर एक पौधा लगाकर उसे बढ़ता हुआ देखते हैं। आपको महसूस होता है कि आप कम-से-कम यह काम तो अवश्य कर सकते हैं, है न? अतः आप एक और गड्ढा खोदते हैं, एक पौधा और लगाते हैं और महसूस करते हैं कि आप भी बहुत कुछ कर सकते हैं, उससे आपमें एक विश्वास आता है, उसी प्रकार विश्वास आता है जैसे एक के बाद एक परीक्षाएं उत्तीर्ण करने से आया करता है। कुछ कर सकने के सामर्थ्य से, पौधे लगाने, कार चलाने, किताब लिखने, परीक्षाएं पास करने आदि से आपमें स्वयं पर एक भरोसा आने लगता है, आता है न? जब आप बिना प्रयत्न किए ही कोई कविता रच लेते हैं तो प्रायः आपके मुंह से निकलता है, 'अरे वाह, यह करना तो मेरे लिए बहुत आसान है।' इससे आपमें विश्वास की भावना जागती है। परंतु आगे जाकर क्या होता है? वही विश्वास आत्म-गौरव का रूप ले लिया करता है, 'मैं बहुत सी चीज़ें करने में सक्षम हूं।' इसलिए जब आप अपनी क्षमताओं को उपयोग में लाते हैं तो आपमें आत्म-गौरव आने लगता है। तात्पर्य यह कि मैं मंच पर खड़ा होकर अच्छी तरह से भाषण दे सकता हूं—जो कि मेरी एकमात्र क्षमता है, तो मैं मंच का इस्तेमाल अपना महत्त्व बढ़ाने के लिए करने लगता हूं, अपने आपको विस्तार देने के लिए करने लगता हूं। या मान लीजिए, मुझमें नृत्य करने की क्षमता है, और उसके माध्यम से मुझे बहुत आत्म-गौरव महसूस होता है क्योंकि इस प्रकार अपनी क्षमता का इस्तेमाल मैं एक ऐसे साधन के रूप में करने लगता हूं जो मेरे भीतर सूक्ष्म रूप में मौजूद स्वार्थ भावना को पुष्ट कर सके।

होना तो यह चाहिए कि स्व को शक्तिशाली बनाए बिना ही चीज़ों को कर पाने की क्षमता हममें विकसित हो। आप समझ पा रहे हैं न? जब आप कोई कविता लिखें या कोई पौधा लगाएं तो ऐसा न कहें, 'मैंने कविता लिखी, मैंने पौधा लगाया।' इसे देख सकने के लिए, और छोटी-से-छोटी या बड़ी-से-बड़ी क्षमता का इस्तेमाल भी स्व-विस्तार के लिए, अपना महत्त्व बढ़ाने हेतु न करने के लिए बहुत अधिक प्रज्ञा की ज़रूरत होती है।

प्रश्न : जब कोई लड़का बड़ा हो जाता है तो उसके मन में सेक्स के बारे में उत्सुकता जाग्रत होने लगती है। ऐसा क्यों होता है?

कृष्णमूर्ति : यह नैसर्गिक बात है। पेड़-पौधे कैसे बढ़ते हैं—क्या यह जानने के लिए आप उत्सुक नहीं होते? क्या आपने गायों के साथ उनके बछड़े नहीं देखे हैं? जीवन की हर चीज़ विस्मयजनक है। एक नन्हा सा पौधा कैसे पैदा होता है, बढ़कर एक वृक्ष बन जाता है और फिर फल देता है—क्या आश्चर्यचकित नहीं कर देता? कृपया ध्यान देकर सुनें।

हम इस रुचि का प्रयोग जीवन की हर दिशा में खोजबीन के लिए नहीं करते। आप समझ रहे हैं? आप कभी यह खोजने का प्रयत्न नहीं करते कि कोई वृक्ष बढ़ता क्यों है, पक्षी उड़ता क्यों है। आप कभी पक्षी की सुंदरता को और वृक्ष की छायाओं को नहीं देखते। आप कभी बगीचे में जाकर गड्ढा नहीं खोदते, आप वहां कोई पौधा या झाड़ी नहीं लगाते, आप कभी किसी फूल को अपने भीतर तक महसूस नहीं करते, आप अपने हाथों से कभी कोई चीज़ निर्मित नहीं करते। चूंकि इन सारी चीज़ों में आपकी सृजनात्मक रुचि नहीं हुआ करती, इसलिए आप उस एकमात्र चीज़ में रुचि लेने लगते हैं जिसे सेक्स कहा जाता है, परंतु यदि आप इन विविध चीज़ों में रुचि ले सकें तो वह भी जीवन का एक अंग हो जाता है, वह भी एक नैसर्गिक चीज़ होता है। यह प्रकृति का एक तरीका है जिससे वह बच्चों की उत्पत्ति करती है, इसमें गलत कुछ नहीं है, परंतु वह हमारी आदत बन जाए यह ठीक नहीं है, हमारा मन पूरी तरह उसमें ही केंद्रित होकर न रह जाए, जैसा कि हममें से अधिकतर लोगों का मन होता है।

जब हम छोटे होते हैं तब यदि हमने फूलों में, नदियों में, मछलियों में या अपने हाथों से कुछ बनाने में रुचि न ली हो तब सेक्स अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यदि चित्रकारी करने में, संगीत में, कोई वाद्य-यंत्र बजाने में, कविता लिखने में, खेलने में, सही ढंग का खाना खाने में, ठीक तरह के कपड़े पहनने में हम रुचि लेते हैं, यदि संध्या और भोर के आकाश को देखने में, पेड़-पौधों के सौंदर्य को देखने में हमें रुचि है, और हमारा मन उस सबका आनंद ले सकता है, जो कि शिक्षा का अंग ही है—और इस प्रकार सृजनात्मक रूप से आनंद उठा सकता है, तब सेक्स कोई भद्दी समस्या नहीं बनती। पर चूंकि हमें इन सब चीज़ों को सृजनात्मक तरीके से देखने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता इसलिए सेक्स हमारे लिए भयंकर दुःस्वप्न बन जाता है।

मुझे पूरी आशा है कि यहां उपस्थित बड़े लोग भी सुन रहे हैं। क्योंकि अंततः शिक्षा यही है कि छात्रों को पौधे रोपना और उनकी देखभाल करना सिखाएं, उन्हें अपने हाथों से कुछ बनाने का मौका दें, उन्हें गायों को दुहने दें, उन्हें सैर करने जाने के लिए प्रोत्साहित करें—वे बस हमेशा खेलते ही न रहें। वृक्षों-वनस्पतियों को देखना, चिड़ियों को, आसमान को देखना शिक्षा

है, मन को सृजनात्मक रूप से विस्तीर्ण करना शिक्षा है। कुछ मूर्खतापूर्ण और नीरस परीक्षाएं पास करते चले जाना शिक्षा नहीं है।

प्रश्न : जब हम लड़कियों को देखते हैं तो उन्हें प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। हम ऐसा क्यों करते हैं?

कृष्णमूर्ति : मैंने इस प्रश्न का उत्तर दिया था। विपरीत सेक्स की ओर, किसी लड़के या लड़की की ओर आपका आकर्षित होना एक स्वाभाविक बात है; न तो इसमें लज्जा की बात है और न इसकी निंदा की जानी चाहिए। जब आप किसी वृक्ष को देखते हैं तो क्या आप उसकी ओर आकर्षित नहीं होते? जब आप किसी सुंदर पक्षी को, उस उड़ान भर रहे नीले और आकर्षक पक्षी को, उस किंगफिशर को देखते हैं तो क्या आप खुश नहीं होते? शायद आप न होते हों क्योंकि आप कभी इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं देते। कल रात मेघ गरज रहे थे, बिजलियां चमक रही थीं, और वर्षा हो रही थी। आपने उसे नहीं देखा होगा, कि देखा था? आपने कभी अपने चेहरे पर वर्षा की बूंदों को महसूस नहीं किया है। वर्षा से बचने के लिए लोग किस तरह इधर-उधर भागते हैं, सड़कें किस तरह धुलकर साफ-सुथरी हो जाती हैं और पत्तियां कैसे चमक उठती हैं—यह सब भी तो हमें लुभाता है।

दुर्भाग्य से आप सभी लोग, चाहे लड़कियां हों या लड़के या बड़े लोग हों, उस एक चीज़ के अलावा जीवन की अन्य हर चीज़ के प्रति असंवेदनशील होते हैं, और आगे चलकर वह समस्या आपके लिए भीषण रूप धारण कर लेती है, एक ऐसी समस्या बन जाती है जिससे आप संघर्ष करते रहते हैं। हमें अपने आसपास की हर चीज़ के प्रति संवेदनशील होना होगा, उन निरीह बैलों के प्रति जो दिन-प्रतिदिन भारी गाड़ियों को खींचा करते हैं—देखिए वे कितने क्षीणकाय हैं और उनके गाड़ीवान कितने थके-थके से हैं—गरीब, बीमार और भूखे पेट। इन सबके प्रति सजग होना शिक्षा का अंग है। यदि आप इन सब बातों के प्रति संवेदनशील हैं तो आप दूसरों को प्रभावित करने की चेष्टा नहीं करेंगे।

सौंदर्यबोध की क्षमता केवल संवेदनशील मनों और हृदयों में ही हुआ करती है। सतही आकर्षण, क्षणिक उत्तेजना हालांकि शुरू में सुखद लगती है पर यह पूर्ण संतुष्टि नहीं देती, अतः इसमें पीड़ा भी होती है। परंतु यदि मन जीवन की सभी चीज़ों को देख सके, जीवन की समस्त गूढ़ताओं और श्रेष्ठताओं को, इसकी सारी विशिष्टताओं को देख सके, यदि मन उनके प्रति संवेदनशील हो सके तब किसी लड़के और लड़की के बीच का आकर्षण भी अपनी सही जगह खोज लेता है, परंतु इन सबके अभाव में यह एक अत्यंत तुच्छ, छिछला विषय बन जाता है।

प्रश्न : हम अपने भीतर यह भावना कैसे जगाएं कि शारीरिक कार्य करना भी महत्त्वपूर्ण है?

कृष्णमूर्ति : हम कैसे महसूस करें कि शारीरिक श्रम महत्त्वपूर्ण है? महोदय, जब आपको अपने लिए ऐसे कई कार्य स्वयं ही करने होते हैं तो यह प्रश्न आपके सामने नहीं होता। यह प्रश्न तब ही उठता है जब आपके स्थान पर कोई और व्यक्ति फर्श की सफाई कर रहा हो। जब आपको रोज, हर दिन ही, अपनी व्यक्तिगत ज़रूरतों के सारे काम खुद ही करने पड़ते हों तब आप यह प्रश्न नहीं पूछते हैं। मिट्टी खोदनेवाला, हल चलानेवाला ग्रामीण कभी यह नहीं कहता कि मैं शारीरिक श्रम का महत्त्व कैसे समझूं। उसे तो यह सब करना ही पड़ता है। परंतु हम इतने किस्मतवाले हैं कि हमें अपने हाथों से कोई काम नहीं करना पड़ता। हम उच्च मध्य-वर्ग के लोगों ने अपने आपको सारे शारीरिक श्रमों से मुक्त कर लिया है, क्योंकि हमारे पास थोड़ा-बहुत पैसा है, और शताब्दियों से हमारी यही परंपरा रही है कि शिक्षित वर्ग के लोगों, ब्राह्मणों, ऊंची जातियों के लोगों को शारीरिक श्रम से, उन निकृष्ट समझे जाने वाले कार्यों से मुक्त रखा जाए जिन्हें दूसरे लोग कर सकते हैं। यदि आप अमेरिका में रहते हैं तो आपको सभी काम, फर्श धोना, कपड़े धोना, भोजन तैयार करना, बर्तन साफ करना आदि अपने ही हाथों से करना होता है क्योंकि वहां इन कामों को करने वाले नौकर नहीं होते हैं। वहां पर केवल अत्यंत धनी लोग ही नौकरों को रख सकते हैं। और उन्हें भी नौकर न कहकर सहायक कहा जाता है, और उनके साथ मनुष्य समझकर व्यवहार किया जाता है। किंतु इस देश में जनसंख्या इतनी अधिक है कि एक नौकरी पाने के लिए हजारों उम्मीदवार होते हैं। यदि आपके पास थोड़ा-बहुत पैसा है तो आप निकृष्ट समझे जाने वाले कार्यों को करने के लिए कोई नौकर रख लेते हैं, और धीरे-धीरे अपने हाथों से किये जानेवाले सभी कार्यों से खुद को मुक्त कर लेते हैं। यदि आप यह समझते हैं, और यदि आप यह भी देख पाते हैं कि अपने हाथों से काम करने का भी अपना महत्त्व है, तो फिर आप स्वाभाविक रूप से स्वयं ही अपने कुछ काम करना चाहेंगे। तथाकथित शिक्षित लोग, चाहे वे क्लर्क हों या उच्च अधिकारी, लकीर के फकीर, संकीर्ण और क्षुद्र मानसिकता वाले होते हैं।

वे लोग जो मिट्टी को छूना तक पसंद नहीं करते, जो फूलों की देखभाल नहीं कर सकते, नहीं जानते कि वे क्या खो रहे हैं। यदि आप सचमुच बगीचे में जाकर ज़मीन खोदें, उसमें पौधे लगाएं और देखें कि वे कैसे बढ़ते हैं, यदि आप गायों को दुहें, मुर्गियों और चूज़ों की देखभाल करें, तो आपके भीतर कुछ नया घटित होगा, आपको एक अद्‌भुत संपन्नता का एहसास होगा। मिट्टी से जिनका संपर्क नहीं होता वे बहुत कुछ खो देते हैं। आप अपना बगीचा लगाइए, कोई पौधा खुद लगाइए, यह सब कीजिए,

उसकी देखरेख करिए तो आप अनुभव करेंगे कि आपके भीतर क्या कुछ हो रहा है। यह आपको विश्रांति की अनुभूति देगा, आपमें सौंदर्य की भावना जगाएगा, धरती के प्रति, धरती के भीतर जी रहे छोटे-छोटे कीड़ों-पकौड़ों के प्रति आपमें स्नेह उत्पन्न करेगा। किंतु दुर्भाग्यवश हम उस भावना से अछूते हैं, और हमें यह भी पता नहीं है कि शांतिपूर्वक बैठना और किसी चीज़ को ठीक से निहारना क्या होता है। हमें अपनी इन आंतरिक समृद्धियों के बारे में कुछ भी पता नहीं होता और चूंकि हम उन्हें नहीं जानते इसीलिए सतही, क्षणिक सुखों के पीछे भागते हैं।

प्रश्न : सूर्य क्या है?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने अपने शिक्षक से यह प्रश्न पूछा है? वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य आग का गोला है और इससे हमें ऊष्मा, प्रकाश, शक्ति, सब कुछ प्राप्त होता है। आप अपने शिक्षकों से इस बारे में क्यों नहीं पूछते?

प्रश्न : मनुष्य जो कुछ है उससे संतुष्ट कैसे रह सकता है?

कृष्णमूर्ति : मैं जो कह रहा हूं उसे यदि आप ध्यानपूर्वक सुनें तो यह बहुत आसान है। कृपया ध्यान से सुनिये। असंतोष तब पैदा होता है जब तुलना की जाती है। जब आप यह देखते हैं कि किसी व्यक्ति के पास अधिक चीज़ें हैं और आपके पास कम हैं और उस व्यक्ति से आप अपनी तुलना करते हैं तो असंतोष पैदा होता है, किंतु यदि आप अपनी तुलना नहीं करते हैं तो कोई समस्या ही नहीं होती। परंतु तुलना न करना तभी संभव होता है जब गहरी अभिरुचि और समझ भीतर हो क्योंकि हमारी समस्त शिक्षा, हमारा सारा प्रशिक्षण, तुलना पर ही आधारित है—'वह लड़का तुम्हारे जितना अच्छा नहीं है', 'तुम उस लड़के की तरह होशियार नहीं हो' आदि। तब आप संघर्ष करने लगते हैं और वह दूसरा लड़का भी संघर्ष करने लगता है। इस तरह लगातार तुलना और संघर्ष करने का यह खेल हम जारी रखते हैं। लेकिन आप जो कर रहे हैं उससे यदि आपको लगाव है तो उसे आप केवल इसलिए करते हैं कि उस कार्य से आपको प्रेम है, इसलिए नहीं कि कोई दूसरा इसे आपसे बेहतर ढंग से कर रहा है या आप इसे अधिक अच्छी तरह से कर सकते हैं। जब आप किसी प्रकार की तुलना नहीं करते तो आप जो कुछ भी कर रहे हों वह कार्य स्वयं ही अपनी गहराइयां, अपनी ऊंचाइयां आपके सामने उद्घाटित कर देता है।

प्रश्न : हम सूर्य को क्यों नहीं देख पाते?

कृष्णमूर्ति : क्योंकि यह बहुत तेज चमकता है। बिजली का कोई बल्ब यदि बहुत तेज रोशनी देता है, तो उसे भी देख पाना आपके लिए मुमकिन नहीं होता। आंखें बहुत संवेदनशील होती हैं।

21 जनवरी 1954

धर्म

ज़िंदगी की अजूबा बातों में से एक है धर्म या जो धर्म कहलाता है। हो सकता है आपके पास धन हो, सफलता हो, हो सकता है आप बहुत विख्यात हों या शायद आपको अनेक असफलताएं, दुख और ढेर सारी कुंठाएं-निराशाएं झेलनी पड़ी हों, किंतु इन सबके अंत में मृत्यु तो हमारी प्रतीक्षा कर ही रही है। हम सौ साल, दस साल या जितने भी साल जिएं मृत्यु तो एक दिन आनी ही है। यह सब देख कर, अपनी नगण्यता और अपने दुखों को देखते हुए हममें अपने से परे कुछ पाने की इच्छा जागने लगती है। क्योंकि व्यक्ति अंततः अपने आपसे, अपनी सफलता से, अपने आडंबरों से, वह जो कुछ भी करता है उस सबसे, परिवार, धन और पद-प्रतिष्ठा आदि से ऊब जाता है। जब लोग इस सबसे उकता जाते हैं तो उन्हें ऐसा महसूस होने लगता है मानो वे अब तक बस धोखा खाते रहे हैं। फिर अपने आपको भूलने के लिए वे किसी बड़ी चीज़ से अपना तादात्म्य करने का प्रयत्न करते हैं। यानी वे किसी बड़ी चीज़ का विचार करने लगते हैं और कहते हैं, 'शायद अगर मैं उसके विषय में सोच सकूं, उसे जी सकूं, उसकी प्रतिमा, चित्र या मूर्ति पर ध्यान लगा सकूं, तो मैं उसमें अपने को पूरी तरह भुला सकूंगा।'

जब मनुष्य स्वयं से, अपने संघर्षों से, दुखों से, अपने आस-पास की सभी नश्वर वस्तुओं से, उन सभी चीज़ों से परे चला जाना चाहता है जो जीती और मरती हैं तो वह कुछ खोजने लगता है, वह कल्पनाएं और पूर्वानुमान करने लगता है। वह सच्चे अर्थ में खोज नहीं करता, वह वस्तुतः पता लगाना नहीं चाहता बल्कि इन सारी परेशानियों से पलायन करने का प्रयत्न करता है और वह आशा करता है कि कहीं कोई ऐसी चीज़ है, जिसे वह ईश्वर कहता है और इस प्रकार की आस्था में बंध जाता है जो वस्तुतः उसके मन की ही उपज होती है। इस प्रकार वह तरह-तरह की अटकलें लगाने लगता है और ईश्वर क्या है इस बारे में भांति-भांति के सिद्धांत गढ़ लेता है और इस बारे में पुस्तकें लिखता है। आप जितने अधिक चतुर होंगे, जितने बुद्धिमान होंगे, सूक्ष्म चिंतन के जितने काबिल होंगे, ईश्वर के संबंध में उतनी ही अधिक धारणाएं आपमें होंगी और उन्हें आधार बनाकर आप अनेक महान दार्शनिक सिद्धांत तथा विचार प्रणालियां निर्मित कर लेंगे। इसके फलस्वरूप आपमें यह विचार उत्पन्न होगा कि यथार्थ की प्राप्ति के लिए आस्था-विश्वास आवश्यक है, विशिष्ट साधना आदि करना ज़रूरी है, संसार का त्याग ज़रूरी है, वहां तक पहुंचने के लिए आपको कुछ कर्म करने होंगे और कुछ को तिलांजलि देनी होगी, ताकि आप अपने कष्टों को भुला सकें, दुखों को और उस मृत्यु को भी भुला सकें जो हम सभी की

प्रतीक्षा करती रहती है। इस प्रकार एक धर्म पैदा होता है जो हमसे विश्वास रखने की मांग करता है। समाज भी हमसे ऐसी ही मांग करता है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि अपने से किसी बहुत बड़ी चीज़ पर हम विश्वास करें, क्योंकि अपने आप में हम बहुत छोटे हैं।

हमारे सारे अंतर्द्वंद्व, हमारी सारी महत्त्वाकांक्षाएं अत्यंत क्षुद्र होती हैं, अत्यंत तुच्छ होती हैं। इसलिए हम अपना तादात्म्य किसी-न-किसी हस्ती से कर लेना चाहते हैं। यदि ईश्वर नहीं, तो यह फिर राज्य हो सकता है, और राज्य के अंतर्गत पूरा भारतवर्ष या सारी दुनिया हो सकती है, सरकार, शासन करने वाले लोग या समाज हो सकता है। और यदि इनमें से वह कुछ न हो तो कोई बहुत दूर कल्पना का आदर्श-लोक हो सकता है, कोई अद्‌भुत समाज हो सकता है जिसे हम बनाने जा रहे हैं, और उसे बनाने के लिए आप अनेक मनुष्यों का संहार करते हैं, पर वह आपके लिए चिंता का कारण नहीं होता। यदि आप इनमें से किसी भी बात पर विश्वास नहीं करते, तो आप सुख-सुविधा और आमोद-प्रमोद भरा जीवन बिताना चाहते हैं और भौतिक वस्तुओं में अपने आपको भुला देते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति को भौतिकतावादी कहा जाता है, और जो व्यक्ति अपने आपको आध्यात्मिक जगत में भुला देता है उसे आध्यात्मिक कहा जाता है। दोनों का लक्ष्य अपने आपको भुलाना ही होता है—उनमें से एक सिनेमा में, दूसरा ग्रंथों में, कर्मकांडों में, नदी के किनारे बैठकर ध्यान करने में, त्याग में अपने को भुलाने की चेष्टा करता है—ताकि उसका बोझ हल्का हो जाए, वह अपने को किसी कार्य में खो सके, किसी लक्ष्य की उपासना में स्वयं को डुबो सके।

स्वयं को बहुत छोटा अनुभव करने के कारण मनुष्य अपने आपको किसी तरह से खो देना चाहता है। जब आप कम उम्र के होते हैं तब आपको अपना आप छोटा प्रतीत नहीं होता होगा। परंतु जैसे-जैसे आप बड़े होते हैं, आपकी समझ में आने लगता है कि इसकी सार्थकता कितनी कम है, यह कितना मूल्यहीन है; यह एक छाया भर है जिसमें थोड़े से गुण हैं, यह संघर्षों से भरा है, पीड़ाओं और विषादों से परिपूर्ण है। इसलिए, मनुष्य जल्दी ही इससे ऊब जाता है और किसी ऐसी चीज़ के पीछे भागता है जिसमें अपने को विस्मृत कर सके। हम सब यही कर रहे हैं। जिनके पास बहुत धन है वे लोग नाइट-क्लबों में, मनोरंजन के अनेक साधनों में, कारों और घूमने-फिरने में अपने आपको भुलाना चाहते हैं। जो थोड़े होशियार हैं वे भी अपने को भूलना चाहते हैं इसलिए वे असाधारण मान्यताओं की रचना कर लेते हैं और उन पर विश्वास रखने लगते हैं। बुद्धिहीन लोग भी स्वयं को भूलना चाहते हैं और इसलिए वे किसी के अनुयायी बन जाते हैं, किसी को गुरु बना लेते हैं जो उन्हें बताते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए। महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति भी किसी काम में डूबकर खुद को

भुला देना चाहते हैं। इस प्रकार हम सभी लोग जब परिपक्व हो जाते हैं, जब बड़े हो जाते हैं, तो खुद को भुलाना चाहते हैं, और इसलिए हम अपने से बड़ा कुछ ऐसा पा लेने का प्रयास करने लगते हैं जिससे हम एकाकार हो सकें।

जब हम किसी चीज़ के माध्यम से, राज्य, ईश्वर, गुरु या किसी कर्म आदि के माध्यम से अपने आपको भुलाने की चेष्टा करते हैं तो भ्रांतियां उत्पन्न हो जाती हैं, भ्रम पैदा हो जाते हैं। जब मैं किसी धारणा के माध्यम से अपने को भुलाता हूं तो वह धारणा मेरे लिए अहम बन जाती है। कोई आदर्श भी, जो कि मन का ही आविष्कार होता है, भ्रांति पैदा कर सकता है। इस प्रकार मैं भ्रांतियों को कई गुना बढ़ा लेता हूं। इन भ्रांतियों, अंधविश्वासों, आस्थाओं आदि को हम धर्म कहते हैं और इस बारे में अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं—भ्रांतियों को मिटाने के बारे में नहीं, बल्कि इस बारे में कि भ्रांतियों को क्रमबद्ध करके कोई विचार-प्रणाली कैसे बनाई जाए। लेकिन निश्चित तौर पर वह धर्म नहीं है। विश्वास और रूढ़ियां, कर्मकांड और पूजा, जनेऊ आदि धारण करना, कुछ विशिष्ट शब्दों को बुदबुदाते रहना, फिर वे चाहे जितने पुरातन हों, धर्म नहीं है। वे सारी पद्धतियां किसी भ्रांति के माध्यम से अपने आप से पलायन करने का एक तरीका होती हैं। इस प्रकार का पलायन जिसे हम धर्म कहते हैं, धर्म नहीं है। धर्म इससे पूर्णतः भिन्न होता है, और इसका रहस्य उस वस्तु का पता लगाने में है जो मन का आविष्कार नहीं है।

इसलिए हमें यह खोजना होगा कि वास्तविक धर्म क्या है, धर्म का वह यथार्थ स्वरूप क्या है जो मन की कल्पना मात्र नहीं है। इसका महत्त्व नहीं है कि वह कल्पना शंकर के द्वारा स्थापित की गयी है या किसी अन्य के द्वारा, ऐसी सभी स्थापनाएं केवल सिद्धांत ही होती हैं। धर्म हमारे होने की, अस्तित्व की एक ऐसी दशा है जिसे हममें से प्रत्येक को अनुभव करना चाहिए। *होने* की उस दशा को तब तक नहीं समझा जा सकता, वह तब तक सामने नहीं आती जब तक हम यह नहीं जान लेते कि मन विभिन्न सूक्ष्म इच्छाओं के माध्यम से किस तरह भ्रांतियां निर्मित कर लेता है। जैसा कि मैंने उस दिन कहा था, मन केवल सतह पर हो रही गतिविधि भर नहीं होता। गंगा केवल उतनी ही नहीं है जो वह सतह पर दिखाई देती है, गंगा आदि से लेकर अंत तक की संपूर्ण नदी है, जहां से यह प्रारंभ होती है और जहां यह सागर में मिलती है वह संपूर्ण नदी गंगा है, और यह विचार करना कोरी मूर्खता होगी कि गंगा केवल शिखर पर स्थित नदी है। इसी तरह से, हम बहुत, बहुत जटिल हस्तियां हैं, और मन की कल्पनाएं, धारणाएं, सिद्धांत, अंधविश्वास, कर्मकांड, दोहराव, मंत्र आदि सब सतह तक ही रहते हैं। हमें उससे पार जाना होगा और उस सबको एक तरफ रख देना होगा—उन तमाम बातों को, केवल एक-दो धारणाओं को ही नहीं, एक-दो विश्वासों

या कर्मकांडों को ही नहीं, केवल उन्हें ही नहीं जो हमें पसंद नहीं। यह अत्यंत श्रमसाध्य, कठिन काम है क्योंकि ज्यादातर लोग भयग्रस्त रहते हैं —इस बात से डरे रहते हैं कि समाज, मित्र लोग, अभिभावक क्या कहेंगे। परंतु वास्तविकता, ईश्वर आदि क्या है, इसे यदि कोई सचमुच जानना चाहता है तो उसे इन सब बातों से ऊपर उठना होगा, इन सबको एक तरफ कर देना होगा। आप इन्हें तभी एक तरफ कर सकते हैं जब इन्हें अच्छी तरह समझ लें, इनसे परे जा पाएं।

अतः जिन विश्वासों के बीच रहते हुए हम पले-बढ़े हैं, धर्म उनसे सर्वथा भिन्न चीज़ है। परंतु आप देखते हैं कि हममें से इने-गिने लोग ही भय से मुक्त होते हैं, और ईश्वर क्या है इसका पता लगाने से भय ही हमें रोकता है। जब हममें भय होता है, हम बहुत असंवेदनशील हो जाते हैं। क्योंकि जब भी हम किसी वृक्ष को या किसी सुंदर बादल को देखते हैं, जब भी हम किसी भिखारी या आंसू बहा रही किसी नारी को देखते हैं, अथवा जब भी हम किसी सुंदर चीज़ की ओर देखते हैं, तो उस चीज़ से हमारा प्रेम, बिना किसी प्रयोजन के सिर्फ उसके लिए उससे हमारा प्रेम ही तो आखिर सच्चे धर्म की शुरुआत है। पर जीवन को हम उस ढंग से नहीं जीते, हम कुछ पाने की आशा रखकर जिया करते हैं। मैं अपने देश से इसलिए प्यार करता हूं क्योंकि यह मेरा देश है, अपने देश से प्रेम करना अपने आपसे प्रेम करने का ही एक अत्यंत सूक्ष्म रूप है। परंतु यदि आप किसी वृक्ष से, किसी पशु से, किसी मनुष्य से—उससे बदले में कुछ पाने की आशा रखे बिना ही प्रेम कर सकें, सिर्फ प्रेम करने के लिए ही प्रेम करें और बदले में कुछ न मांगें, तो यही धर्म की शुरुआत है। उस प्रेम को आप केवल तभी जान पाते हैं जब आपमें भय नहीं होता। जब मन भय से मुक्त हो जाता है तो वह अपने ही प्रक्षेपणों से, अपनी ही कल्पनाओं से, अपनी ही धारणाओं से परे जा सकता है।

अतः धर्म कोई मन द्वारा ईजाद की हुई चीज़ नहीं है। इस समय मन जिस प्रकार से भय, कामना, सफलता, महत्त्वाकांक्षा आदि विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में लगा है, यह अनेक काल्पनिक प्रतिमाएं खड़ी करता रहता है, परंतु धर्म तो *होने* की वह दशा है जिसमें मन ऐसी कोई प्रतिमा नहीं रचता। जब मन स्वयं की संपूर्ण कार्यप्रणाली को भलीभांति समझ लेता है केवल तब ही इसके मौन हो जाने की, अत्यंत निश्चल हो जाने की संभावना होती है। वह निश्चलता मृत्यु की शांति नहीं होती, वह मौन अत्यंत क्रियाशील, अत्यंत सतर्क, अत्यंत सजग, प्रखर और स्थिर होता है। तब ही वस्तुतः खोज संभव हो पाती है, केवल उसी दशा में जिसे हम ईश्वर, सत्य आदि कहते हैं, या जो भी नाम आप उसे देना चाहें, वह प्रकट होता है। किंतु आप उसका पीछाकर उसे कभी नहीं पा सकते। इसके लिए हमें वृक्षों को समझना होगा, वृक्षों से प्रेम करना क्या है, सौंदर्य से प्रेम करना क्या है,

यह समझना होगा; हमें दुख को, खुशी को और मानव अस्तित्व के सारे संघर्ष को समझना होगा। तब कोई उस सबसे परे जा पाएगा, तभी सचमुच स्व का, 'मैं' का अंत घटित हो पाएगा। केवल उसी दशा में वह प्रकट होता है जिसकी हम सब पूजा करते हैं, जिसे हम सब खोज रहे हैं या जिसे जानने-पाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रश्न : भावावेग क्या है? चूंकि मनुष्य में भावावेग होते हैं, उनका होना अच्छा है या बुरा है?

कृष्णमूर्ति : क्या आप नहीं जानते कि भावावेग क्या हैं? जब कोई आपको घूंसा मारता है तो आप रोने लगते हैं, जब कोई मर जाता है तो आप रोने लगते हैं। जब आप कोई सुंदर चीज़ देखते हैं तो खुश होते हैं। यह संवेदन का एक रूप है, यह सही अथवा गलत नहीं होता।

देखिए, हम किसी भी चीज़ को अच्छे या बुरे की तरह ही देखा करते हैं—'यह सही है', 'यह गलत है', 'यह खराब है', 'यह अच्छा है'—और हमें लगता है कि हर वस्तु को अच्छा या बुरा कह देने भर से हमने अपने जीवन की सारी समस्या को हल कर दिया। जब किसी भावावेग के कारण हमें पीड़ा होती है तो हम उसे दबा डालते हैं ताकि वह हमें महसूस ही न हो, और उसे हम बुरा कहते हैं। परंतु यदि वह एक सुखद भावावेग हो तो हम उसे दबाते नहीं बल्कि उसे बनाए रखना चाहते हैं, उसे बार-बार अनुभव करना चाहते हैं।

इसलिए हमें भावावेग को समझना चाहिए, उसकी निगरानी करनी चाहिए, उसकी देखभाल करनी चाहिए ताकि आप उसे पूरी तरह समझ सकें, ताकि आप यह न कहें कि यह अच्छा है या बुरा है। यह तो हमारी प्रवृत्ति अथवा मन की संस्कारबद्धता ही होती है जिसके कारण हम किसी भी बात को अच्छा या बुरा कहते हैं, इसी प्रवृत्ति के कारण आप किसी छोटे से शिशु को अच्छा अथवा शरारती कह देते हैं मानो ऐसा करके आप उसे सचमुच समझ गए हों। यदि आप बच्चे को समझना ही चाहते हैं तो आप उसका अध्ययन करें, जब वह खेल रहा हो, जब वह रो रहा हो, जब वह सो रहा हो, उस समय उसे ध्यान से देखें, आप उसकी निंदा न करें। परंतु किसी चीज़ की, किसी व्यक्ति की या किसी विशिष्ट बात की निंदा करना कितना आसान होता है। आप कहते हैं, 'यह खराब है' और बात वहीं खत्म कर देते हैं, किंतु किसी चीज़ को समझने के लिए बहुत सावधानी की, धैर्य की, अवधान की अर्थात जागरूकता की आवश्यकता होती है।

प्रश्न : राक्षस क्या होता है? हमें इससे डर क्यों लगता है?

कृष्णमूर्ति : आप जानते हैं न, कि परियों की, जादूगरों आदि की जो कहानियां बच्चों की किताबों में होती हैं उनमें बहुत सी शिक्षाप्रद बातें होती हैं। क्योंकि उन कहानियों में सदैव किसी इनाम, वरदान आदि का उल्लेख

होता है; आप कुछ मांगते हैं, परंतु उस मांग के साथ हमेशा सज़ा भी जुड़ी होती है। आप जानते होंगे कि उन कहानियों में कोई परी, कोई फरिश्ता या कोई अच्छा व्यक्ति या कोई ऐसी अच्छी चीज़ होती है जिससे आप कुछ मांग सकते हैं—सभी कहानियों में ऐसा कुछ-न-कुछ हुआ करता है। उससे आपको कोई चीज़ मिल तो सकती है परंतु उस चीज़ को पाने की राह में कोई अड़चन या मुश्किल भी अवश्य हुआ करती है। इसी प्रकार इन परियों की कहानियों में राक्षस भी हुआ करता है।

प्रश्न : जब हम मंच पर जाकर अभिनय करते हैं, तो हम मुक्त भाव से अभिनय क्यों नहीं कर पाते?

कृष्णमूर्ति : क्या अन्य अवसरों पर आप मुक्त भाव से व्यवहार कर पाते हैं? जब आप बड़े लोगों के बीच होते हैं, उन लोगों के बीच होते हैं जो आपकी आलोचना करते हों, या जो आपके व्यवहार को ध्यानपूर्वक देखते हों—क्या उस समय आप मुक्त होकर, निश्चिंत होकर व्यवहार कर पाते हैं? नहीं कर पाते हैं। हम शरमाते हैं, हैं कि नहीं? या हम इतराते हैं। या हमें संकोच होने लगता है। इसी तरह जब आप मंच पर होते हैं तो आपके सामने बहुत से दर्शक होते हैं और आप शरमा जाते हैं।

जब आप छोटे होते हैं उस समय अभिनय करना और इस सबके साथ खेलना बिलकुल स्वाभाविक है। किंतु हममें से ज्यादातर लोग तो बड़े हो जाने पर अभिनय करने लगते हैं, अपने रोज़ के जीवन में हम नाटक करते हैं। हमें लगता है कि हम कोई हैं और हमें उस विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करना होगा, और इसलिए हम सदैव एक मुखौटा लगाकर रखते हैं। क्या आपने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया? आप सोचते हैं कि आप एक महान संत हैं, एक महान आदर्शवादी हैं और उस तरह का मुखौटा आप पहन लेते हैं, जो कि एक नाटक होता है। हमारा यह बड़ा दुर्भाग्य है कि हमें सदा कुछ-न-कुछ बनने की शिक्षा दी जाती है। 'कुछ बनना' नाटक है, पाखंड है। परंतु यदि आप कुछ बनें न, यदि आप जो हैं उसी वास्तविकता में सरलतापूर्वक रहें और नाटक न करें, पाखंड न करें, आप जो हैं वही रहें, तो वहां से आप सचमुच बहुत आगे जा सकते हैं।

प्रश्न : जब हम चिड़ियों के पास जाते हैं तो वे उड़ क्यों जाती हैं?

कृष्णमूर्ति : जब आप किसी बड़ी गाय को या किसी अनजाने व्यक्ति को देखते हैं तो आप भाग क्यों जाते हैं? यह वैसी ही बात है।

प्रश्न : द्वंद्व क्या होता है, और हमारे मन में यह कहां से आता है?

कृष्णमूर्ति : आप अपनी क्रिकेट टीम के कैप्टन होना चाहते हैं परंतु एक अन्य लड़का आपसे बेहतर है। आपको यह बात स्वीकार नहीं होती। इस कारण आपमें अंतर्द्वंद्व पैदा हो जाता है, होता है कि नहीं? जब आप

कुछ पाना चाहते हैं और वह चीज़ आपको नहीं मिलती तो आपमें द्वंद्व उत्पन्न होता है। और यदि आप जिसे चाहते हैं वह चीज़ आपको मिल जाती है तो उसे अपने पास बनाए रखना कठिन होता है और फिर आप संघर्ष करते हैं। अतः द्वंद्व हमेशा जारी रहता है क्योंकि आप हमेशा कुछ-न-कुछ पाना चाहते हैं। यदि आप क्लर्क हैं तो मैनेजर बनना चाहते हैं, यदि आपके पास साइकिल है तो आप मोटरसाइकिल पाना चाहते हैं, और यह क्रम जारी रहता है। यदि आप कष्ट में हैं तो आप प्रसन्न रहना चाहते हैं।

इसलिए महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आप क्या चाहते हैं, महत्त्वपूर्ण यह है कि आप क्या हैं। आप जो हैं उसे समझना, उस बारे में अन्वेषण करना, आप जो हैं उसके समस्त निहितार्थों को देख लेना—यही आपको द्वंद्व से मुक्त करता है।

प्रश्न : रुचि क्या होती है?

कृष्णमूर्ति : जब आपके पास कोई खिलौना होता है तो आपकी सारी रुचि यह जानने में होती है कि वह खिलौना किस प्रकार काम करता है, है न? आपका मन पूरी तरह उसमें लगा होता है, आप किसी दूसरी चीज़ के बारे में नहीं सोचते। जब आपकी रुचि किसी चीज़ में, खिलौने में, खेलने में, नृत्य में, किसी कल्पना में होती है तो आप उसमें ही पूरी तरह रम जाते हैं। इसी को रुचि कहते हैं।

हममें से अधिकांश के जीवन में बहुत कम रुचि होती है। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हमारी रुचि हर चीज़ में खत्म होने लगती है। इसलिए हमें अपने मन को इधर-उधर भटकने से रोक पाना कठिन हो जाता है। इसलिए हम अनुशासन, नियंत्रण, एकाग्रता आदि सीखने लगते हैं। इस तरह के स्कूल में हमें, हममें से प्रत्येक को, शिक्षकों और छात्रों को यह पता लगाना चाहिए कि हमारी अभिरुचि किसमें है, किस विषय से हमें प्यार है, और यदि हम यह पता लगा लेते हैं तो आगे चलकर हमें जीवन में अंतर्द्वंद्वों का सामना नहीं करना पड़ेगा। वह हमारी स्वाभाविक जीविका होगी, यह वह होगा जिसे हम करना चाहेंगे। यदि आप एक कलाकार हैं और आपके माता-पिता व समाज आपको एक क्लर्क बनाना चाहते हैं तो आपको क्लर्क बनने के लिए बाध्य किया जाता है, और अपने पूरे जीवनभर आप संघर्षरत ही रहते हैं। वास्तव में, आप जो करना चाहते हैं वह तो आप कभी कर ही नहीं पाए।

प्रत्येक विद्यार्थी की यह खोजने में मदद करना कि वह क्या करना चाहता है यही शिक्षा का काम है। और यह वस्तुतः बहुत कठिन काम है क्योंकि हम अलग-अलग अवसरों पर बहुत सारी चीज़ें करना चाहते हैं। सही प्रकार की शिक्षा आपको यह जानने में सहायक होगी कि आपकी

विविध रुचियों में वह कौन सी खास है जो आपको सचमुच प्रिय है, जिससे आपको लगाव है—जो आपकी ज़िंदगी की ज़रूरत हो, अनिवार्यता हो।

प्रश्न : हम मृत्यु से क्यों डरते हैं?

कृष्णमूर्ति : आपने प्रश्न पूछा है, 'हम मृत्यु से क्यों डरते हैं।' क्या आप जानते हैं कि मृत्यु क्या है? आप एक हरी पत्ती देखते हैं जो पूरी गर्मियों में जीवित रही, हवा में नाचती रही, सूरज की धूप को इसने अपने अंदर लिया, वर्षा में धुलकर साफ-सुथरी हुई और शीत ऋतु आने पर यह मुरझाई और मर गई। हवा में उड़ रहा एक पक्षी बहुत सुंदर दिखाई देता है और वह भी जीर्ण-शीर्ण हो कर मर जाता है। नदी के किनारे पर जलाए जाने के लिए शवों को ले जाते हुए भी आप देखते हैं। अतः आप जानते हैं कि मृत्यु क्या है। आप इससे क्यों डरते हैं? एक पत्ती की तरह, एक पक्षी की तरह, आप जीवित हैं—किंतु आप बीमार पड़ जाते हैं या आपको कुछ हो जाता है और आप दम तोड़ देते हैं। इसलिए आप कहते हैं, 'मैं जीना चाहता हूं, मैं सुख भोगना चाहता हूं, मैं चाहता हूं कि जीवन की यह जोत मुझमें निरंतर जलती रहे।' इसलिए मृत्यु का भय, अंत हो जाने का भय है, है न? क्रिकेट न खेल पाना, सूर्य की रोशनी न देख पाना, नदी को पुनः कभी न देख पाना, अपने वही कपड़े फिर न पहन पाना, पुस्तकें न पढ़ पाना, मित्रों से फिर न मिल पाना, यह सब समाप्त हो जाता है। इसलिए, आप मृत्यु से डरते हैं।

मृत्यु से भयभीत होने के कारण, और मृत्यु अटल है यह जान लेने पर हम यह पता लगाने की चेष्टा करने लगते हैं कि मृत्यु के पार कैसे जाया जाय। इस बारे में हमारे अनेक सिद्धांत होते हैं। किंतु यदि हम यह जान लें कि किसी चीज़ का अंत कैसे किया जाता है तो भय नहीं होता, यदि हमें यह पता चल जाय कि प्रतिदिन कैसे मरें तो भय नहीं होता। हमें मरना नहीं आता क्योंकि हम सदैव संचय करने में लगे रहते हैं, निरंतर संचय ही संचय करते रहते हैं। हम सदैव कल की भाषा में सोचा करते हैं—'मैं यह हूं और मैं वह हो जाऊंगा।' हम एक दिन भी पूरी तरह नहीं जी पाते, हम कभी इस तरह से नहीं जीते मानो हमें जीने के लिए बस एक ही दिन मिला हो। हम हमेशा आने वाले कल या बीते कल में जीते रहते हैं। यदि आपसे कोई यह कहे कि दिन के समाप्त होते-होते आपकी मृत्यु हो जाने वाली है, तो आप क्या करेंगे? क्या तब आप उस दिन को अर्थपूर्ण ढंग से नहीं जिएंगे? हम कभी किसी दिन को पूर्णता के साथ नहीं जीते। हम आज की पूजा नहीं करते, हम कल क्या होंगे यही सोचते रहते हैं—उस क्रिकेट के खेल के बारे में सोचते रहते हैं जिसे कल खेला जाना है, उस परीक्षा का विचार करते रहते हैं जो छः माह बाद होनी है, कल हमें क्या-क्या करना है, कल का भोजन कितना मजेदार होगा, हम कौन से कपड़े खरीदने वाले हैं आदि बातें सोचते रहते हैं—सदैव आनेवाले कल अथवा बीते कल के बारे में—

इसलिए हम कभी जीते ही नहीं हैं, बल्कि सदैव मर ही रहे होते हैं, वह भी गलत अर्थ में।

यदि हम दिन को पूरी तरह से जिएं और उसको उसी दिन समाप्त कर दें तथा अगले दिन की शुरुआत ऐसे करें मानो वह एक नया ताज़ा दिन हो, तो मृत्यु का भय नहीं रहता। उस सारी सामग्री के प्रति जिसे हमने इकट्ठा किया है, समस्त ज्ञान के प्रति, सारी स्मृतियों के प्रति, सारे संघर्षों के प्रति, हर दिन मर जाना, उन्हें अगले दिन के लिए न रख छोड़ना—इस सबमें एक सौंदर्य होता है, अंत होने के साथ ही साथ एक नया जीवन होता है।

प्रश्न : जब हम नयी चीज़ें देखते हैं, तो उन्हें पाने की इच्छा क्यों होने लगती है?

कृष्णमूर्ति : नये कपड़े, नये खिलौने, नयी साइकिलें, नये चित्र, नयी किताबें, नयी पेंसिलें—आप किसी नयी चीज़ को देखते हैं और उन्हें चाहने लगते हैं। छोटे हों या बड़े हों यह बात सब में एक जैसी होती है। हम सब चीज़ों को अपने कब्ज़े में रखना चाहते हैं, हम सब संग्रह करना चाहते हैं और दुकानें ऐसी चीज़ों से भरी हैं जिन्हें हम पा लेना चाहते हैं। जो हमारे पास है या जो हम हैं उससे हमें संतोष नहीं होता। यदि मैं बुद्धिहीन हूं तो मैं बुद्धिमान होना चाहता हूं। जो मनुष्य बुद्धिमान होना चाहता है वह वस्तुतः मूर्ख ही होता है। कृपया इस पर चिंतन करें और आप देखेंगे कि यह बात किस प्रकार सत्य है। क्योंकि एक बुद्धिहीन मनुष्य कभी बुद्धिमान नहीं बन सकता, वह सदैव बुद्धिहीन ही होता है, परंतु यदि वह समझ सके, यदि वह इस बारे में सजग हो सके कि वह बुद्धिहीन है, तो उसमें उत्पन्न होनेवाली यह सजगता ही प्रज्ञा की शुरुआत होती है। किंतु हम कभी उस प्रकार से नहीं सोचा करते। आप कहते हैं, 'मैं बुद्धिहीन हूं या लोग कहते हैं कि मैं बुद्धिहीन हूं। मुझे अपने भाई की तरह या अमुक लड़के की तरह चतुर होना होगा।' अतः आप बुद्धि को पाने का, बुद्धिमान होने का प्रयत्न करने लगते हैं। परंतु यदि आप यह देख लेते हैं कि आप बुद्धिहीन हैं, यदि आप यह जान लेते हैं कि आप बुद्धिहीन हैं, तो आपमें एक प्रक्रिया शुरू होने लगती है—तब आपकी यह सजगता ही कि आप बुद्धिहीन हैं कुछ करने लगती है।

यदि मैं यह जान लेता हूं कि मैं अंधा हूं तो मैं यह समझने लगता हूं कि अब आगे क्या करना है। मैं बहुत सावधानी के साथ चलूंगा, मैं लाठी का सहारा लूंगा, बहुत धीमे-धीमे, धीरे-धीरे चलूंगा। परंतु यदि मुझे यह पता ही न हो कि मैं अंधा हूं तो मैं इधर-उधर भटकता रहूंगा। हम यह स्वीकार नहीं करते कि हम बुद्धिहीन हैं। हो सकता है कि मैं कुछ बुद्धिहीन हूं पर मेरी कोशिश हमेशा बहुत बुद्धिमान बनने की रहती है। जो कुछ भी है उसको समझना ही विवेक है।

प्रश्न : प्रेम क्या है?

कृष्णमूर्ति : आप तीन हफ्तों से मुझे सुनते आ रहे हैं। हफ्ते में पांच दिन, मैं हर सुबह आपसे बातचीत करता रहा हूं, और अब आप मुझसे पूछते हैं : प्रेम क्या है? मैं प्रेम के विषय में आपसे कई तरीकों से बातचीत कर चुका हूं—सत्य के, मन के, भयों के बारे में बोलता रहा हूं। आप पूछते हैं—प्रेम क्या है? कितने दुख की बात है, नहीं है क्या? क्योंकि प्रश्न को पूछते समय आपको इसका भी ध्यान नहीं है कि आप कितने अधिक लापरवाह हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि प्रेम क्या है, बल्कि महत्त्व इस बात का है कि आप स्वयं अपनी दशा को, आप क्या हैं, इसे भी नहीं जानते। क्या आपको लगता है कि किसी अन्य व्यक्ति से पूछकर प्रेम को जाना जा सकता है? 'मैं यह जानना चाहता हूं कि प्रेम क्या है', ऐसा कहनेवाला व्यक्ति यह प्रश्न इसलिए पूछता है ताकि वह प्रेम को पा सके, ऐसा व्यक्ति कभी प्रेम नहीं कर पाएगा। यदि आप जान लेते हैं कि आपमें प्रेम का अभाव है तो अनायास ही प्रेम से भर उठेंगे। परंतु इसे जानने से पहले आपको यह जानना होगा कि आप क्या हैं, और आप जो नहीं हैं वह बनने का प्रयत्न करना छोड़ना होगा।

इन सभी बातों पर ज़रूर सोचें। केवल अध्ययन करने में, किताबें पढ़ने में, खेलते रहने में अपना समय न बिताएं, बल्कि इन सारी बातों पर विचार करें। हम आपके लिए ऐसी व्यवस्था करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि प्रतिदिन कुछ शिक्षक आपसे बातचीत करें, एक ऐसी बैठक हो जिसमें समय-समय पर सभी शिक्षक आपसे विभिन्न बातों पर विचार-विमर्श करें। हो सकता है शिक्षकों से, और जो कुछ वे कहते हैं उससे आप ऊब जाते हों। वे जो कुछ कहते हैं वह शायद महत्त्वपूर्ण हो या न हो, लेकिन यह जान पाने के लिए भी यह ज़रूरी है कि आप उनकी बातें ध्यानपूर्वक सुनें, ठीक है न? वे जो कहेंगे वह सत्य या असत्य हो सकता है, व्यर्थ या अनर्गल हो सकता है, पर इसे जान सकने के लिए आपको वह सब ध्यान से सुनना होगा और उसे ठीक से सुन पाने के लिए आपको उस पर पूरा ध्यान देना होगा। इसलिए वे जो कहें उसे यूं ही मत स्वीकार करें। स्वयं उसकी खोजबीन करें।

समीक्षात्मक दृष्टि रखना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि तभी आप कुछ पता लगा सकते हैं। या तो आप सब कुछ ऐसे ही मान लेते हैं, या फिर इस तरह सुनते हैं मानो थककर ऊब रहे हों। ऊब में तो आप खोजबीन नहीं कर सकते। शिक्षक आपसे जो कुछ कहते हैं या अन्य कोई भी व्यक्ति आप से जो कुछ कहते हैं—और इसमें मैं भी शामिल हूं—यदि आप उस सब को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, केवल सुनते भर नहीं हैं बल्कि समझते भी हैं, स्वयं पता लगाते हैं तो इससे आपका मन तेज़ और सक्रिय हो जाता है और हृदय स्फूर्ति से भर जाता है। और तब जब आप स्कूल की शिक्षा पूर्ण कर कॉलेज में जाएंगे तो

आपका मन इस योग्य होगा कि जीवन की जटिलताओं का मुकाबला कर सकें।

प्रश्न : हम अपने अंदर से राष्ट्रवादी और प्रांतवादी भावनाओं को कैसे दूर कर सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : पहले तो यह मालूम करें कि क्या आपमें ऐसी भावनाएं मौजूद हैं, और आपने उन्हें किस प्रकार रच डाला है। 'मुझे भावनाओं को अपने भीतर से निकाल बाहर करना है' ऐसा कहना बेकार है। वे आपके भीतर कहां से आईं? बहुत तरह के जटिल और सूक्ष्म कारणों के चलते आपके माता-पिता, समाज, आपके पड़ोसी, आपके शिक्षकों, आपके अखबारों, आपकी किताबों आदि ने राष्ट्रवाद और प्रांतवाद के उन आग्रहों को पुष्ट किया है ताकि वे आपको अपने नियंत्रण में रख सकें, आपको अपने अनुरूप ढाल सकें, आपको वह सब करने के लिए बाध्य करें जो उनकी दृष्टि में आपके लिए ज़रूरी है। एक फौजी जनरल राष्ट्रवाद को आवश्यक बतलाएगा क्योंकि तब वह आपको इस्तेमाल कर सकता है, राष्ट्रवाद के माध्यम से वह आपको युद्ध करने, हत्याएं करने के काम में ला सकता है। आपके भीतर राष्ट्रवाद और प्रांतवाद आदि की भावनाएं पनपने के विभिन्न कारण होते हैं और आप स्वयं भी उन्हें पसंद करते हैं। 'मैं हिंदू हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मैं भारत के इस छोटे से हिस्से का निवासी हूं' आदि बातें कहना आपको भी अच्छा लगता है। और राजनीतिक दल, पुरोहित वर्ग तथा चालाक लोग अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आपको इस्तेमाल करते हैं।

यदि आप इसे समझ लेते हैं तो कोई समस्या ही नहीं रहती, आप इस सबसे आसानी से छूट जाते हैं, तब आप इस पूरे तमाशे पर हंसते हैं। और यदि आप इसे नहीं समझ पाते तो इस राष्ट्रवाद और प्रांतवाद की मूर्खता से बच पाना अत्यंत कठिन हो जाता है।

प्रश्न : खतरा क्यों होता है?

कृष्णमूर्ति : जब आप किसी गहरी खाई के किनारे से गुजरते हैं तो क्या वहां खतरा नहीं होता? यदि आपको तैरना न आता हो तो क्या पानी में डूबने का खतरा नहीं होता? जब किसी सर्प से आपका सामना होता है तो क्या आप खतरे में नहीं होते?

खतरे का अर्थ है किसी चीज़ का भय होना, है न? खतरे के प्रति सावधान होना स्वाभाविक बात है, वह सुरक्षा के लिए आदतन होने वाली क्रिया है, स्वाभाविक शारीरिक प्रतिरोध है। यदि आपको खतरे की आशंका न महसूस हो, तो पास से किसी कार के गुजरने पर आप खुद को उससे बचा नहीं पाएंगे और उसके नीचे आ जाने से आपकी मृत्यु हो जाएगी, यदि आपको खतरे का आभास न हो पाए तो आप मारे जाएंगे।

अतः खतरे के प्रति जागरूकता का यह रूप आत्म-रक्षा का एक तरीका, एक नैसर्गिक प्रतिक्रिया है, परंतु जब हम मानसिक रूप से अपनी सुरक्षा करना चाहते हैं तो वह बिलकुल असामान्य बात हो जाती है और सारी गड़बड़ियां, सारी व्यथाएं वहीं से जन्म लेती हैं।

प्रश्न : आप सुखी हैं या नहीं?

कृष्णमूर्ति : मैंने इस बारे में कभी सोचा ही नहीं। 'मैं सुखी हूं कि नहीं हूं?' यह मैंने कभी नहीं सोचा।

सुख ऐसा कुछ नहीं है जिसके होने का पता आपको चल सके, आप अपने आप से यह नहीं पूछ सकते, 'क्या मैं सुखी हूं?' जिस क्षण आप ऐसा प्रश्न पूछते हैं उसी क्षण आप दुखी हो जाते हैं। सुख खोजने पर नहीं मिलता। यह तो तब आता है जब आप कोई ऐसा कार्य करते हैं जिसमें आपकी सचमुच रुचि है। आप कोई कार्य इसलिए करते हैं क्योंकि आपको उससे प्रेम है, और उसे करने में ही कुछ ऐसा घटित होता है जिसे सुख कहा जाता है; परंतु यदि आपको इस बात का एहसास है कि आप सुखी हैं तो समझ लीजिए यह लुप्त हो चुका है। जैसे ही आप 'मैं सुखी हूं', कहते हैं, क्या उसी क्षण सुख विदा नहीं हो जाता?

क्या आप समझ रहे हैं कि मैं किस बारे में बात कर रहा हूं? कृपया अपने शिक्षकों से कहें कि वे आपको ये सारी बातें समझाएं, और यदि वे इसे न समझते हों और आपको न समझाते हों तो आप स्वयं इस बारे में खोजबीन करें। किसी भी बात को ऐसे ही न मान लें। बड़ों की घुड़कियों से, किसी के धमकाने से डरिए नहीं। खोजें, जांच करें, अन्वेषण करें और कभी संतुष्ट होकर रुक न जाएं। तब आप इसका पता लगा लेंगे कि प्रसन्न रहना क्या होता है।

22 जनवरी 1954

वार्ताएं, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय

शिक्षा का उद्देश्य

मैं सोचता हूं कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम स्वयं ही यह पता लगाएं कि शिक्षा का क्या कार्य है। शिक्षा का उद्देश्य क्या है, हम किस लिए जी रहे हैं, इस बारे में अनेक तरह की बातें हैं, कितनी ही पुस्तकें हैं, कितने ही दार्शनिक सिद्धांतों और पद्धतियों का आविष्कार किया गया है और कितने ही लोगों ने इस पर विचार किया है। लेकिन यह बिलकुल साफ है कि हर शिक्षा-पद्धति, चाहे वह एकदम नयी हो या पुरानी, असफल हो चुकी है, क्योंकि वह इस संसार में न तो मनुष्यों के बीच शांति ला पायी है और न उसने कोई गहन सांस्कृतिक उत्थान का काम किया है—अर्थात मन के उन्नयन और संपूर्ण विकास में कोई पद्धति मदद नहीं कर पायी है। क्या इस पद्धति की आवश्यकता है?

मुझे लगता है कि यह बहुत ज़रूरी है कि हममें से हरएक इसका पता लगाए कि शिक्षा का कार्य आखिर क्या है—विशेष तौर पर किसी विश्वविद्यालय के अंतर्गत, हमें शिक्षित क्यों किया जाता है, और वर्तमान में हमारी शिक्षा कहां है। जब आप दुनिया में चारों तरफ नज़र डालते हैं तो देखते हैं कि शिक्षा असफल रही है क्योंकि इसने युद्धों को रोकने में मदद नहीं की है, न तो इसने संसार में शांति लाने में सहायता की है, और न ही इसने मनुष्य को किसी प्रकार की समझ ही प्रदान की है। इसके विपरीत, हमारी समस्याओं में और अधिक वृद्धि हुई है, और अधिक विध्वंसकारी युद्ध हो रहे हैं तथा पहले से बड़े क्लेश पैदा हो रहे हैं। अतः क्या हममें से हरएक के लिए यह पता लगाना ज़रूरी नहीं है कि शिक्षित होने के पीछे कुल मंशा क्या है? बड़े-बड़े अधिकारी, विद्वान हमें यह बताते हैं कि शिक्षा क्या है, या क्या नहीं है, अथवा क्या होनी चाहिए, परंतु ऐसे अधिकारी विद्वान, उन तमाम विशेषज्ञों की ही तरह, शिक्षा का सच्चा अर्थ नहीं जानते। उनका अपना एक विशेष दृष्टिकोण होता है अतएव उसमें समग्रता नहीं होती। इसलिए मुझे यह लगता है कि इस संबंध में सारे विशेषज्ञों, सारे शिक्षा-शास्त्रियों की मान्यताओं को परे हटाकर, शिक्षा का अर्थ क्या है, हमें शिक्षित क्यों किया जाता है, और यह शिक्षा किस स्तर की हो, इन बातों का पता लगाना हमारे लिए बेहद ज़रूरी है। प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा केवल तकनीकी स्तर पर ही हो—यानी शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ नौकरियां पाना, और नौकरियां पाने के प्रयोजन से विभिन्न परीक्षाएं पास करना ही है या फिर यह एक सर्वांगीण प्रक्रिया है, न कि सिर्फ रोजी-रोटी कमाने का साधन और उसी स्तर पर उसका सगंठन?

सर्वांगीण शिक्षा क्या है, इसके निहितार्थ क्या हैं, यह पता लगाना क्या हममें से प्रत्येक के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है? यदि हम इसका पता लगा सकें, किसी वर्ग-विशेष से जुड़कर नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से, कि मानव मात्र के लिए महत्त्व रखने वाली ऐसी सर्वांगीण शिक्षा के मूलभूत तत्त्व कौन से हों, तभी हम एक अलग तरह का विश्व बना सकेंगे। अभी तक हम देखते आए हैं कि किसी भी प्रकार की क्रांति संसार में शांति लाने में कामयाब नहीं हुई है—यहां तक कि साम्यवादी आंदोलन से भी मनुष्य का कोई बड़ा हित नहीं हो पाया—और न किसी अन्य प्रकार के संगठित धर्म के द्वारा मनुष्य शांति पा सका है। संगठित धर्म शायद मनुष्य को भ्रामक शांति दे पाते हों, परंतु मनुष्यों के बीच जिस प्रकार की शांति अपेक्षित है वैसी शांति देने में वे असफल रहे हैं। इसलिए, क्या ऐसा नहीं लगता कि हममें से प्रत्येक के लिए इस बात को समझना ज़रूरी है कि इस प्रकार की परिस्थितियों को कैसे बदला जा सकता है?

हो सकता है, हम इम्तिहान पास लें, हमें कई तरह की नौकरियां मिल जाएं, परंतु भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या का आधिक्य एक बड़ा प्रश्न है, जहां अनेक तरह के भाषाई और धार्मिक विभाजन हैं, युद्धों के फूट पड़ने की आशंका हमेशा बनी रहती है, सुरक्षा कहीं नहीं है। हमारे आसपास सब कुछ विखंडित होता जा रहा है। इस समस्या को सुलझाने के लिए, क्या जांच-पड़ताल करना ज़रूरी नहीं है? एक ऐसी जांच-पड़ताल जो सतही न हो, जो कोरा वाद-विवाद न हो, जिसका उद्देश्य एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के विरोध में या एक विचारधारा को दूसरी के विरोध में खड़ा करना न हो, बल्कि जिसके द्वारा हममें से हर कोई इसकी ठोस सच्चाई का पता लगा पाए। इसमें संदेह नहीं कि सत्य सूचना या जानकारी से एकदम भिन्न बात है। न तो लड़ाइयों ने, न आधुनिकतम आणविक विनाशकारी हथियारों ने, और न ही किसी भी प्रकार की कट्टर धार्मिक अथवा राजनीतिक विचारधारा ने किसी भी समस्या का निदान किया है। इसलिए हम, यानी आप और मैं, किसी विचारधारा या पद्धति पर निर्भर नहीं रह सकते, बल्कि हमें वास्तव में स्वयं ही यह पता लगाने का प्रयत्न करना होगा कि शिक्षित होने का कुल आशय आखिरकार क्या है, और यही प्रश्न हमारे लिए विचारणीय है।

क्या परीक्षाएं पास कर लेने और नौकरी पा लेने पर शिक्षा का कार्य पूर्ण हो जाता है? क्या शिक्षा एक ऐसी सतत प्रक्रिया नहीं होती जो हमारी चेतना के, हमारे अंतस् के भिन्न-भिन्न तलों पर, अनेक गतिविधियों में, निरंतर चलती ही रहती है? इसके लिए सिर्फ जानकारी के दावे की नहीं बल्कि वास्तविक समझ की दरकार होती है। हर धर्म, हर अध्यापक, हर राजनीतिक प्रणाली, ये सब हमें यह बताने में लगे हैं कि हम क्या करें, क्या सोचें और क्या आशाएं रखें। परंतु हमारे लिए क्या अब यह ज़रूरी नहीं हो

गया है कि हममें से हरएक खुद ही इस पर विचार करे? आज की वास्तविक आवश्यकता यही है कि अपने लिए हम स्वयं ही प्रकाश बनें, परंपरा की शक्ति से पोषित प्रभुतावादी प्रवृत्ति से जीवन को मुक्त रखें ताकि हममें से प्रत्येक अपने ही भीतर अपना प्रकाश बन सके। वैसा हो पाने के लिए यह खोज लेना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि अपने भीतर वह प्रकाश कैसे जाग्रत हो, उस प्रकाश के प्रकट होने के लिए हम क्या कर सकते हैं।

अतः शिक्षा का कार्य क्या यह नहीं है कि समग्र क्रांति लाने में वह मनुष्य की सहायता करे? हममें से अधिकांश आंशिक क्रांति के बारे में सोचते हैं, चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक। परंतु जिस क्रांति की बात मैं कह रहा हूं वह हर स्तर पर, मनुष्य की चेतना, उसके जीवन और अस्तित्व में होने वाली संपूर्ण क्रांति है। पर उसके लिए बहुत गहरी समझ का होना आवश्यक है। यह किसी सिद्धांत या विचार-पद्धति का परिणाम नहीं होती। इसके विपरीत, किसी भी वैचारिक संरचना के दायरे में कोई क्रांति घटित नहीं हो सकती, यह संरचना अपना एक विशिष्ट प्रभाव तो छोड़ सकती है, पर वह प्रभाव क्रांति नहीं है। परंतु आज जिस क्रांति की आवश्यकता है, वह केवल तब संभव है जब मनुष्य का मन जिस रीति से कार्य कर रहा है उसकी पूरी समझ हममें हो, और यह समझ किसी धर्म विशेष या किसी विशेष दार्शनिक सिद्धांत जैसे मार्क्सवाद से या किसी व्यवस्था विशेष जैसे पूंजीवाद से नहीं आ सकती। तात्पर्य यह है कि जब एक संपूर्ण प्रक्रिया के रूप में स्वयं की समझ हममें होगी, तभी वह क्रांति संभव है। मुझे ऐसा लगता है कि एकमात्र वैसी क्रांति ही स्थायी शांति स्थापित कर पाएगी।

जाहिर है इसका मतलब होगा मन का संस्कारबद्धता से मुक्त होना, क्योंकि हम सभी अपने पर्यावरण, संस्कृति, धर्म, राजनीतिक अथवा आर्थिक व्यवस्था और जिस समाज में हम रहते हैं उसके द्वारा, विभिन्न प्रकार से संस्कारबद्ध हो जाया करते हैं। बिलकुल प्रारंभ से अपनी मृत्यु होने तक हमारे मन निरंतर इस प्रकार ढाले जाते हैं कि हम जीवन की समस्याओं का सामना एक हिंदू या ईसाई अथवा कम्युनिस्ट या किसी और प्रकार की पहचान से जुड़े रहकर करते हैं। जीवन जटिलताओं से भरपूर है, यह सतत गतिशील रहता है परंतु फिर भी हमारे जीने के तौर-तरीके संस्कारग्रस्त मन के द्वारा तय किए जाते हैं, और ऐसा मन जीवन की समस्याओं को अपनी सीमाओं के दायरे में ही ग्रहण करता है। इसलिए यदि हमें इस समस्या का समाधान करना है तो क्या यह महत्त्वपूर्ण नहीं होगा कि यह मालूम करें कि मन को संस्कारमुक्त कैसे किया जाए ताकि समस्याओं को महज़ सुलझाते रहने की बजाय समस्या का सीधे-सीधे सामना किया जा सके?

हममें से अधिकांश समस्या का हल खोजते हैं। किंतु महत्त्वपूर्ण यह है कि समस्या से सीधे-सीधे कैसे निपटा जाए। यदि मुझे यह मालूम हो कि

समस्या का सामना प्रत्यक्ष रूप से कैसे किया जाता है तो मुझे हल खोजने की ज़रूरत नहीं रहेगी। मैं किसी भी समस्या का—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, काम-भावना से जुड़ी समस्या का—सीधा सामना नहीं कर पाता, इसलिए जब भी वह उत्पन्न होती है मैं तत्काल कोई उत्तर खोजने लगता हूं ताकि उससे छुटकारा पा सकूं। परंतु यदि मुझे यह पता हो, यदि मैं समस्या का सीधे-सीधे सामना करने में सक्षम होता हूं तो मैं उत्तर ढूंढ़ने की कोशिश नहीं करता। अब मैं समस्या से सीधे-सीधे निपट लूंगा और उसका समाधान कर लूंगा या मुझे पता होगा कि इसके बारे में क्या किया जाए। परंतु जब तक मुझमें यह जानने की अथवा स्वयं पता लगा सकने की क्षमता नहीं होगी तब तक मैं किसी अन्य व्यक्ति के पास, किसी गुरु के पास जाता रहूंगा या किसी दार्शनिक विचार या प्रणाली का सहारा खोजता रहूंगा। सभी गुरु, दर्शनशास्त्र के सारे शिक्षक असफल रहे हैं क्योंकि वे हमें यंत्रमानव बना देते हैं, वे हमें बताते हैं कि हम क्या करें। और वे हमसे जो कुछ कहते हैं उसे करने में, उनका अनुकरण करने की प्रक्रिया में ही हम और अधिक समस्याएं उत्पन्न कर बैठते हैं।

इसलिए हमें क्या करना है इसे जानने की बजाय क्या यह समझना अधिक ज़रूरी नहीं है कि हम विचार कैसे करें और मन को तमाम संस्कारग्रस्तता से कैसे मुक्त करें? संस्कारबद्ध मन समस्याओं को अपनी सीमाओं के दायरे में ही ग्रहण करेगा, उन्हें कोई अलग अर्थ प्रदान करेगा। और सीमाबद्ध मन जब भी समस्याओं का सामना करता है उनमें इजाफा ही करता है। इसलिए इस बात की जांच की जानी महत्त्वपूर्ण है कि क्या मन को उसके स्वनिर्मित दायरों से स्वतंत्र किया जाना संभव है ताकि जीने की जटिलताओं का, जीवन की समस्याओं का वह सीधे सामना कर सके? मैं समझता हूं कि वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि आप कम्युनिस्ट हैं, सोशलिस्ट हैं या कुछ और हैं, बल्कि यह है कि जीने की इतनी अधिक जटिल समस्याओं का पूरी तरह नये ढंग से, एक नये मन के साथ—एक ऐसे मन के साथ जिस पर संस्कारों का बोझ न हो, जो निष्कर्षों से मुक्त हो —सीधे-सीधे सामना करने योग्य कैसे बनें।

क्या यह संभव है कि मन नया और ताजा हो, सुस्पष्ट हो तथा किसी भी मलिनता से अछूता हो ताकि अस्तित्व के जीवंत प्रश्नों से प्रत्यक्ष संपर्क कर सके? मैं कहता हूं कि यह अवश्य संभव है। हममें से अधिकांश का सोचना यह है कि मन को संस्कारों से मुक्त कर पाना असंभव है। हम केवल यही सोचते हैं कि मन को सुसंस्कारित ही किया जा सकता है, इसे बेहतर आकार दिया जा सकता है, कर्म के अपेक्षाकृत उत्कृष्ट सांचे में ढाला जा सकता है, परंतु हमने स्वयं से यह कभी नहीं पूछा है कि क्या मन अपने आपको पूरी तरह से संस्कारमुक्त कर सकता है? पता नहीं आपने इस बारे में कभी सोचा है या नहीं, क्योंकि हममें से अधिकांश इसी बारे में सोचा

करते हैं कि सुधार कैसे करें, बेहतर कैसे बनें, किस तरह बदलें—हम बदलाव, सुधार, बेहतरी, जैसे कि अधिक अच्छे सामाजिक संबंध, पूंजीवाद का संशोधन, तौर-तरीकों में बदलाव आदि में ही लगे रहते हैं। परंतु हम अपने आप से यह प्रश्न कभी नहीं पूछते कि मन के लिए सभी संस्कारों के बंधन से स्वयं को मुक्त कर पाना संभव है या नहीं, ताकि यह जीवन का पूरी तरह से सामना कर सके—और यहां जीवन का तात्पर्य सिर्फ जीविकोपार्जन तक सीमित न हो कर युद्ध और शांति की समस्या, परम सत्य से जुड़े प्रश्न, ईश्वर और मृत्यु की समस्या, यह सब कुछ है। क्या किसी संस्कारबद्ध मन के लिए यह संभव है कि वह इस सब को, इस संपूर्ण प्रक्रिया को समझ पाए? इसलिए बिलकुल प्रारंभ से लेकर जब तक हम विश्वविद्यालय से पढ़कर बाहर नहीं आते तब तक, क्या यह कार्य शिक्षा का ही नहीं है कि वह हमें विभिन्न प्रकार से संस्कारित करने वाले प्रभावों को समझने में, और उन प्रभावों को कैसे सुधारा जाए यह जान पाने में, हमारी मदद करे ताकि हम हर समय अपने आप को पूर्ण क्रांति के दौर से गुजरता हुआ पाएं?

मन किस ढंग से कार्य करता है, यह जानना बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि शिक्षा का कार्य कुछ परीक्षाएं पास कर हमें नौकरियां पाने के योग्य बनाना ही नहीं है, बल्कि यह समझने में हमारी मदद करना भी है कि मन किस प्रकार से काम करता है। क्योंकि मन के कार्य करने का तरीका ही अनेक उपद्रवों का कारण है, यही अनेक युद्धों को जन्म देता है। हालांकि हमारे पास पर्याप्त वैज्ञानिक जानकारी है जिससे कि मनुष्य की सारी ज़रूरतें पूरी की जा सकती हैं और वह शारीरिक-मानसिक रूप से स्वस्थतापूर्वक जी सकता है, परंतु फिर भी ऐसा जीवन असंभव बना हुआ है क्योंकि मनुष्य का संस्कारित मन—ईसाई, हिंदू, भारतीय, पाकिस्तानी, कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट, आस्तिक एवं नास्तिक आदि—ऐसा नहीं होने देता। अतः हममें से हरएक के लिए मन को समझना क्या बहुत ज़रूरी नहीं है? शंकर, बुद्ध अथवा मार्क्स के अनुसार नहीं, बल्कि अपनी स्वयं की प्रज्ञा की रोशनी में समझना कि हमारा मन किस तरह से कार्य करता है। यदि हम यह समझ सकें तो यह सबसे बड़ी क्रांति होगी और उस क्रांति से कार्यों, गतिविधियों का एक नया सिलसिला आरंभ हो सकेगा।

इसलिए प्रश्न यह है कि मन को किस तरह से समझा जा सकता है। समझ शब्द का अर्थ क्या है? क्या समझ से हमारा तात्पर्य केवल शाब्दिक स्तर से है, क्या यह सिर्फ ऊपरी तौर पर है या यह ऐसी समझ है जो मन के काम करने के तौर-तरीकों के निरीक्षण से आती है, जब उसमें सजगता होती है, बोध होता है, जब हम मन के क्रिया-कलापों पर अपनी राय नहीं देते, उनकी तुलना नहीं करते बल्कि इतने गहन रूप से उनको देखते भर हैं कि मन की गतिविधि का पूरी तरह अंत हो जाता है। आप समझ रहे हैं न?

जो एक समस्या तमाम दूसरी समस्याओं का सबसे बड़ा कारण है वह है युद्ध की समस्या। और भी अनेक समस्याएं हैं—जैसे घृणा की समस्या, प्रेम की समस्या या क्या किसी परम सत्य का अस्तित्व है, ईश्वर है या नहीं। हम उन्हें तब ही समझ सकते हैं जब हम उन पर मुक्त और शांत मन से विचार कर पाएं—जब हम किसी निष्कर्ष से बंधे न हों, जब हमारा मन 'मैं जानता हूं कि इस समस्या से कैसे निपटा जाता है' ऐसा न कहे, बल्कि वह इस योग्य हो कि सारे अभिमतों से, सारी तुलनाओं से मुक्त रहते हुए उन पर ध्यान दे सके। इस बारे में हमारी एक कठिनाई यह भी है कि हमारे मन किसी तय लीक पर चलने के लिए प्रशिक्षित किए गए हैं। आप जानते ही हैं कि मन के कार्य चेतन और अवचेतन तलों पर होते हैं और हमारे अधिकांश क्रियाकलाप चेतन तल पर होते हैं, अपने मन की अवचेतन प्रक्रिया के बारे में हम कुछ नहीं जानते। हमें रोजी-रोटी कमानी होती है, हम पूजा करते हैं या किसी का अनुसरण करते हैं—यह सब हम सतही मन से किया करते हैं। क्या यह ज़रूरी नहीं है कि अवचेतन मन को समझा जाय क्योंकि वही तो हमें दिशा-निर्देश देता है? अचेतन मन को समझ पाने के लिए यह ज़रूरी है कि चेतन मन शांत हो रहे, और यह तब ही संभव होता है जब स्वयं को समझते हुए, रोज़मर्रा के क्रियाकलापों के दौरान मन को समझते हुए, मैं अपने मन की संपूर्ण प्रक्रिया को सामने ले आता हूं—जब मैं अपने द्वारा प्रयोग किए जाने वाले शब्दों, अपनी आदतों, अपने बातचीत करने के ढंग, परंपराओं और रीति-रिवाज़ों आदि उन सारी चीज़ों के प्रति सजग रहता हूं जिन्हें मैं केवल दूसरों से किए जाने वाले अपने व्यवहार में ही देख सकता हूं।

अतः मन को समझने के लिए मुझे अपनी संपूर्ण प्रक्रिया की खोज करनी होगी। जब मैं दूसरों से अर्थात समाज से अपने संबंधों के यथार्थ स्वरूप को खोलकर सामने ले आता हूं तो मेरे भीतर एक समग्र क्रांति घटित होती है, और यही वह क्रांति है जो जीवन के इन सतत द्वंद्वों का, अस्तित्व की इन कष्टदायी और असाधारण समस्याओं का सही ढंग से सामना कर सकती है।

शायद आपमें से कुछ लोग प्रश्न पूछना चाह रहे होंगे। उत्तर कहीं नहीं हैं। केवल समस्या ही होती है, और यदि हम किसी उत्तर की अपेक्षा करने लगते हैं तो हम समस्या को कभी समझ नहीं पाएंगे। यदि मेरा मन समस्या के हल की चिंता में डूबा रहता है तो मैं वास्तव में समस्या की जांच नहीं कर रहा हूं, मैं केवल यह चिंता कर रहा हूं कि समाधान कैसे मिले, इसे हल कैसे करें।

आप इस आशा से प्रश्न पूछते हैं कि मैं आपको उसका उत्तर दूंगा। मेरी दृष्टि यह है कि केवल समस्या ही होती है, उत्तर नहीं होता। मैं यह स्पष्ट करूंगा कि ऐसा क्यों है। यदि मैं समस्या को समझ लेता हूं तो उत्तर खोजने

की ज़रूरत नहीं रह जाती है। परंतु समस्या को समझ सकने के लिए अद्‌भुत प्रज्ञा का होना आवश्यक है, जो तब नहीं हो सकती जब मैं उत्तर की चिंता करने लगता हूं। उदाहरण के लिए मृत्यु की समस्या को देखें, यदि मैं उससे जुड़े सभी पहलुओं को समझ सकूं तो समस्या समाप्त हो जाती है, परंतु इस प्रकार की समझ तभी होती है जब भय नहीं होता।

प्रश्न : एक महानुभाव पूछते हैं—शंकर के इस कथन से आप कितना सहमत हैं कि मन को पूर्ण रूप से मिटा दिया जाना चाहिए?

कृष्णमूर्ति : चूंकि मैंने शंकर को नहीं पढ़ा है इसलिए इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिए संभव नहीं है। परंतु मैं यह सोचता हूं कि हमारे लिए महत्त्वपूर्ण यह होगा कि हम शंकर अथवा बुद्ध के वचनों को दोहराने के बदले स्वयं ही इस बारे में पता लगाएं। हममें से अधिकतर लोगों की कठिनाई यह है कि हम बहुत सी बातें पढ़ लेते हैं, हमें यह पता होता है कि किसने क्या कहा, पर हम यह नहीं जानते कि हम क्या सोचते हैं। सत्य कुछ ऐसा नहीं है जिसे आप किसी पुस्तक या किसी शिक्षक के माध्यम से पा सकें, इसे तो आपको स्वयं ही खोजना होगा। सत्य कोई परम सत्य नहीं है बल्कि रोज़मर्रा के जीवन की सीधी-सादी सच्चाई है, कोई भी समस्या कैसे हल हो सकती है, इसकी समझ से जुड़ा है सत्य, और किसी समस्या का हल केवल उसी स्तर पर होनेवाली क्रांति के द्वारा कभी नहीं पाया जा सकता।

इसलिए यह पता लगाया जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि हम विचार कैसे करें। यदि आपका मन किसी सत्ता या प्रामाण्य के तले या अन्य विश्वासों के बोझ तले दबा हुआ है तो आप विचार नहीं कर सकेंगे। बुद्ध, ईसा या शंकर का सत्य, आपका सत्य नहीं हो सकता। सत्य हममें से किसी का नहीं है। इसे तो खोजना होता है। इसे केवल तभी पाया जा सकता है जब मैं अपने मन की पूरी प्रक्रिया को समझने लगूं। क्योंकि मन समय का परिणाम है, और जब तक मैं समय के ढांचे में रहकर विचार करता हूं तब तक मुझे सत्य नहीं मिल सकता। इसलिए यदि आप मेरे वक्तव्यों से शंकर अथवा बुद्ध के वक्तव्यों की तुलना करते हैं, तो आप वास्तविकता का कभी पता न लगा पाएंगे। लेकिन यदि आप अपने मन को कार्य करते समय ध्यान से देखेंगे तो उसकी वास्तविकता को जान लेंगे। इस प्रकार ध्यानपूर्वक देखना ही एकमात्र मुक्तिदायक तत्व है, आर्थिक या किसी अन्य प्रकार की क्रांति इसमें आपकी सहायता नहीं कर सकेगी।

प्रश्न : क्या किसी ऐसी वस्तु का अस्तित्व है जो परम सत्य हो, काल से परे हो, अपरिमेय और नित्य हो?

कृष्णमूर्ति : क्या सत्य कुछ ऐसा नहीं है जिसे क्षण-प्रतिक्षण खोजा जाए? क्या उसे ऐसी हस्ती के रूप में, जो सतत, परम स्वतंत्र और नित्य

हो, पाया जा सकता है? सतत, परम स्वतंत्र और नित्य आदि सारे शब्द काल पर निर्भरता दर्शाते हैं और जिसका अस्तित्व काल पर निर्भर है वह सत्य नहीं हो सकता। सत्य केवल क्षण-प्रतिक्षण होता है और वह सतत नहीं हो सकता। यदि कोई सतत है भी तो वह है स्मृति, और स्मृति किसी भी तरह का प्रक्षेपण कर सकती है, स्मृति हर प्रकार का भ्रम उत्पन्न कर सकती है। परंतु जो सत्य है उसे खोज पाने के लिए मन का काल की प्रक्रिया से मुक्त होना ज़रूरी है, मन का स्मृति से, अनुभवकर्ता तथा जिसे अनुभव किया जाता है उस विषय से मुक्त होना आवश्यक है। सत्य क्या है इसे जानने के लिए मन का बिना निरंतरता के क्षण-प्रतिक्षण मुक्त होते रहना आवश्यक है।

प्रश्न : आप कहते हैं कि सत्य ज्ञान के परे है। संस्कारमुक्त मन का ज्ञान सत्य होता है या मिथ्या होता है?

कृष्णमूर्ति : मैं प्रश्न को नहीं समझ पा रहा हूं। हमारी मुश्किल यह है कि हम किसी भी बारे में तत्काल ही कोई सिद्धांत बनाने लगते हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि सत्य क्या है, हम यह जानना चाहते हैं कि ईश्वर क्या है, पर हम यह नहीं जानते कि लोभ की प्रवृत्ति से मुक्त रहकर कैसे जिया जाता है। इसे समझने के बजाय, हम, सत्य क्या है, इस बारे में चर्चा करना चाहते हैं, परंतु लोभ की प्रवृत्ति से ग्रस्त मनुष्य यह कभी नहीं जान सकेगा कि सत्य क्या है। परंतु यदि मैं लोभ की संपूर्ण प्रक्रिया को, 'और अधिक' की लालसा को समझने लगता हूं तो शायद मैं यह समझ पाऊं कि वास्तविकता क्या है।

प्रश्न : 'केवल अपनी चिंता करते रहने का मतलब है अन्य लोगों की तरह से सोचना।' ऐसा है क्या?

कृष्णमूर्ति : क्या जीवन ऐसा ही नहीं है? क्या इस समय हमारे सोचने का तरीका औरों से कुछ भिन्न है? केवल अपनी चिंता करते रहना औरों की तरह से सोचना है। हम सभी किसी-न-किसी विशेष ढंग के विश्वास या अविश्वास आदि से जकड़े हुए हैं इसलिए हम स्वतंत्र रूप से विचार नहीं करते, हम रचनात्मक ढंग से नहीं सोचते, इस तरह हम सभी एक जैसे ढंग से सोचा करते हैं। यदि आप कम्युनिस्ट हैं तो एक कम्युनिस्ट के नज़रिए से विचार करते हैं, और यदि आप हिंदू हैं तो हिंदू की तरह से विचार करते हैं। मुक्त चिंतन के लिए आपको इस तथ्य के प्रति सजग होना होगा कि आप भी औरों की तरह ही सोचते हैं; फिर आपको यह समझना होगा कि आप किसी और की तरह क्यों सोचते हैं, आप संस्कारग्रस्त क्यों हैं, और औरों की तरह चिंतन करने से जुड़ी तमाम बातों को, कारणों और परिणामों को समझना होगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि स्वतंत्र रूप से, समग्र रूप से क्रांतिकारी ढंग से सोचने का अर्थ है बहुत बड़े खतरे का सामना करना, है न? हो सकता है इस कारण आपको अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़े।

स्वतंत्र रूप से विचार करने का मतलब है संस्कारबद्धता से मुक्त हो जाना। परंतु हम सभी अपने-अपने खास तरीकों से, सीमित ढंग से संस्कारित हो जाया करते हैं। अतः जब मैं यह जान लेता हूं कि मुझे एक हिंदू की तरह से संस्कारबद्ध कर दिया गया है, और यदि मैं अपने आपको उस प्रकार की संस्कारबद्धता से मुक्त कर लेता हूं तो केवल तभी मेरे लिए पूर्ण रूप से क्रांतिकारी हो पाना संभव होता है—न कि 'इस' या 'उस' की तरह होना। परंतु पहले तो मुझे यह समझना होगा कि मैं संस्कारबद्ध हूं, पर इने-गिने लोग ही यह स्वीकार कर पाते हैं। मैं संस्कारबद्ध हूं यह जान पाने के लिए और संस्कारबद्धता से मन को मुक्त करने की चेष्टा करने हेतु अत्यंत पैनी अंतर्दृष्टि, अनवरत प्रयत्न और सतत जागरूक रहने की ज़रूरत होती है—एक ऐसी जागरूकता ज़रूरी होती है जिसमें न निर्णय है न तुलना। तब आप पाएंगे कि मन नितांत मौन, एकदम निश्चल हो जाता है। तभी मन जान पाएगा कि सत्य क्या है, स्वतंत्रता क्या है।

प्रश्न : मनुष्य गरीबी और भय में जी रहा है। ऐसे मनुष्यों के समाज के लिए रोटी और सुरक्षा ही भगवान है। इसके अलावा गंभीर व्यक्ति इन्हें क्या दे सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : ऐसी क्रांति लाना जिसमें प्रत्येक मनुष्य को रोटी और सुरक्षा प्राप्त हो, क्या वास्तविक क्रांति है? क्या क्रांति केवल आर्थिक धरातल पर होती हे? आप समझ रहे हैं?

हम देख रहे हैं कि गरीबी है, भूख है, चारों ओर कई तरह के आर्थिक क्लेश हैं। गंभीर सोच वाले व्यक्ति वर्तमान में बदलाव की ज़रूरत को देखना, महसूस करना चाहते हैं। यह बदलाव किस स्तर पर लाया जाना चाहिए? क्या केवल आर्थिक स्तर पर बदलाव लाना काफी है? या मनुष्य की सोच में एक संपूर्ण क्रांति लाना आवश्यक है? यदि ऐसी एक संपूर्ण क्रांति लाना संभव है—और मैं कहता हूं कि यह अवश्य ही संभव है—तो वही समस्याओं के समाधान का एकमात्र तरीका हो सकता है।

वास्तविक क्रांति केवल तभी संभव है जब आप अपने जीने की संपूर्ण प्रक्रिया को समझने लगें, अर्थात आप अपने सोच-विचार के, अपने जीवन जीने के तौर-तरीकों को समझने लगें और आप हिंदू या ईसाई न बने रहें। जब आप समग्र मानव होते हैं, केवल तभी आर्थिक समस्या हल हो सकेगी, यह किसी अन्य तरीके से हल न होगी।

प्रश्न : व्यक्तित्व क्या होता है? इसे निर्मित करने के लिए क्या करना होगा?

कृष्णमूर्ति : आप व्यक्तित्व के बारे में ऐसे बात कर रहे हैं मानो यह कोई भवन निर्माण का मामला हो। व्यक्तित्व निर्माण की कामना ही अपने आपको चारों ओर से बंद कर लेना है। हम यहां जिसकी चर्चा कर रहे हैं

वह कोट, टाई, शर्ट-पैंट, या वाक्-चातुर्य आदि से, व्यक्तित्व के निर्माण से नितांत भिन्न चीज़ है। हम यहां स्व-सुधार के बारे में नहीं बल्कि उससे एकदम अलग बात कर रहे हैं, हम यहां स्व को मिटाने की, उस स्व का अंत करने की बात कर रहे हैं जो हिंदू है, जो प्रोफेसर है, जो राजनीतिक या धार्मिक नेता के रूप में है, जो कहता है, 'मुझे अपने देश की रक्षा करनी होगी', जो कहता है, 'मैं ईश्वरीय वाणी को जानता हूं।' यही वह स्व है जिसका अंत हो जाना आवश्यक है ताकि संसार ठीक से जी सके।

प्रश्न : यह ठीक है कि मन को संस्कारमुक्त किया जाना आवश्यक है, पर यह होगा कैसे?

कृष्णमूर्ति : यदि आप यह मान लेते हैं कि मन का संस्कारमुक्त होना आवश्यक है तो फिर आप मन को संस्कारमुक्त बनाने के लिए क्या करेंगे?

मैं समझता हूं कि हममें से ज्यादातर लोग मन के संस्कारमुक्त होने के महत्त्व को देख पाते हैं। परंतु वस्तुतः हममें से अधिकांश यही महसूस करते हैं कि मन को और अधिक बेहतर बनाया जा सकता है, उसे अधिक अच्छे संस्कार दिए जा सकते हैं। यह एक बहुत बड़ी गलतफहमी है। समस्या आपके मन को या मेरे मन को संस्कारमुक्त करने की नहीं, बल्कि यह है कि मन संस्कारबद्ध कैसे होता है।

शिक्षा, परंपरा, परिवार, समाज, धर्म, विश्वास आदि के माध्यम से मन संस्कारबद्ध होता है, है, कि नहीं? परंतु परंपरा, विश्वास, अनुभव का भी कारण मूलतः कामना ही है। मन कामना से शासित होकर निरंतर संग्रह करने में, अधिकार जमाने में लगा रहता है, यही प्रवृत्ति मन को संस्कारबद्ध कर देती है। तब आप प्रश्न करेंगे, 'मैं इच्छा पर अंकुश कैसे लगाऊं?' आप इच्छा पर अंकुश नहीं लगा सकते। परंतु यदि आप इच्छा की पूरी प्रक्रिया को समझ लेते हैं तो यह संभावना बनती है कि इच्छा का अंत हो जाए।

ये समस्याएं इतनी जटिल हैं कि इन पर हल्के-फुल्के ढंग से बातचीत नहीं की जा सकती। आप देख सकते हैं कि हो क्या रहा है। हम कोरे शाब्दिक निष्कर्षों पर आचरण करने की चेष्टा करते हैं। हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि बिना किसी प्रामाण्य को स्वीकार किए, बिना किसी भय के, बिना यह जानने की इच्छा रखते हुए कि हमारा आचरण सही है कि नहीं, क्षण-प्रतिक्षण जीना कितना महत्त्वपूर्ण है।

जीवन को हर क्षण आप कैसे जीते हैं, आप अपने नौकरों से कैसा बर्ताव करते हैं, आप अपने से ऊंचे लोगों से किस ढंग से बोलते हैं, कैसे सोचते और महसूस करते हैं—इस सब में सत्य निहित है—सत्य कहीं दूर हिमालय के उस पार नहीं है। पर आप देख सकते हैं कि इन सारी बातों में हमें कोई रुचि नहीं होती। हमारी रुचि शंकर और दूसरी गहन दार्शनिक बातों में होती है, जो कि पलायन के तरीके भर हैं। परंतु यदि मैं अपने मन

की कार्यप्रणाली को जान लेता हूं, अपने हृदय के तौर-तरीकों को समझ लेता हूं तो एक समग्र क्रांति हो पाने की संभावना होती है, और ऐसी क्रांति ही संसार में शांति और सुरक्षा स्थापित कर सकती है।

10 जनवरी 1954

अपने मन को समझना

मुझे ऐसा लगता है कि अपने मन के तौर-तरीकों को समझे बिना यह संभव नहीं है कि जीवन की अति जटिल समस्याओं को समझा और सुलझाया जा सके। इस प्रकार की समझ किताबी ज्ञान से नहीं आ सकती। मन अपने आपमें एक अत्यंत ही जटिल समस्या है। अपने मन को समझने की प्रक्रिया के दौरान ही शायद हम उन संकटों को समझकर उनसे निजात पा सकते हैं जिनका सामना हममें से हर किसी को रोज़ अपने जीवन में करना पड़ता है।

ऐसा कहा जाता है कि पश्चिम का सांस्कृतिक प्रभाव पूर्व की तथाकथित संस्कृति को विनष्ट करता जा रहा है—मैं नहीं जानता कि आपने भी ऐसा सुना है या नहीं। पश्चिमी संस्कृति के एक हिस्से को—विज्ञान और सैन्यवाद को तथा राष्ट्रवाद को तो हम स्वीकार कर लेते हैं परंतु हम अपनी तथाकथित संस्कृति को भी बनाए रखना चाहते हैं। हालांकि हमने पश्चिमी संस्कृति के एक अंश को ही ग्रहण किया है, उसका एक हिस्सा या एक पहलू ही अपनाया है लेकिन वह भी हमारे जीवन के दूसरे पक्षों को धीरे-धीरे नष्ट करता जा रहा है, विषाक्त करता जा रहा है। जब हम भारत में अपनी आधुनिक जीवन-शैली के बेतुकेपन पर दृष्टि डालते हैं तो यह बात साफ दिखाई देती है। हम जिस प्रकार से बिना सोचे-समझे पश्चिमी संस्कृति की नकल कर रहे हैं, मुझे लगता है कि उस पर विचार किया जाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा नहीं है कि हम पूरी तरह पश्चिमी संस्कृति को अपना रहे हैं बल्कि हम अपनी संस्कृति को कायम रखते हुए उसमें पश्चिमी संस्कृति की मिलावट करते जा रहे हैं। पश्चिमी संस्कृति को पूरी तरह से अपनाना उतना नुकसानदायक नहीं है, जितना कि अपनी संस्कृति में उसकी मिलावट करना।

हम जिस प्रकार से पश्चिम की कुछ खास प्रवृत्तियों को, बिना उन्हें समझे और उनकी जीवन-शैली पर विचार किए बिना ही अपनाते जा रहे हैं, उससे हमारा अपना मन-मस्तिष्क दूषित होता जा रहा है। और इसलिए हमारे दिमागों में पश्चिम और पूर्व की मिलावट हो गई है। मुझे यह लगता है कि यदि हम अपने आपको किसी बाहरी संस्कृति के विषैले प्रभाव से मुक्त रखना चाहते हैं तो हमें अपने मन की प्रक्रिया को समझना होगा। हममें से शायद ही किसी ने दूसरों के तत्त्वदर्शनों को, उनकी चिंतन प्रणालियों को या मान्यताओं को ठीक से, गंभीरता से समझा है, और समझे बिना ही हमने उनमें से कुछ को अपना लिया है और नकल करने लगे हैं।

हमारा मन वास्तव में कैसे काम करता है, इसका हमें पता ही नहीं होता; हमारा ध्यान बस इस तरफ होता है कि इसे कैसे काम करना चाहिए। हमारे पास मन ही एक ऐसा यंत्र है, एकमात्र साधन है जिसके द्वारा हम सोचते हैं, कार्य करते हैं—जिसमें हमारा अस्तित्व है। हम सभी के भीतर जो मन कार्य कर रहा है यदि उसकी क्रिया-प्रणाली को हम नहीं समझ पाते हैं तो किसी भी समस्या से हमारा सामना होने पर वह और अधिक जटिल, और भी अधिक विनाशकारी हो जाएगी। इसलिए मुझे लगता है कि अपने मन को समझना ही पूरी शिक्षा का सबसे पहला मूलभूत कार्य है।

हमारा मन, आपका और मेरा मन, क्या है?—शंकराचार्य या बुद्ध या किसी अन्य के मतानुसार नहीं। मुझे सुनते समय ही यदि मेरे वर्णनों में न जाकर आप अपने ही मन को कार्य करता हुआ देखें तब शायद विचार के समूचे प्रश्न की छानबीन करना लाभकारी और उपयोगी होगा।

हमारा मन क्या है? क्या यह जलवायु का, सदियों से चली आ रही परंपराओं का, तथाकथित संस्कृति का, विभिन्न सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का, परिवेश और मान्यताओं का ही परिणाम नहीं है? धर्म व तथाकथित ज्ञान और सतही जानकारी के माध्यम से समाज हमारे मन पर जो प्रभाव अंकित कर देता है क्या यह उसका ही परिणाम नहीं है? मैं इसका जो वर्णन कर रहा हूं उस पर विचार करने के बजाय आप कृपया खुद अपने मन का निरीक्षण करें क्योंकि इस प्रकार के वर्णन का बहुत कम महत्त्व है। यदि हम अपने मन की गतिविधियों को देख सकें तो जीवन की समस्याओं से वास्ता पड़ने पर संभवतः हम उनका मुकाबला कर सकेंगे।

मन चेतन एवं अचेतन इन दो हिस्सों में बंटा होता है। और यदि हम इन दो शब्दों का प्रयोग करना न चाहें तो इनके स्थान पर क्रमशः ऊपरी और सुप्त इन दो शब्दों का इस्तेमाल कर सकते हैं—अर्थात मन के ऊपरी हिस्से और मन की गहरी पर्तें। अपने संपूर्ण चेतन और अचेतन को, सतही एवं सुप्त को, हमारे सोचने-विचारने की समूची प्रक्रिया को—मन के उस हिस्से को जिसका हमें एहसास है, तथा बचे हुए उस बड़े हिस्से को जिसका हमें एहसास नहीं होता, इस पूरी प्रक्रिया को ही हम चेतना कहते हैं। यह चेतना काल है, सदियों से मनुष्य द्वारा किए गए प्रयत्नों का परिणाम है।

बचपन से ही हमें कुछ खास मान्यताओं पर विश्वास करना सिखा दिया जाता है, हमें विभिन्न धारणाओं, विश्वासों और सिद्धांतों में संस्कारित कर दिया जाता है। हम सभी कई प्रभावों से संस्कारित हैं और हमारे विचार उन्हीं संकीर्ण और अचेतन प्रभावों से उपजते हैं तथा कम्युनिस्ट, हिंदू, मुस्लिम या वैज्ञानिक आदि का रूप ले लेते हैं। स्पष्ट ही है कि स्मृति और परंपरा की पृष्ठभूमि से ही विचार उपजता है और चेतन तथा अचेतन, अर्थात मन के ऊपरी एवं गहरे तलों की इसी पृष्ठभूमि के माध्यम से हम जीवन का सामना करते हैं। जीवन सदा गतिशील रहता है, कभी ठहरा

हुआ नहीं होता। परंतु हमारे मन गतिहीन हो जाया करते हैं। हमारे मन संस्कारित हैं, जकड़े हैं, आस्था, विश्वास, अनुभव और ज्ञान से बंधे हैं। इसी जकड़े हुए, संस्कारबद्ध मन से हम जीवन का सामना करते हैं—उस जीवन का जो निरंतर गतिशील है। अपनी अनेक जटिल एवं तेजी से बदलती जा रही समस्याओं के साथ जीवन कभी ठहरता नहीं और हर दिन, हर पल उसका सामना एक नये ढंग से करना होता है। अतः जीवन से जब हमारा सामना होता है तो मन, जो संस्कारबद्ध एवं ठहरा हुआ है, तथा जीवन, जो निरंतर गतिशील है, दोनों के बीच एक अनवरत संघर्ष जारी रहता है। ऐसा ही होता है न?

जीवन और संस्कारित मन के बीच केवल टकराव ही नहीं होता रहता है, बल्कि जब ऐसा मन जीवन के संपर्क में आता है तो और भी अनेक समस्याएं पैदा करता है। हम सतही ज्ञान जमा कर लेते हैं, प्रकृति को जीतने के नये तरीके खोज लेते हैं, वैज्ञानिक विकास कर लेते हैं। परंतु इस सारे ज्ञान की प्राप्ति के बाद भी मन संस्कारबद्ध ही रहता है, किसी खास मान्यता से बंधा रहता है।

अतः हमारी समस्या, जीवन का सामना कैसे करें यह नहीं है, बल्कि यह है कि अपनी सारी संस्कारबद्धताओं, मान्यताओं और विश्वासों से मन स्वयं को किस प्रकार मुक्त करे? क्योंकि केवल एक मुक्त मन ही जीवन का ठीक से सामना कर सकता है। किसी भी विचार-प्रणाली, विश्वास या किसी विशिष्ट प्रकार के ज्ञान में बंधा मन जीवन का सामना नहीं कर सकता। इसलिए यदि हम नहीं चाहते कि और अधिक समस्याएं पैदा हों, यदि हमें विषाद का, दुख का अंत करना है तो क्या यह अत्यंत ज़रूरी नहीं होगा कि हम अपने मन की कार्य-प्रणालियों को समझ लें? यह समझ किसी के पीछे-पीछे चलने से नहीं आती, किसी अधिकार के माध्यम से नहीं प्राप्त होती, और न ही अनुकरण या बाध्यता से आती है। परंतु जब कोई अपने खुद के मन की गतिविधियों के प्रति वास्तव में सजग होता है तो यह समझ स्वाभाविक रूप से आती है।

हम सभी अपनी मूल प्रवृत्तियों को, अपनी गतिविधियों को, अपने उद्देश्यों को देख सकते हैं, उन्हें समझ सकते हैं और इस प्रकार क्लेशों, युद्धों एवं द्वंद्वों में वृद्धि न करते हुए अस्तित्व की समस्या को सुलझा सकते हैं। सबसे ज़रूरी व बुनियादी बात यह है कि मन के काम करने के तरीकों को समझा जाए। क्योंकि आखिरकार संबंध ही वह दर्पण है जिसमें मन को उसकी कार्य-विधियों में देखा जा सकता है—मैं नौकर से किस तरह बात करता हूं, मैं कैसे अपने आपको महत्त्व देता हूं, आदि। उस स्थिति में मैं देख सकता हूं कि मन किस प्रकार से काम करता है, और साथ ही अपने उद्देश्यों और प्रयोजनों के असाधारण उलझावों को देख सकता हूं—जैसे, जब मैं पूजा करता हूं, अनेक अनुष्ठान करता हूं तो उस व्यक्ति की नकल

करने की बेहूदगी को देख सकता हूं, जो मुझे स्वर्गिक फलों का प्रलोभन देता है। किसी से संबंधित होने की प्रक्रिया में हम अपने मन को देख सकते हैं और यदि हम किसी भी प्रकार का निर्णय न करते हुए निंदा और तुलना से मुक्त रहकर मन को बारीकी से देख सकें, तो इस तरह से देखना मन को उन सभी बंधनों से मुक्त करने लगता है जिनमें मन जकड़ा हुआ होता है।

यदि आप इसे प्रयोग के रूप में करेंगे तो देखेंगे कि आपका मन किसी-न-किसी विशिष्ट मान्यता में, किसी खास परंपरा में जकड़ा हुआ होता है। उस प्रकार के अवलोकन मात्र से ही, जिस किसी विशिष्ट मान्यता या परंपरा में मन बंधा हुआ होता है, उसके प्रति सजग भर होने से, निंदा न करते हुए, निर्णय न देते हुए और छुटकारा पाने की भी इच्छा न रखते हुए —केवल उसके प्रति सजग होने मात्र से आप देखेंगे कि मन बिना कोई चेष्टा किए ही अपने आपको मुक्त करने लगता है।

विवशता, प्रतिरोध अथवा संघर्ष के माध्यम से स्वतंत्रता नहीं आती। एक छोटे से उदाहरण के रूप में मान लीजिए कि आप एक हिंदू या मुसलमान या ईसाई या जो भी आप हैं, उसके अनुसार आप कोई पूजा या कर्मकांड करते हैं। इसे आप परंपरा के प्रभाव में ही करते हैं, इसे करने के पीछे कोई सोच-विचार नहीं होता। और यदि आप इस बारे में कुछ सोचते भी हैं तो इस पूजा से संबंधित आपका विचार भी संस्कारप्रेरित होता है क्योंकि इसे आप हिंदू या ईसाई होने के नाते करते हैं। जब आप पूजा अथवा धार्मिक प्रवचन में शामिल होने का विचार करते हैं तो आपका यह विचार भी संस्कारवश ही है, इसे स्वीकार करने या अस्वीकार करने का आपका ख्याल भी आपकी संस्कारबद्धता से प्रभावित होता है, आप इसे ताज़गी से, एकदम नये तरीके से नहीं सोच सकते क्योंकि आपकी पूरी पृष्ठभूमि या समूची परंपरा, चेतन एवं अचेतन भी, सतही और गहन तलों पर भी हिंदुत्व अथवा इसाइयत के ढांचे में जकड़ी हुई होती है, और फिर भी यदि आप इस पर सोचते हैं तो इस बारे में आपमें स्पष्टता का अभाव होता है, और स्पष्टता के स्थान पर आपमें केवल प्रतिक्रिया हुआ करती है जो एक नये प्रकार की जटिलता को, एक और समस्या को जन्म दे डालती है।

मुझे नहीं मालूम कि आपने अपने भीतर कभी इस सबका अवलोकन किया है या नहीं। यदि आपने अवलोकन किया है तो फिर किसी कर्मकांड से छुटकारा पाना कैसे संभव है? इसे मैं एक ऐसे सामान्य उदाहरण की तरह आपके सामने रख रहा हूं जहां विश्लेषण की प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया गया है। मैं नहीं जानता कि यह बहुत अधिक जटिल, बहुत कठिन है या नहीं। जब किसी भी खास मुद्दे का विश्लेषण किया जाता है तो ऐसे विश्लेषण का संस्कारग्रस्त होना लाज़िमी है क्योंकि विश्लेषण करने वाला खुद ही संस्कारग्रस्त होता है। इसलिए वह जो कुछ भी करेगा उससे उस समस्या की अपेक्षा और भी अधिक जटिल समस्याएं पैदा हो जाएंगी।

क्योंकि आखिरकार हमारी सोच में विचारकर्ता और विचार, द्रष्टा और दृश्य तो होते ही हैं। जब आप पूजा कर रहे होते हैं तो द्रष्टा, विचारकर्ता सदा इसका विश्लेषण करता रहता है कि क्या गलत है, क्या सही है, परंतु यह विश्लेषणकर्ता, विचारकर्ता स्वयं अपने भीतर संस्कारित होता है। इसलिए उसके द्वारा किया जानेवाला विश्लेषण, निरीक्षण, उसके अनुभव संस्कारित होते हैं, सीमित और पक्षपातपूर्ण होते हैं। मैं समझता हूं कि जब तक हम वास्तव में इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण बिंदु को नहीं देख पाते हैं तब तक जो आत्मचिंतन और विश्लेषण आप करते हैं—चाहे वह मनोविश्लेषणात्मक हो या बौद्धिक एवं सैद्धांतिक आधार पर किया गया हो—वह बिलकुल व्यर्थ होता है।

क्या निरीक्षण से, विश्लेषण से भिन्न कोई विचारकर्ता अथवा कोई विश्लेषणकर्ता वास्तव में होता है? क्या विचार के बिना भी कोई विचारकर्ता होता है? यदि विचार नहीं है तो विचारकर्ता भी नहीं होगा। यदि विचारकर्ता मन का ही हिस्सा न होता, यदि वह चेतना का हिस्सा न होता, तो ऐसा विचारकर्ता अपने विश्लेषण और समझ के साथ समस्त संस्कारबद्धता से मुक्त होता। परंतु निरीक्षण करने पर तो पता चलता है कि विचार के बगैर विचारकर्ता भी नहीं रहता। जब मैं विचार कर रहा होता हूं, विश्लेषण या अवलोकन कर रहा होता हूं तो यह 'मैं' उस संस्कारबद्ध विचार का ही परिणाम होता है। मैं एक हिंदू या कम्युनिस्ट के रूप में अवलोकन करता हूं। इस 'मैं' को उत्पन्न करनेवाला विचार भी कम्युनिस्ट पृष्ठभूमि का या हिंदू अथवा ईसाई विश्वास का ही परिणाम होता है। इसलिए जब तक विचार है तब तक विचारकर्ता संस्कारबद्ध रहेगा क्योंकि विचार ने ही विचारकर्ता को उत्पन्न किया है और विचार संस्कारबद्ध होता है, पूर्वाग्रही होने से सीमित होता है।

आपके भीतर विचार लगातार उठते रहते हैं। यदि आप उनमें गहरे जाना चाहते हैं तो यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या विचार का कभी अंत हो सकता है? इसका अर्थ भुलक्कड़पन या विस्मृति नहीं है बल्कि यह ध्यान से जुड़ी एक अत्यंत गहरी समस्या है। जब तक ध्यानकर्ता होता है तब तक ध्यान भ्रम है क्योंकि ध्यानकर्ता तो विचार का परिणाम मात्र है, ध्यानकर्ता उस मन का परिणाम है जो अपने भयों, आशंकाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, कामनाओं, सुखप्राप्ति की लालसा, सफल होकर व भय से अथवा दूसरों के सहारों से मुक्त रहकर जीने की लालसा से संस्कारित और गढ़ा गया होता है। यही सब कुछ विचारकर्ता को निर्मित करता है। हम विचारकर्ता को स्थायित्व का स्वरूप दे देते हैं और मानने लगते हैं कि वह सभी क्षणिक, अस्थायी अनुभवों से कोई पृथक सत्ता है। जबकि वास्तव में विचारकर्ता विचार का ही फल होता है। अगर विचार न हो तो विचारक भी नहीं होगा। इसलिए वास्तव में केवल विचार का ही अस्तित्व होता है जो

स्वयं भी किसी-न-किसी प्रकार के अनुभव की ही कोई प्रतिक्रिया होता है —और वह अनुभव भी हमारी संस्कारबद्धता का ही परिणाम होता है।

सीमित विचार को उत्पन्न करने वाली संस्कारबद्धता से हम कैसे मुक्त हों, यही वास्तव में हमारी समस्या है। ध्यान की समग्र प्रक्रिया यही है—उस ध्यान की नहीं जो दकियानूसी, पारंपरिक और ध्यान के नाम पर केवल भुलावा ही होता है—बल्कि उस ध्यान की, जो तब होता है जब हम विचार करने की अपनी समूची प्रक्रिया को, अपनी जटिल जीवन-शैली में निहित तमाम चिंताओं को समझने लगते हैं। और उसमें विचारकर्ता नहीं होता; बस उस पर से आवरण हटाना और इस तरह से उसका अंत करना मात्र होता है।

इस तरह के ध्यान में मन निश्चल होता है। इस प्रकार की निश्चलता शांत होने के लिए दृढ़निश्चयपूर्वक किए जानेवाले किसी मूढ़तापूर्ण प्रयास से हासिल नहीं होती है।

मन के लिए यह समझना आवश्यक है कि विचार प्रक्रिया का पूरा तात्पर्य क्या है, कैसे यह विचारकर्ता को सृजित करती है; साथ ही यह भी ज़रूरी है कि मन अपने निश्चल होने की सारी प्रक्रिया को समझ ले। मन के ऐसे मौन में ही समस्याओं का निराकरण होता है और संस्कारों में जकड़े विचारकर्ता की मूर्खता के कारण उनमें वृद्धि नहीं होती है।

मुझे सच में लगता है कि आपको, और हर गंभीर व्यक्ति को, इस समस्या की जड़ तक जाना चाहिए क्योंकि पता नहीं कितने संकट हमारे सामने मुंह बाए खड़े हैं और कितनी ही विकट समस्याएं हमारे इर्द-गिर्द चक्कर काट रही हैं।

इसमें संदेह नहीं है कि शिक्षा का कार्य जीवन का सामना कैसे करें इसे बताना नहीं बल्कि मन को उसकी समस्त संस्कारबद्धताओं से, उसके सारे पारंपरिक मूल्यों से मुक्त हो पाने में हमारी मदद करना है, ताकि इस प्रकार से मुक्त हुआ मन, हर रोज़ उठती रहनेवाली अनगिनत समस्याओं का सामना और उनका समाधान कर सके। केवल तभी हम उसका साक्षात्कार कर सकेंगे जिसे हम ईश्वर अथवा सत्य कहते हैं। केवल सत्य ही समस्याओं का समाधान करेगा।

प्रश्न : क्या इच्छाओं और भावावेगों से भरे होना गलत है?

कृष्णमूर्ति : अधिक महत्त्वपूर्ण क्या है?—अपनी इच्छाओं और भावावेगों को समझना या उनकी निंदा करना? जैसे ही आप सही अथवा गलत आदि शब्दों को प्रयोग में लाते हैं, उनकी निंदा शुरू हो जाती है, क्या ऐसा नहीं होता? यदि आपको सचमुच दिलचस्पी है तो कृपया इस पर पूरी तरह से ध्यान दें। बचपन से ही आपको निंदा करना सिखाया जाता है

क्योंकि आपके बड़े-बुजुर्ग यही करते हैं, उनके पास न तो समय होता है और न दिलचस्पी होती है। और किसी भी समस्या से पीछा छुड़ाने का सबसे आसान तरीका यही जान पड़ता है।

प्रश्न यह है : क्या इच्छाओं और भावावेगों का होना गलत है? ध्यान दिए जाने योग्य सबसे पहली बात यह है कि किसी भी प्रकार की निंदा हर विचार या हर चिंतन पर पूर्ण विराम लगा देती है, सभी तरह के अन्वेषण और खोजबीन को समाप्त कर देती है। 'यह करो' और 'यह मत करो' के ढांचे में कार्य करने वाला मन सबसे ज्यादा मूर्ख होता है। दुर्भाग्यवश, हममें से अधिकांश की शिक्षा मूर्खतापूर्ण तरीके से होती है और यदि हम उस कमी को दूर कर सकें तो हम इच्छा की संपूर्ण समस्या के बारे में जांच-पड़ताल शुरू कर सकेंगे, और इसे हम सही या गलत न ठहराते हुए पूरी तरह समझेंगे। क्योंकि यदि हम किसी चीज़ को समझ लेते हैं तो फिर वह हमारे लिए समस्या नहीं रहती। यदि मुझे यह पता हो कि किसी मोटर को, किसी इंजन को कैसे चलाया जाता है तो वह मेरे लिए समस्या नहीं बनता, तब मैं उसे सही या गलत नहीं कहता क्योंकि मुझे यह मालूम होता है कि उसे कैसे चलाना है। यदि मैं इंजन चलाना नहीं भी जानता तो भी मैं उसकी निंदा नहीं करता। ऐसा ही इच्छाओं के बारे में है। उनसे भ्रमित होना या भयभीत होना, उन्हें महत्त्व देना या उनकी निंदा करना बिलकुल बेकार है। यदि मैं इच्छा की कार्य प्रणाली को समझ सकूं तो वह समस्या का रूप नहीं लेती। इच्छा के प्रति भय रखने की प्रवृत्ति ही समस्या पैदा करती है।

यह 'मैं' कहां है? इच्छा क्या है? कृपया उसकी निंदा किए बिना या उसे उचित ठहराए बिना ध्यानपूर्वक सुनें। इच्छा को समझना होगा। इसे समझ लेते ही इच्छा रूपांतरित हो जाती है, एक ऐसा स्वरूप ले लेती है जिससे भय नहीं लगता, जिसका दमन नहीं करना पड़ता।

इच्छा क्या चीज़ है? मैं एक सुंदर, चमचमाती नये मॉडल की शक्तिशाली कार को देखता हूं। उस पर मेरा ध्यान जाता है, फिर उससे मेरा संपर्क होता है, फिर मेरे अंदर संवेदना जगती है और तब इच्छा पैदा होती है। इच्छा बस इतनी ही सरल वस्तु है—किसी वस्तु का बोध होना, उसके संपर्क में आना, उसके प्रति संवेदना उत्पन्न होना और फिर इच्छा का जागना। उस इच्छा के साथ-साथ उस चीज़ को पाने की उत्कंठा पैदा होती है और फिर उससे तादात्म्य की प्रक्रिया शुरू होती है, अर्थात, 'मैं उस कार को पाना चाहता हूं।' इसके बाद ही यह सारी समस्या उत्पन्न होती है कि क्या मुझमें ऐसी इच्छा होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए, और वह इच्छा भी मेरी अपनी पृष्ठभूमि के ही अनुसार संस्कारबद्ध होती है या उस पर प्रश्न मेरी पृष्ठभूमि के ही अनुसार उठाया जाता है। यदि आप अमेरिका में पले-बढ़े हैं तो आप पर निरंतर यह मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ता रहता है कि आपके पास अपनी एक कार होनी चाहिए। अपने पास एक कार होनी चाहिए, आपकी यह

इच्छा उन हालात में समस्या बिलकुल नहीं होती। परंतु यदि आपका झुकाव त्याग-तपस्या, वैराग्य आदि की ओर होने लगे, यदि आप ईश्वर की उपासना में लगना चाहते हैं तब आपके लिए समस्या उठ खड़ी होती है।

इसके अतिरिक्त, सौंदर्य के विभिन्न रूपों की, इंद्रिय-अनुभवों की तथा अनेक ऐसी वस्तुओं की इच्छाएं भी होती हैं जिनकी प्राप्ति के लिए मन में लालसा होती है जैसे कि आराम और सुरक्षा पाने की, स्थायित्व की इच्छा। हम सभी स्थायित्व चाहते हैं—संबंधों में, सुरक्षा में, निरंतरता में। फिर हम सोचते हैं कि कहीं कोई स्थायी ईश्वर है, कोई स्थायी सत्य है आदि-आदि। इस प्रकार की काल्पनिकता केवल सैद्धांतिक, निरर्थक और पांडित्यपूर्ण ही होती है।

यदि आप इच्छा की इस प्रक्रिया को समझ सकें जो वस्तुतः अत्यंत जटिल, अति सूक्ष्म होती है, तो आपके लिए यह संभव होगा कि मन इच्छा के संपूर्ण निहितार्थ को, उसके सभी पहलुओं को देखकर उससे परे जा सके। परंतु हम इसकी संपूर्ण वास्तविकता को समझे बिना ही कहने लगते हैं, 'यह एक सही इच्छा है', 'यह एक गलत इच्छा है' 'सही इच्छाओं को बढ़ावा देना बहुत ज़रूरी है' इत्यादि। यदि हम इच्छा के प्रति इस प्रकार का रुख अपनाते हैं तो मन सिर्फ एक स्वचालित, विवेकशून्य और असंवेदनशील यंत्र बनकर रह जाता है। और तब यह जीवन को जीने की समस्त जटिलता का सामना करने में असमर्थ रहता है।

प्रश्न : मुझे मृत्यु से डर लगता है। मृत्यु क्या है, और मैं मृत्यु के इस डर को कैसे मिटा सकता हूं?

कृष्णमूर्ति : प्रश्न पूछ लेना बहुत आसान होता है। जीवन के उत्तर हां अथवा नहीं में नहीं मिलते लेकिन हमारे मन हां या नहीं में उत्तर पाना चाहते हैं क्योंकि हमें यह कभी नहीं सिखाया जाता कि हम चीज़ों को कैसे देखें और समझें बल्कि यह सिखाया जाता है कि हम क्या सोचें। जब हम पूछते हैं कि 'मृत्यु क्या है, और मैं इससे डरूं नहीं यह कैसे संभव होगा?' तो हम इस बारे में कुछ सूत्र चाहते हैं, कुछ परिभाषाएं चाहते हैं और हम यह कभी नहीं जान पाते कि समस्या पर विचार किस तरह से किया जाए।

आइए देखते हैं कि क्या इस समस्या पर हम मिलजुल कर विचार कर सकते हैं। मृत्यु क्या है? अस्तित्व का मिट जाना, समाप्त हो जाना—क्या इसका यही अर्थ नहीं है? हम जानते हैं कि यह अंत अवश्यंभावी है, इसे हम प्रतिदिन अपने चारों ओर देखा भी करते हैं। पर मैं मरना नहीं चाहता। यह 'मैं' एक प्रक्रिया है—'मैं सोच रहा हूं, मैं अनुभव कर रहा हूं, मेरा ज्ञान, वे सारी चीज़ें जिन्हें मैंने बनाया-बढ़ाया है, वे सारी चीज़ें जिनका मैंने प्रतिरोध किया है, मेरा चरित्र, मेरा सामर्थ्य'। मैं नहीं चाहता कि इस सबका अंत हो, मैं सतत टिका रहना चाहता हूं, अभी मेरा कार्य पूरा नहीं हुआ है,

मैं अपना अंत नहीं होने देना चाहता। परंतु फिर भी अंत तो होना ही है, सीधी-सी बात यह है कि हर स्पंदनशील जैव प्रणाली का कभी-न-कभी अंत होना ही है। परंतु मेरा मन इसे स्वीकार नहीं कर पाता। अतः मैं कुछ आस्थाएं निर्मित कर लेता हूं, निरंतरता की कल्पना कर लेता हूं—मैं इसे सच मान लेना चाहता हूं क्योंकि उस विषय में मेरे पास ठोस सिद्धांत, दृढ़ संस्कार होते हैं—यानी मेरी निरंतरता बनी रहेगी, मेरा पुनर्जन्म होगा।

ऐसी निरंतरता वास्तव में होती है या नहीं, पुनर्जन्म होता है या नहीं, इस बारे में हम विवाद नहीं कर रहे हैं। समस्या यह नहीं है। समस्या वास्तव में यह है कि इस प्रकार के तमाम विश्वासों के बावजूद आप भयग्रस्त रहते हैं, क्योंकि अनिश्चितता हमेशा बनी रहती है, हमें कुछ भी निश्चित तौर पर पता नहीं होता। आश्वासन पाने के लिए हम सदैव लालायित रहते हैं। इसलिए मन, यह जानते हुए कि अंत तो होना ही है, भयभीत होने लगता है, अधिक-से-अधिक समय तक जीने की लालसा करता है, पीड़ा से बचने के अधिक-से-अधिक उपाय तलाशने लगता है। मन, मृत्यु के पश्चात की निरंतरता पर भी विश्वास करने लगता है।

निरंतरता क्या है? क्या निरंतरता समय पर आश्रित नहीं होती?—केवल घड़ी वाले समय पर ही नहीं बल्कि उस समय पर भी जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में चलता है? मैं जीना चाहता हूं; मुझे लगता है कि यह निरंतर प्रक्रिया है जिसका अंत नहीं होता, इसलिए मेरा मन निरंतरता की आशा में लगातार संचय, संग्रह करता रहता है। मन समय के संदर्भ में सोचता है और यदि समय के अंतर्गत इसे निरंतरता मिलती रहे तो यह भयभीत नहीं होता।

अमरत्व क्या है?—एक उच्चतर तल पर, आत्मा के रूप में, या जो भी नाम आप देना चाहें उस रूप में 'मैं' की निरंतरता को ही हम अमरत्व कहते हैं। आप आशा करते हैं कि 'मैं' निरंतर टिका रहेगा। परंतु 'मैं' भी तो केवल विचार के ही क्षेत्र में होता है, नहीं क्या? 'मैं', इसे आप कितना भी श्रेष्ठतर समझें, विचार की उपज होता है और वह संस्कारबद्ध होता है, काल से जन्मा होता है। मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे केवल तर्क के दृष्टिकोण पर ही न समझें, उसके समूचे तात्पर्य को देखें। वास्तविकता में अमरत्व समय से जुड़ी बात नहीं है, अतः उसका मन से भी वास्ता नहीं है और न ही उसका कोई संबंध मेरी लालसाओं, तृष्णाओं, भयों या उत्कंठाओं से है।

हर कोई देखता है कि जीवन समाप्त हो जाता है, अचानक इसका अंत हो जाता है, जो कल जी रहा था हो सकता है आज न जिए, और जो आज जी रहा है शायद कल न जिए। जीवन का अंत तो निश्चित तौर पर होता है। यह एक तथ्य है परंतु हम उसे स्वीकार नहीं कर पाते। आप जो कल थे आज नहीं हैं। अनेक चीज़ें, अनेक संपर्क, प्रतिक्रियाएं, विवशताएं,

प्रतिरोध, अनेकों प्रभाव आदि 'जो था' उसे या तो बदल देते हैं या उसका अंत कर देते हैं। एक मनुष्य जो सचमुच सृजनशील है, उसके लिए अंत एक तथ्य है और वह इसे स्वीकार करता है। परंतु हम इससे राजी नहीं हो पाते क्योंकि हमारे मन संग्रह करने की प्रक्रिया के खासे आदी हो चुके होते हैं। हम कहते हैं, 'मैंने आज यह सीखा है, मैंने कल वह सीखा था।' हम केवल समय की भाषा में, निरंतरता की भाषा में ही सोचा करते हैं। यदि हम निरंतरता की भाषा में न सोचें तो अंत आएगा, मृत्यु होगी, और तब हम सारी चीज़ों को जैसी वे हैं स्पष्टतापूर्वक, सरलतापूर्वक, साफ-साफ देख पाएंगे।

अंत हो जाने के तथ्य को हम स्वीकार नहीं कर पाते क्योंकि हमारा मन निरंतरता में सुरक्षा खोजता है—परिवार में, धन-संपत्ति में, अपने व्यवसाय या जो रोजगार हम करते हैं उसमें। इसलिए हम भयभीत रहते हैं। अमरत्व को केवल वही मन जान पाएगा जो सुरक्षा के लिए संग्रह करते रहने की लोभवृत्ति से मुक्त रहता है, जो निरंतर बने रहने की कामना से मुक्त होता है, परंतु जो मन व्यक्तिगत अमरत्व खोज रहा है, जो 'मैं' निरंतरता चाहता है, वह अमरत्व क्या है इसे कभी न जान पाएगा। ऐसा मन भय और मृत्यु के गूढ़ार्थ को न तो कभी जान पाएगा और न ही उनसे कभी परे जा पाएगा।

प्रश्न : 'विचार करने से समस्या हल नहीं होती, समस्या तो विचार की ही उपज है' क्या यह भी एक प्रकार का विचार नहीं है, या विचार के जिस स्वरूप का आप प्रतिवाद करते हैं यह उससे कुछ अलग तरह की बात है?

कृष्णमूर्ति : जब कोई मनुष्य तर्क के सीमित दायरे को देख लेता है तो वह तर्क से परे चला जाता है। परंतु यह जानना भी उतना ही आवश्यक है कि विचार कैसे किया जाता है, तर्क किस प्रकार से किया जाना चाहिए। और यदि आप यह नहीं जानते कि तर्क कैसे किया जाता है, विचार कैसे किया जाता है, तो उससे मुक्त हो पाना आपके लिए कभी संभव नहीं होगा। हममें से अधिकांश यह नहीं जानते कि चिंतन करना क्या है, हम सिर्फ यह जानते हैं कि हमें क्या सोचना है जो कि एक पूर्णतः भिन्न चीज़ है। परंतु मन की असाधारण जटिलता को जानने के लिए, जिसे दूसरे से नहीं सीखा जा सकता, मन किस प्रकार से कार्य किया करता है इसका स्वयं ही पता लगाने के लिए तो वस्तुतः निरीक्षण करना होगा। मनोविज्ञान अथवा दर्शनशास्त्र के बारे में आप कॉलेज में या किसी व्याख्यान-भवन में जो कुछ सीखते हैं वह एक जीवंत बात नहीं होती, वह तो एक बेजान चीज़ है। परंतु यदि आप अपने नित्यप्रति के जीवन में अपने विचारों और कृत्यों का—जब आप किसी नौकर से अथवा अपनी पत्नी या बच्चे से किस ढंग से बातचीत करते हैं, सौंदर्य के प्रति आप कैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, इस सबका—अवलोकन करते हैं, यदि आप अपने व्यवहार को प्रेरित करने

वाले तत्त्वों पर ध्यान देते हैं तो आप अपने मन के विभिन्न अवरोधों को जानने लगेंगे, मन किस प्रकार से स्वयं को धोखा देता है, विभिन्न बातों को किस प्रकार से तोड़ता-मरोड़ता है, किस प्रकार से तर्क करता है, इसे जानने लगेंगे। उस सबको देख लेने पर आप विचार-मात्र से परे चले जाते हैं, तर्क से परे चले जाते हैं और वहां मुक्ति होती है।

यह कुछ ऐसा नहीं है जिसमें सतही तौर पर रुचि रखी जाय या जिसे औपचारिक ढंग से दोहरा दिया जाए। मुझे सुनते हुए आपमें से कुछ लोग शायद यह कहने लगें, 'बेचारा! उसे तो यह तक नहीं मालूम कि वह क्या कह रहा है। विचार का भला कभी अंत हो सकता है? यदि विचार ही न रहे तो विचार की जटिल समस्या को समझने के लिए वे प्रश्न भी कहां रह जाएंगे जिन्हें मन पूछा करता है?'

हम किस प्रकार से सोच-विचार करते हैं इसका पता लगाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दुर्भाग्यवश हमारे अधिकांश शिक्षाविद् आपको यही सिखाते हैं कि आप क्या सोचें, और आप बस उसे ही दोहराते रहते हैं। यदि आप उसे संस्कृत या अंग्रेजी में या किसी अन्य भाषा में दोहरा पाते हैं तो आप सोचने लगते हैं कि आप प्रकांड पंडित हैं। परंतु आपका मन जिन तौर-तरीकों से कार्य किया करता है उनका पता लगाना, उनका शोध कर पाना और उस बारे में आपने जो कुछ खोजा है उसे किसी अन्य के वचनों को दोहराए बिना कह सकना बहुत बड़ी बात है, यह आपके इनिशियेटिव का, उद्यम का संकेत है, आपके सृजनात्मक जीवन का आरंभ है।

दुर्भाग्यवश भारत में ऊपर से लेकर नीचे तक हम सभी क्लर्क हैं, हम सबको यही सिखाया जाता है कि हमें क्या सोचना है। और यही वजह है कि गहन सृजनात्मक अर्थों में हम कभी क्रांतिकारी नहीं होते। हम बस ग्रामोफोन के रेकॉर्ड जैसे होते हैं—एक ही राग को बार-बार अलापते रहते हैं। इसलिए वास्तविक खोज कभी हो नहीं पाती।

प्रश्न : जीवन का क्या अर्थ है?

कृष्णमूर्ति : जीवन का अर्थ जीना होता है। यदि हममें भय है, यदि हमारा पूरा जीवन अनुकरण करने के लिए, नकल करने के लिए प्रशिक्षित कर दिया जाता है तो क्या हम सच में जी रहे होते हैं? किसी बड़ी हस्ती का अनुसरण करना क्या जीवन है? चाहे वह एक महानतम संत हो, बड़े-से-बड़ा राजनीतिज्ञ या सबसे बड़ा विद्वान हो, जब आप किसी के पीछे-पीछे चलते हैं तो क्या आप जी रहे होते हैं?

यदि आप अपने तौर-तरीकों का निरीक्षण करेंगे तो देखेंगे कि आप किसी-न-किसी का अनुसरण ही करते रहते हैं, इसके सिवा आप कुछ नहीं करते। अनुसरण करते रहने की इस प्रक्रिया को ही हम 'जीना' कहते हैं और अंततः आप कहने लगते हैं, 'जीवन का क्या अर्थ है?' इसका जो भी

अर्थ है वह आपके लिए इसी समय है और यह अर्थ केवल तब आता है जब आप हर सत्ता का सहारा छोड़ चुके होते हैं। सत्ता की मान्यता को छोड़ पाना अत्यंत कठिन होता है।

सत्ता से मुक्त होना क्या है? आप किसी कानून को भंग कर सकते हैं। कानून तोड़ना सत्ता से मुक्ति नहीं है। लेकिन मन किस तरह से सत्ता खड़ी कर लेता है, हममें से प्रत्येक किस तरह से भ्रमित है और किस तरह से इस बारे में सुनिश्चित होना चाहता है कि वह जीवन को सही ढंग से जी रहा है, इस संपूर्ण प्रक्रिया को समझना ही मुक्ति है। चूंकि हम चाहते हैं कि हमें क्या करना है, इस बारे में कोई हमारा मार्गदर्शन करे इसीलिए आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक गुरुओं द्वारा हमारा शोषण किया जाता है। जब तक हम अनुकरण कर रहे हैं, नकल कर रहे हैं, अनुगमन कर रहे हैं, तब तक जीवन की सार्थकता नहीं जान पाएंगे।

जब कोई मनुष्य केवल सफलता पाने के लिए ही प्रयास कर रहा हो तो वह जीवन का अर्थ कैसे जान सकता है? हमारा जीवन ही ऐसा होता है, हम सफलता पाना चाहते हैं, भीतर-बाहर से पूरी तरह सुरक्षित हो जाना चाहते हैं, हम चाहते हैं कोई हमसे कहे कि आप बिलकुल ठीक कर रहे हैं, मुक्ति की दिशा में, मोक्ष-प्राप्ति की ओर ले जाने वाले सही रास्ते पर चल रहे हैं इत्यादि। हमारा सारा जीवन किसी परंपरा का अनुकरण मात्र होता है—फिर वह परंपरा कल स्थापित हुई हो या सहस्रों वर्षों से चली आ रही हो। अपने प्रत्येक अनुभव को हम प्रामाण्य मान लेते हैं ताकि उससे हमें कुछ हासिल करने में मदद मिले। इसीलिए हम जीवन का अर्थ नहीं जान पाते। हम बस भय को ही जानते हैं—कोई हमें क्या कहेगा इसका भय, मर जाने का भय, हमें जो चाहिए वह न मिल पाने का भय, कुछ अनुचित कर बैठने का भय, कुछ अच्छा कर पाने का भय, इत्यादि। हमारे मन इतने अधिक भ्रमित होते हैं, सिद्धांतों में इस तरह से फंसे होते हैं, कि जीवन का हमारे लिए क्या अर्थ है इसकी अभिव्यक्ति हम नहीं कर पाते हैं।

जीवन अपने आप में अद्‌भुत है। जब प्रश्नकर्ता पूछता है, 'जीवन का क्या अर्थ है' तो वह कोई परिभाषा पाना चाहता है। इस प्रकार उसे जो कुछ मिलेगा वह बस परिभाषा ही होगी, कुछ शब्द भर होंगे, और वह जीवन को जीने के गहरे अर्थ, उसके अद्‌भुत वैभव और सौंदर्य के प्रति संवेदनशीलता से अनजाना रहेगा।

प्रश्न : संसार में शांति कैसे स्थापित की जा सकती है? हम और सारा संसार इस प्रयत्न में है कि चारों ओर शांतिपूर्ण वातावरण हो, परंतु फिर भी हम एक और विश्वयुद्ध के खतरे की ओर बढ़ते जान पड़ रहे हैं।

कृष्णमूर्ति : हम शांतिपूर्वक जीना चाहते हैं। क्या आप ऐसा चाहते हैं? क्या आप अपने पड़ोसी से प्रतिस्पर्धा नहीं करते? क्या आपमें भी अपने

पड़ोसी की ही तरह किसी नौकरी को पाने की तीव्र इच्छा नहीं हुआ करती? क्या आप घृणा नहीं करते? क्या आप भी देशभक्ति और उससे जुड़े मूर्खतापूर्ण अंतर्द्वंद्वों सहित अपने आपको भारतीय नहीं कहा करते? यदि आप शांति के विपरीत, ठीक उसके उलट कुछ न कुछ करते रहते हैं, तो आपको शांति कैसे प्राप्त हो सकेगी? जब आप अपने आपको हिंदू, मुसलमान, ईसाई अथवा कम्युनिस्ट आदि कहते हैं, तब तक आप संसार में शांति कभी न पा सकेंगे।

शांति तो साधारण मनुष्य में होती है। जब तक मनुष्य किसी राजनीतिक वर्ग का या किसी ऐसे वर्ग का अनुसरण करता है जो किसी अन्य वर्ग के विरोध में है, जब तक राजनीति महज सत्ता का संघर्ष बनी रहती है, तब तक यह स्पष्ट है कि आप संसार में शांति नहीं ला सकते। राजनीतिज्ञों को लोगों की चिंता नहीं होती, उन्हें केवल सत्ता प्राप्ति की ही चिंता होती है और जब तक बहुदलीय प्रणाली जारी रहती है, तब तक शांति नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि केवल एक ही पार्टी होनी चाहिए। राजनीतिक पार्टियां लोगों की चिंता बिलकुल नहीं करतीं—उनकी रुचि तो इस प्रकार की अलग-अलग विचारधाराओं में हुआ करती है कि लोगों को रोटी किस प्रणाली से दी जाय, और इसलिए लोगों को रोटी दिए जाने के लिए वे वास्तव में कुछ नहीं करते।

जब तक हम युद्ध के रास्ते पर चलते रहते हैं, जब तक हमारे पास सेनाएं हैं, पुलिस हैं, और वकील आदि हैं, तब तक हम युद्ध करते रहेंगे। हम निरंतर अहिंसा की चर्चा करते रहते हैं। परंतु फिर भी हम सेनाएं सुसज्जित करते रहते हैं। अपनी शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से जहां एक ओर हम परस्पर घृणा करने के लिए खुद को तैयार करते हैं वहीं दूसरी ओर हम शांति भी चाहते हैं। राष्ट्र हो, समूह हो, जाति हो,—हममें से हर कोई अंतर्विरोध में जी रहा है। संसार में शांति केवल तब ही हो सकती है जब हममें से प्रत्येक के भीतर का अंतर्विरोध मिट जाए। हममें से प्रत्येक के लिए परमावश्यक यही है कि हम स्वयं ही विचार करें, खोजबीन करें, पता लगाएं। नारे लगाना और झंडे लेकर यहां-वहां घूमते रहना बेकार की बातें हैं।

हम राष्ट्रवादी होना चाहते हैं, हम चाहते हैं कि हमारा अपना एक झंडा हो। क्योंकि इस प्रकार से व्यक्ति किसी महत्तर वस्तु से जुड़कर एक प्रकार की संतुष्टि, एक तरह की सुरक्षा महसूस करने लगता है। भारत, अमेरिका, रूस और अन्य सब स्थानों पर भी यही हो रहा है। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा इस प्रकार की घृणा और आक्रामक विस्तारवाद को बढ़ावा देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और इस तरह से हम केवल पूर्ण महाविनाश की ही तैयारी में जुटे हुए हैं।

शांति निश्चित ही कोई प्रतिक्रिया नहीं है जो किसी भी विशिष्ट प्रणाली अथवा समाज के, विशिष्ट संगठन या खास विचारधाराओं या कार्यों आदि के विरुद्ध होती हो। शांति इस सबसे बिलकुल भिन्न है। यह निस्संदेह तभी आ पाती है जब मानव की संपूर्ण प्रक्रिया को यानी अपने आप को समूचे रूप में समझ लिया जाता है। इस प्रकार का स्व-ज्ञान न तो किसी पुस्तक में पाया जा सकता है और न इसे किसी दूसरे से सीखा जा सकता है। जब आपके हृदय में प्रेम होता है और जब आप अपने जीवन के हर क्षण स्वयं का निरीक्षण करते हैं एवं अपने आपको समझने लगते हैं, तो सत्य प्रकट होता है और उस सत्य से शांति का आगमन होता है।

17 जनवरी 1954

ज्ञान और विशेषज्ञता

मुझे ऐसा लगता है कि ज्ञान एवं विशेषज्ञता का प्रश्न अत्यंत गंभीर प्रश्न है। आइए हम इस पर विचार करें और देखें कि क्या वह मन, जिसे विशेषज्ञता हासिल करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है, जांच-पड़ताल और खोजबीन करने के लिए स्वतंत्र है कि जो कुछ उसे ज्ञात है उससे परे कुछ है या नहीं; क्या वह इस बात की परख कर पाता है कि ज्ञान उसे कहां ले जा रहा है तथा विशेषज्ञता की सार्थकता क्या है?

ज्ञान के अनेक रास्ते हैं और बड़े पैमाने पर अधिक-से-अधिक जानकारी हमारे लिए उपलब्ध की जा रही है। यह सब हमें किस दिशा में ले जा रहा है? ज्ञान का क्या कार्य है? हम देखते हैं कि हमारे चेतन एवं अचेतन जीवन में, एक खास स्तर पर तो ज्ञान आवश्यक है। क्या इस प्रकार का ज्ञान अस्तित्व की संपूर्ण सार्थकता समझने में, उसके अन्वेषण में, बाधक बन सकता है? उदाहरण के लिए मान लीजिए मुझे इसका ज्ञान है कि पुल कैसे बनाया जाता है। क्या वह ज्ञान विचार करने के मेरे तरीकों में आमूल परिवर्तन ला सकता है? हो सकता है यह सतही बदलाव ले आए या सामंजस्य बैठा ले, किंतु विश्व के वर्तमान संकट में ज़रूरी क्या है, मात्र सतही सामंजस्य या आधारभूत क्रांति? मुझे महसूस होता है कि किसी विशिष्ट प्रणाली के अनुसार किए जानेवाले कार्य से घटित होनेवाली क्रांति वस्तुतः क्रांति ही नहीं होती और यदि नये तरीके से सोच-विचार करने वाली कोई नयी पीढ़ी हमें विकसित करनी है तो हमें इसका पता लगाना आवश्यक होगा कि ज्ञान का कार्य क्या है।

ज्ञान क्या है?—शब्दकोश में दिए गए अर्थ या किसी परिभाषा के अनुसार नहीं। क्या किसी विशेष क्रम में स्मृति का संवर्धन करना ही ज्ञान नहीं है? क्या यह किसी खास उद्देश्य के लिए सूचना एकत्रित करने की क्षमता का विकास करना ही नहीं है? इसमें संदेह नहीं कि ज्ञान के अभाव में आधुनिक ढंग का जीवन जी पाना लगभग असंभव है। ज्ञान है स्मृति का संवर्धन करना, जानकारी एकत्रित करना और फिर खास उद्देश्यों, जैसे कि शल्य-चिकित्सा, युद्ध, नये वैज्ञानिक तथ्यों की खोज, इन सब के लिए उस जानकारी का उपयोग करना। क्या यह संभव है कि यह सारी जानकारी मानव-समाज की व्यापक समझ में आड़े आती हो?

जैसा कि मैंने कहा, एक खास स्तर पर ज्ञान अवश्य ही उपयोगी हो सकता है। परंतु यदि हम मानवीय अस्तित्व की समग्र प्रक्रिया को नहीं समझते हैं तो क्या यही ज्ञान मानव की शांति के लिए बाधक नहीं बन जाता? उदाहरण के लिए, हमारे पास ऐसी वैज्ञानिक जानकारी है कि हम

समूची मानव जाति के लिए पर्याप्त अन्न पैदा कर सकते हैं और उनके रहने के लिए स्थान की व्यवस्था भी कर सकते हैं। तो फिर ऐसा क्यों है कि इस वैज्ञानिक ज्ञान का इस्तेमाल नहीं किया जा रहा है? क्या यह हममें से अधिकांश के लिए समस्या नहीं है? क्या यही ज्ञान ही मानवीय समझ और शांति को अवरुद्ध नहीं कर रहा है?

ऐसा क्या है जो युद्धों को रोकने से, लोगों को भोजन-वस्त्र आदि दे पाने से, उनके लिए आवास की व्यवस्था कर पाने से हमें रोकता है? निश्चित ही वह ज्ञान नहीं, बल्कि उससे सर्वथा भिन्न कुछ और ही है। वह है राष्ट्रवाद और निहित स्वार्थ के विभिन्न रूप—पूंजीवाद या साम्यवाद या विशिष्ट धार्मिक समुदाय जो मनुष्य को मनुष्य के साथ नहीं होने देते। क्या आपको नहीं लगता कि हमारे विचार करने के तरीकों में जब तक मूल रूप से बदलाव नहीं आता, तब तक ज्ञान का प्रयोग मनुष्य के लिए और भी अधिक विनाशकारी होगा? शिक्षा प्रदान करनेवाले और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करनेवाले विश्वविद्यालय क्या कर रहे हैं? क्या वे हमारे हृदयों और मन-मस्तिष्कों में कोई आमूल क्रांति ला रहे हैं? मैं समझता हूं कि यही हमारे सामने मूल मुद्दा है। अधिक-से-अधिक सूचनाएं जमा करते जाना, ज्ञान एकत्रित करते जाना उतने महत्त्व की बात नहीं है।

ज्ञान तो स्मृति के माध्यम से मन का अनवरत विकास करते रहना भर है, इसलिए प्रश्न यह है कि क्या ज्ञान के माध्यम से समग्र क्रांति हो पाना संभव है? हो सकता है कि मुझे अनेक तथ्यों की जानकारी हो, मुझे विभिन्न ग्रहों के बीच की दूरी ज्ञात हो, मुझे यह पता हो कि जेट हवाई जहाज किस तरह से उड़ाया जाता है, परंतु क्या यह जानकारी, यह सूचना मेरे सोचने के तरीके में बुनियादी बदलाव ला सकती है? और यदि यह ऐसा नहीं कर सकती तो इससे क्या हासिल होने वाला है? क्या हममें से ज्यादातर के लिए यह एक समस्या नहीं है?

हम इस संसार में शांति चाहते हैं, हम चाहते हैं कि मानव-मानव के बीच सत्ता की लिप्सा के कारण उत्पन्न होनेवाला द्वेष खत्म हो, हम चाहते हैं कि युद्ध बंद हों। यह कैसे किया जाए? सिर्फ ज्ञान इकट्ठा कर लेने से क्या युद्ध बंद हो जाएंगे? या इसके लिए हमारी सोच में भी आमूल बदलाव होना ज़रूरी है? क्या विचार के माध्यम से ऐसी क्रांति लायी जा सकेगी? मैं नहीं जानता कि आपने इन बिंदुओं पर ध्यान दिया है कि नहीं लेकिन मुझे लगता है कि किसी खास विचारधारा पर आधारित क्रांति वास्तव में क्रांति नहीं होती। क्योंकि अंततः सोचना किसी विशेष परिस्थिति को दिया जानेवाला एक प्रत्युत्तर भर होता है, किसी विशिष्ट पृष्ठभूमि के अनुसार किसी चुनौती पर की जानेवाली एक प्रतिक्रिया मात्र होता है। ईसाई, हिंदू या मुस्लिम या जिस भी रूप में मुझे संस्कारित किया गया होता है, मुझे जिस तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है उसी के अनुसार मैं किसी चुनौती का प्रत्युत्तर देता

हूं। उस पृष्ठभूमि का, उस संस्कारबद्धता का, आचरण के उस खास ढर्रे का अंत कैसे हो, ताकि नयी तरह का चिंतन जन्म ले सके? क्या यही हममें से अधिकांश की समस्या नहीं है? क्योंकि जब तक उस पूरी पृष्ठभूमि को मिटा नहीं दिया जाता है, किसी खास लीक पर निरंतर चल रहे हमारे विचार के ढांचे को जब तक तोड़ नहीं दिया जाता, तब तक आमूल क्रांति नहीं हो सकती।

क्या ज्ञान अर्थात तथ्यों के संबंध में जानकारियों का संग्रह, मेरी संस्कारबद्धता को तोड़ पाने में सफल होगा? लेकिन फिर भी हम यही कोशिश करते रहते हैं, हम सूचनाओं और ज्ञान का लगातार संग्रह करते रहते हैं, अपनी स्मृति को प्रशिक्षित करते जाते हैं। एक स्तर पर तो यह सब आवश्यक है। विशेषज्ञता के माध्यम से हम—खास तौर से बौद्धिक एवं शाब्दिक स्तर पर—मनुष्य की संपूर्ण चेतना के बारे में और स्वयं को अनावृत करने की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के बारे में बहुत सी जानकारियां खोज सकते हैं। परंतु क्या उससे कोई आमूल परिवर्तन घटित हो पाएगा? मुझे यह लगता है कि केवल जानकारी मूलभूत बदलाव नहीं ला पाएगी। इसके लिए एक पूर्णतः भिन्न प्रकार का कारक होना भी ज़रूरी है और वह कारक है चेतना की उस प्रक्रिया को, उस मन को समझना जो अनवरत जानकारियों का संग्रह करता रहता है।

हम सूचनाएं, जानकारियां क्यों इकट्ठी करते रहते हैं? ऐसा हम सुरक्षा के उद्देश्य से करते हैं और ऐसा करना एक हद तक हमारे अस्तित्व के लिए ज़रूरी भी है। कुछ लोग सोचते हैं कि ज्ञान खोज का एक साधन है। क्या हम ज्ञान के माध्यम से खोजते हैं? क्या ज्ञान खोज में बाधा नहीं डालता है? यदि हमारा पूरा मन सिर्फ जानकारी एकत्र करने के लिए ही प्रशिक्षित किया गया है, तो यह सब वह कैसे पता लगा पाएगा? क्या यह ज़रूरी नहीं है कि मन इस प्रश्न की जांच-परख किसी भी प्रकार के आश्रय से, किसी भी विश्वास और तमाम जानकारियों से मुक्त रहकर ही करे? यदि इसका पता लगाना है तो जानकारियां होते हुए भी, ज्ञान होते हुए भी यह आवश्यक है कि मन उस सबसे मुक्त रहे—नहीं तो वह कुछ भी पता नहीं लगा सकेगा।

इसमें कोई शक नहीं कि हममें से हरएक के भीतर एक द्वंद्व चलता रहता है, चाहे वह चेतन एवं अचेतन के बीच हो या सोचने के सतही तरीकों तथा विभिन्न प्रेरणाओं, इच्छाओं, चिंताओं एवं भयों की प्रच्छन्न प्रक्रियाओं के बीच। हम अपनी चेतना के गहनतर तलों में कोई मूलभूत परिवर्तन लाए बिना ही सिर्फ सतही स्तर पर ही सूचनाएं व ज्ञान एकत्रित करते रहते हैं। वर्तमान संकट की स्थिति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यही है कि क्रांति अचेतन तल पर होनी चाहिए न कि महज़ चेतन स्तर पर। जब तक हम मात्र स्मृति के संवर्धन में लगे हुए हैं, तब तक अचेतन स्तर पर क्रांति नहीं

हो सकती। क्या हम सभी की समस्या यही नहीं है कि अपने भीतर, गहराई में यह क्रांति कैसे हो?

आखिरकार हर व्यक्ति मनुष्य ही तो है, सारा संसार आपसे और मुझसे भिन्न नहीं है और व्यक्ति ही आमूल परिवर्तन को संभव बना सकता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि कैसे थोड़े से व्यक्ति बाकी लोगों से अलग तरह का जीवन जीते हुए इस समाज में अनेक परिवर्तन ला सके। एक व्यक्ति के रूप में जब तक हम अपने आपमें गहराई से, बुनियादी रूप से परिवर्तित नहीं होते, तब तक इस संसार में अमन-चैन की कोई संभावना मुझे नज़र नहीं आती।

व्यक्ति का, अर्थात मेरा व आपका, गहन एवं मूलभूत रूप से अचेतन तल पर परिवर्तित हो पाना कैसे संभव होगा? क्या यह किसी विशेष आदर्श या किसी विशेष सद्‌गुण को विकसित करने से संभव होगा? क्या किसी विशेष सद्‌गुण का संवर्धन महज़ उस चेतना को शक्तिशाली बनाना नहीं है जो स्मृति की संचय की, संग्रह की प्रक्रिया पर आधारित है, और जो स्व को, अहं को शक्तिशाली बनाती है? किसी विशिष्ट धारणा या आदर्शवाद का अभ्यास भी क्या स्व को, 'मैं' को दृढ़ करना नहीं है, जो भीतर और बाहर अनिवार्य रूप से द्वंद्व पैदा करता है और जो युद्धों का मूलभूत कारण है?

क्या इच्छाशक्ति की क्रिया के द्वारा 'मैं' के भीतर कोई क्रांति हो सकती है? मैं नहीं जानता कि आपने बदलाव लाने के लिए कभी इच्छाशक्ति का प्रयोग किया है या नहीं। आपने देखा होगा कि इच्छाशक्ति की क्रिया भी सिर्फ चेतन तल पर ही हुआ करती है और अचेतन तक इसका प्रभाव नहीं जाता। और सिर्फ चेतन स्तर पर बदलाव करने से या इच्छाशक्ति का प्रयोग करने से हमारे सोचने के तरीके में क्रांतिकारी बदलाव, मूलभूत परिवर्तन नहीं आ पाता। अतः किसी दार्शनिक प्रणाली का अवलंबन लेकर नहीं बल्कि स्वयं ही क्या यह पता लगाना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि मन कैसे कार्य करता है, अपने जीवन के तौर-तरीकों के प्रत्यक्ष अवलोकन से क्या यह पता लगाना ज़रूरी नहीं है कि हमारा मन कैसे कार्य करता है, ताकि सतही मन को अच्छी तरह समझते हुए हम उस सतह के नीचे जा सकें तथा समूचे मन को समझ सकें।

जब तक विचारक और विचार, दोनों में अभेद, दोनों का एकीकरण नहीं हो जाता, तब तक सोचने का, तर्क, दर्शन और ज्ञान के संग्रह आदि का प्रयोग विचारक द्वारा एक व्यक्ति विशेष के लिए या समूह के लिए अथवा विशिष्ट आदर्शवाद के प्रचार-प्रसार के लिए अथवा अपने महिमामंडन के एक साधन के रूप में किया जाता रहेगा। अतः जो इन विषयों के प्रति वास्तव में गंभीर हैं, उन्हें इसका पता लगाना ज़रूरी है कि मनुष्य अपने में पूर्णरूप से अविभाजित किस प्रकार से हो सकता है। इसमें संदेह नहीं कि

किसी प्रकार की बाध्यता से या आग्रह द्वारा अथवा अनुशासन की किसी प्रक्रिया या इच्छाशक्ति के माध्यम से यह संभव न होगा, क्योंकि ध्यान से निरीक्षण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी केवल सतही रूप से असरदार होते हैं।

अतः हमारी समस्या यह है कि हमारी चेतना का पूरी तरह से रूपांतरण कैसे संभव हो? सत्ता-मान्यता, ज़ोर-ज़बरदस्ती, परंपरापालन और अनुकरण आदि तरीके आज़माकर हम देख ही चुके हैं। यदि हम इस तथ्य-सत्य को समझ पाते हैं कि बलप्रयोग, अनुशासन, अनुकरण अथवा अनुसरण से रूपांतरण संभव नहीं है, तो सतही मन अनुकरण की इन बाध्यकारी प्रक्रियाओं से छुटकारा पा लेता है, और इस प्रकार शांत हो जाता है। इसके पश्चात समूची अचेतन प्रक्रियाएं अपने आपको चेतन तल पर प्रक्षेपित कर पाती हैं, और उनके इस प्रकार के प्रक्षेपण में उनके उघड़ने की, उन्हें समझने, उनसे मुक्ति पाने की संभावना होती है।

जब भी जीवन के किसी गहन तथ्य की समझ हममें पैदा होती है, तो मन प्रायः अवश्य ही निश्चल हो जाता है, उस स्थिति में वह समझने के लिए कोई प्रयास नहीं कर रहा होता। जब मन पूर्णतः मौन हो जाता है, केवल तभी वह समझ संभव है जो हमारे जीवन में आमूल क्रांति ला देती है।

प्रश्न : मुझे एक उबाऊ पुस्तक पढ़नी पड़ रही है। हालांकि मुझे उसमें बिलकुल रुचि नहीं है फिर भी मुझे उसे पढ़ना पड़ रहा है। मैं उसमें अपनी रुचि कैसे जगाऊं?

कृष्णमूर्ति : जिस चीज़ में आपको बिलकुल रुचि नहीं है उसमें आप अपनी रुचि कैसे जगा सकते हैं? जीवन के बारे में हम कितने भ्रामक ढंग से विचार करते हैं? आपके माता-पिता आपको किसी विश्वविद्यालय में, किसी कॉलेज में भेजते हैं। वे यह जानने का प्रयास कभी नहीं करते कि जीवन में आगे चलकर किस दिशा में आपका स्वाभाविक रुझान है, आपकी सच्ची दिलचस्पी किन बातों में हैं—आपके शिक्षक एवं प्रोफेसर भी इसे जानने की चेष्टा नहीं करते। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण आपको किसी लीक पर चलने के लिए विवश होना पड़ता है और आपकी सच्ची रुचि चित्रकला में होने पर भी आपको गणितज्ञ बनने के लिए बाध्य कर दिया जाता है और इसलिए आप पूछने लगते हैं, 'मैं गणित में अपनी रुचि कैसे जगाऊं?'

एक ऐसे देश में जहां जनसंख्या की विशालता समस्या बन चुकी है, जहां असंख्य आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारबद्धताएं हैं, इस सबसे बचना और मुक्त रह पाना, और जो वास्तव में हम करना चाहते हैं उसे कर पाना लगभग नामुमकिन है। परंतु हम क्या करना चाहते हैं इसे पता लगा सकना, प्रत्येक की अपनी-अपनी कार्यक्षमता को पहचान पाना

भी अत्यंत कठिन है। क्या इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हमारी पूरी शिक्षा-प्रक्रिया में पूर्ण क्रांति हो? हममें से अधिकांश को एक-दूसरे के समान बनने की शिक्षा दी जाती है, इसलिए हम ऐसा कुछ कर पाने के काबिल नहीं रह जाते जिसके लिए हममें योग्यता अथवा स्वाभाविक रुझान होता है, और इसी कारण हममें से अधिकतर मामूली वेतन पाने वाले क्लर्क बन कर रह जाते हैं।

किसी किताब में आपकी रुचि इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि आपने अभी तक यह नहीं खोजा है कि आपके सच्चे रुझान के अनुकूल आपकी जीविका क्या हो सकती है। मैं सोचता हूं कि परीक्षाएं पास करने, कुछ डिग्रियां हासिल करने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व इस बात का है कि जीवन को सृजनात्मक तरीके से जिया जाए। मेरे ख्याल से जिस कार्य में आपकी दिलचस्पी नहीं है, विवश होकर उसे करते रहने की बजाय उसी कार्य को करें जिसे करने की चाह है, भले ही भूखे पेट रहना पड़े। क्योंकि जब कोई व्यक्ति किसी दबाव में आकर ऐसा कार्य करता है जिसमें उसे रुचि नहीं है, तो वह अपने मन को बरबाद कर रहा होता है। उस हालत में जीवन एक सड़ी कुरूपता पर रह जाता है—जैसा कि हममें से अधिकांश लोग जी रहे हैं।

प्रश्न : एकाग्रता, सुषुम्ना, चक्रों एवम् ओम् के बारे में आप क्या सोचते हैं? जिन्हें हम सबसे ज्यादा प्रामाणिक मानते हैं ऐसे कुछ ग्रंथों में इनका वर्णन पाया जाता है, हालांकि स्वयं आपने शायद इन्हें नहीं पढ़ा होगा। इस विषय पर तंत्र-विज्ञान में बहुत अधिक जानकारी मिलती है; खास तरह के मंत्रों का, विशेष प्रकार के प्राणायामों और यंत्रों आदि का प्रयोग परम ज्ञान की प्राप्ति हेतु साधन के रूप में करने का उल्लेख उनमें किया गया है। अब भारत में यह सब करीब-करीब भुला दिया गया है लेकिन कुछ गुरुओं के पास अभी भी यह ज्ञान है, परंतु वे सामने नहीं आते। इस बारे में आपकी सम्मानित राय क्या है?

कृष्णमूर्ति : एकाग्रता में यदि किसी तरह का दबाव हो, किसी तरह का प्रयास हो तो क्या वह एकाग्रता है? एकाग्र होने के लिए यदि इच्छाशक्ति को किसी तरह से काम में लिया जाता है तो क्या वह वास्तव में एकाग्रता है? पूजा करते समय जब आप ध्यान केंद्रित करते हैं तो उसमें एक हस्ती होती है जो एकाग्र होती है और कहती है, 'मुझे ध्यान लगाना है।' अतः वहां क्या एक दोहरी प्रक्रिया नहीं चल रही होती है? शायद यह आपको कुछ अटपटा लगेगा और मैं उम्मीद करता हूं कि मेरे द्वारा इस संबंध में की गई चर्चा का आप बुरा नहीं मानेंगे, क्योंकि मैं महसूस करता हूं कि एकाग्रता क्या है इस बारे में हमारी सोच में कहीं कोई भूल है। जब मैं किसी उबाऊ लगने वाली पुस्तक को एकाग्रतापूर्वक इसलिए पढ़ता हूं कि मुझे उससे कोई खास परिणाम या सफलता मिलने वाली है, तो क्या यह

एकाग्रता है? उस गतिविधि में, एकाग्र होनेवाला और एकाग्रता का विषय होता है—क्या इस प्रकार की एक द्वैत की प्रक्रिया काम नहीं करती? इस दोहरी प्रक्रिया में एकाग्रता करनेवाला और एकाग्रता का विषय, उनके बीच एक द्वंद्व नहीं होता है? मन को किसी खास विचार या विचारों की शृंखला पर एकाग्र करने के लिए यदि अन्य बातों को दूर हटाने का, मन को नियंत्रण में करने का प्रयत्न किया जाता है तो क्या ऐसा प्रयास एकाग्रता होगा? या यह प्रयास एकाग्रता से बिलकुल भिन्न कुछ और ही होगा?

सामान्यतः जिसे एकाग्रता समझा जाता है उसमें मन का एक हिस्सा मन के किसी दूसरे हिस्से पर—जो कि एक विचार, एक प्रतीक, कोई देवी-देवता होता है—उस पर एकाग्र होता है। इस प्रक्रिया के दौरान मन के विभिन्न अन्य हिस्से बीच में आकर व्यवधान डालते रहते हैं और इसलिए लगातार एक संघर्ष चलता रहता है जिसे मन का भटकाव कहा जाता है। क्या यह संभव है कि ऐसा संघर्ष पैदा हुए बिना ही पूर्णतः सजग रहा जाय—उस विषय से पूरी तरह एक हो जाएं जिस पर आप ध्यान कर रहे हैं और इस प्रकार उसे वस्तुतः समझ लें।

ध्यानकर्ता के लिए खुद अपने को जानना और समझना महत्त्वपूर्ण है—उस विषय को नहीं, जिस पर वह ध्यान लगा रहा है, एकाग्र हो रहा है बल्कि ध्यानकर्ता को जानना और समझना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह संपूर्ण प्रश्न ध्यानकर्ता से जुड़ा है—उस विषय से नहीं जिस पर वह ध्यान लगाता है। यदि सचमुच इस प्रश्न की गहनतापूर्वक छानबीन करें तो केवल यही ज्ञात होता है कि जब ध्यानकर्ता किसी चीज़ पर ध्यान कर रहा होता है तो उसके द्वारा ध्यान करने के इस प्रयास में एक संघर्ष लगातार जारी रहता है, लगातार नियंत्रण किया जाता है; ध्यानकर्ता एवं जिस पर वह ध्यान कर रहा होता है उन दोनों के बीच हमेशा लड़ाई होती रहती है। जब सिर्फ चेतन तल पर ही नहीं बल्कि चेतना के गहनतर तलों पर भी ध्यानकर्ता की कार्यशैलियों को समझ लिया जाता है, तो सत्य का साक्षात्कार हो पाना संभव होता है। जब मन दो हिस्सों में बंट जाता है और एक हिस्से का दूसरे हिस्से पर नियंत्रण होता है तो सत्य को नहीं पाया जा सकता। इसे केवल तब पाया जा सकता है जब मन अत्यन्त निश्चल हो जाता है और यह निश्चलता किसी तरह की बाध्यता या अनुशासन के माध्यम से नहीं लाई गई होती है। ध्यानकर्ता, जो सदैव कुछ-न-कुछ तलाशता रहता है, कुछ पाने के लिए लगा रहता है, एकत्र करता रहता है, नकारता रहता है, वह जब तक एक पृथक सत्ता के रूप में बना रहता है, तब तक मन निश्चल नहीं हो सकता।

यह प्रश्न वास्तव में इतना जटिल और सूक्ष्म है कि इस पर सावधानी से चर्चा की जानी चाहिए और कुछ मिनटों में इसका उत्तर दे दिया जाना या इस पर पूरा ध्यान दिए बिना जल्दबाज़ी में कुछ कह देना ठीक नहीं होगा।

उत्तर कहीं नहीं होता, केवल प्रश्न ही होता है। समस्या क्या है, इसकी समझ में ही उत्तर छिपा होता है, परंतु दुर्भाग्यवश हममें से अधिकांश हां या नहीं के रूप में ही कोई उत्तर पाने के इच्छुक होते हैं और उसी धारणा के साथ उसे सुनते हैं। लेकिन यदि हम इस प्रवृत्ति को छोड़ सकें और केवल समस्या से पूर्णतः जुड़ सकें तो उस स्थिति में बिना किसी प्रयास के ही सच्ची एकाग्रता होने लगती है। एकाग्रता की अनेक विधियों के पक्ष में दूसरों ने तर्क दिए हैं, किंतु यह तय है कि उनसे आप कहीं नहीं पहुंच सकते।

वह सत्ता जो कि एकाग्र होती है—उसकी संपूर्ण प्रक्रिया को हमें समझना होगा। ध्यानकर्ता को समझ लेना ध्यान है। केवल इस प्रकार के ही ध्यान में यह संभव है कि मन अपने आपसे परे जा सके और अपने द्वारा ही निर्मित भ्रमों में न फंसा रहे।

प्रश्न : युद्ध हमारे काल का ज्वलंत प्रश्न है। आपने यह सुझाव दिया कि यदि सभी व्यक्ति अपने आपमें अखंड, अविभाजित हों तो युद्ध से बचा जा सकता है। क्या प्रत्येक व्यक्ति का इस प्रकार स्वयं में अविभाजित हो पाना संभव है? जहां तक मैं जानता हूं ऐसा व्यक्ति कहीं नहीं होता। यहां तक कि 'लीग ऑफ नेशन्स' और 'संयुक्त राष्ट्र संघ' जैसी उत्कृष्ट संस्थाएं भी व्यक्तियों या व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों के स्वकेंद्रित स्वार्थों के कारण प्रभावशून्य होकर रह गई हैं।

कृष्णमूर्ति : प्रश्न यह है : क्या अविभाजित हो पाना संभव है? अविभाजित होने से हमारा क्या तात्पर्य है? अपने चिंतन की विभिन्न प्रक्रियाओं को, अपने कृत्यों को, अपनी चेतनाओं को अखंडित रखना, घृणा और प्रेम को, ईर्ष्या और उदारता को, विभिन्न वर्ग-विभाजनों को, अपनी संपूर्ण संरचना के विभिन्न हिस्सों को परस्पर समेकित करना, उनका एकीकरण लाना—क्या यही आशय है? या अखंडित होना इससे कोई बिलकुल भिन्न चीज़ है?

इस समय हम घृणा को प्रेम में बदलने की भाषा में सोचते हैं। क्या यह संभव है? यदि मैं घृणा करता हूं तो अधिक महत्त्वपूर्ण क्या है?—मुझे प्रेम करना चाहिए यह बात, या कि मैं घृणा को समझ लूं, यह अधिक महत्त्वपूर्ण है? क्या मेरे लिए ज्यादा ज़रूरी नहीं होगा कि प्रेम के आदर्श पर ध्यान देने के बजाय मैं घृणा की संपूर्ण प्रक्रिया को समझ लूं? यदि मैं ईर्ष्यालु हूं तो महत्त्व ईर्ष्या से मुक्त होने या प्रेम, उदारता इत्यादि के आदर्श का नहीं बल्कि इस बात का है कि मैं ईर्ष्या की समूची गतिविधि को समझ लूं। *जो है* को समझना 'जो होना चाहिए' की बनिस्बत ज्यादा ज़रूरी है। यदि मैं बुद्धिहीन हूं तो मेधावी होने का प्रयास करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि मैं क्यों बुद्धिहीन हूं इसे समझा जाए, इसे जान लिया जाए। मूढ़ता कैसे अस्तित्व में आती है इस समस्या को मैं जैसे ही पूरी तरह से समझ लेता हूं, प्रज्ञा स्वाभाविक रूप से उदित होने लगती है।

अतः, भीतर से अखंडित होना, विवेकपूर्ण होना हमारे द्वैतमय चिंतन का परिणाम है या यह तब साकार रूप लेता है जब *जो होना* चाहिए पर ध्यान न देते हुए केवल *जो है* उसे समझ लिया जाता है? अथवा मैं अविभाजित तभी होता हूं जब मैं वास्तव में मैं जो हूं उसे देख-समझ लेता हूं, और तब मैं शंकराचार्य, बुद्ध या किसी आधुनिक मनोवैज्ञानिक या किसी कम्युनिस्ट के अनुसार अपने को नहीं देखता हूं। मैं केवल अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन के अपने संबंधों के माध्यम से ही उस यथार्थ को जान सकता हूं : अपने भीतर उठने वाले विचारों के माध्यम से, लोगों से मैं किस ढंग से बात करता हूं, उनसे कैसा बर्ताव करता हूं आदि आदि।

क्योंकि जीवन आखिरकार एक ऐसा दर्पण ही तो है जिसमें अपने आचरण के दौरान मैं अपने आपको देख सकता हूं। चूंकि हम जो हैं, हम उससे पूर्णतः भिन्न कुछ और होना चाहते हैं इसीलिए वास्तव में जो हो रहा है उसे हम नहीं देख पाते। मैं सोचता हूं कि अखंडित होना केवल तब ही संभव होता है जब मैं किसी विचारधारा या आदर्श के पीछे-पीछे अंधे की तरह न चलते हुए जो मैं वास्तव में हूं उसे देख पाता हूं। तब जो कुछ भी मैं हूं या जो भी वस्तुस्थिति है, उसमें आमूल परिवर्तन लाना संभव हो पाता है।

प्रश्न : हमें प्रबोधित करने वाली ये चर्चाएं आपके उद्देश्यों की परिपूर्ति में कहां तक सफल हैं? संसार बहुत लंबे समय से इस क्रांतिकारी संदेश को, अहम् के विनाश के माध्यम से परम सत्य को पाने, और उसके द्वारा सबसे उच्च और सबसे श्रेष्ठ तत्त्व की प्राप्ति करने के वचनों को सुनता आ रहा है। परंतु उसकी प्रतिक्रिया के रूप में क्या हो रहा है—यह सृजनात्मक है या मनोरंजन मात्र?

कृष्णमूर्ति : परिपूर्ति से आपका क्या अभिप्राय है? आप पूछते हैं कि क्या ये चर्चाएं आपको परिपूर्ति प्रदान करने में सहायक हैं? क्या आप यह सोचते हैं कि परिपूर्ति जैसा कुछ हुआ करता है? आप परिपूर्ति, तुष्टि तभी पाना चाहते हैं जब आपके प्रयास निष्फल होने लगते हैं। जब आप निर्णायक अथवा कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनना चाहते हैं, केवल उसी स्थिति में असफल होने का भय जन्म लेता है। परंतु यदि आप कुछ भी नहीं बनना चाहते तो परिपूर्ति का सवाल ही नहीं उठता।

हममें से प्रत्येक इस लोक में या परलोक में, आंतरिक या बाह्य धरातल पर कुछ-न-कुछ बनना चाहता है और हमारे ध्येय भलीभांति परिभाषित हुआ करते हैं, क्योंकि हमारी कामनाएं सदैव उस विशिष्ट लक्ष्य की दिशा में चलने के लिए हमें बाध्य करती रहती हैं जिसे हम सफलता कहते हैं। यदि हम इन कामनाओं को नहीं समझते तो उनके कुंठित होने पर क्लेश, दुख और पीड़ा उत्पन्न होते हैं और फलस्वरूप परिपूर्ति की खोज अनवरत जारी रहती है। परंतु जब मनुष्य चेतन एवं अचेतन इन दोनों तलों पर कामना के तौर-तरीकों को, असंख्य उत्कंठाओं को समझने लगता है तो परिपूर्ति का

प्रश्न नहीं रह जाता। यह तो 'स्व', 'मैं' ही होता है जो 'इस देश के महानायकों' के रूप में या आंतरिक रूप से परिपूर्ति की लालसा से ग्रस्त रहता है—कुछ विशिष्ट बनने, निर्वाण या मोक्ष या आप जो नाम देना चाहें उसकी प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। परंतु यदि हम कामना के सभी अंतर्तत्त्वों को, यानी 'स्व' के, 'मैं' के सभी निहितार्थों को, पूरी तरह समझ लेते हैं तो परिपूर्ति का प्रश्न ही नहीं रहता।

प्रश्न : मन को शांत करने पर जोर दिए जाने से क्या सृजनशीलता का क्षय नहीं होता?

कृष्णमूर्ति : सृजनशीलता क्या है और समझ क्या है?

सृजनशीलता को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि किसी भी तरह का भय न हो। क्या ऐसा नहीं है? क्योंकि वास्तव में हममें से अधिकांश के मन अनुकरण करने वाले होते हैं। हम सत्ता-मान्यता के तले दबे होते हैं। हममें चेतन एवं अचेतन असंख्य भय होते हैं। इतना जटिल, इतना क्षुद्र, इतना छोटा और संस्कारबद्ध मन—क्या ऐसा मन सृजनशील हो सकता है? एक-दो कविताएं लिख लेने के या कुछ पेटिंग बना डालने के अर्थ में नहीं बल्कि इस शब्द के गहरे अर्थ में यह केवल तब सृजनशील होता है जब आप भय की समूची गतिविधि को समझ लेते हैं। भय को समझने के लिए क्या यह आवश्यक नहीं है कि आप अपने मन के क्रियाकलाप की जांच करें? क्या आपको इस बारे में सजग नहीं रहना चाहिए कि मन कैसे अनुसरण में लग जाता है, मन क्यों प्रामाण्य की नकल करने लगता है? केवल तभी मन का सृजनशील होना संभव होता है।

क्या मन वस्तुतः सृजनशील होता है या सृजनशीलता बिलकुल भिन्न विषय है? आखिरकार मन है क्या? मन समय का परिणाम है और समय एक प्रक्रिया है। मन अतीत का परिणाम है, जबकि अतीत के अंतर्गत संस्कृति, परंपरा, अनुभव, विभिन्न आर्थिक एवं अन्य अचेतन प्रभाव सभी शामिल हैं—यह सब मन है। क्या मन, जो कि समय का परिणाम भर है, सृजनशील हो सकता है? क्या सृजनशीलता समय से बाहर का, काल से परे का विषय नहीं है, और इस प्रकार से क्या वह मन से परे का आयाम नहीं है? 'भारतीय सृजनशीलता' या 'पाश्चात्य सृजनशीलता' जैसा कुछ वास्तव में होता ही नहीं। संस्कृति भारतीय अथवा यूरोपीय, पश्चिमी अथवा पूर्व की नहीं होती, हालांकि इसकी अभिव्यक्ति इन रूपों में हो सकती है।

उस तरह की कोई सृजनशीलता, उस प्रकार की सृजनात्मक वास्तविकता, वह सत्य, ईश्वर या आप उसे जो भी नाम दें, निश्चय ही समय के पार है।

मन, जो कि समय का परिणाम है, अज्ञात की कल्पना या अनुभूति नहीं कर सकता। इसलिए यह ज़रूरी है कि मन अपने आपको ज्ञात से, ज्ञान से,

अपने अनेक अनुभवों से और परंपराओं आदि से मुक्त कर ले, केवल तभी वह अज्ञात को ग्रहण कर पाने में समर्थ हो पाता है। अज्ञात ही सृजनशील होता है; सृजन कैसे किया जाता है, इसकी जानकारी रखने वाला मन सृजनशील नहीं होता।

प्रश्न : जब हृदय एवं मन के बीच द्वंद्व हो तो किसकी सुनें?

कृष्णमूर्ति : क्या द्वंद्व होना ज़रूरी है? क्या प्रश्न मूलतः यही नहीं है कि किसके पीछे चलें—मन के या हृदय के?

पहले तो हम यह समझें कि क्या उनके बीच द्वंद्व होना ज़रूरी है? यदि उनके बीच द्वंद्व हो तो ही यह प्रश्न उठ सकता है कि किसके पीछे चला जाए : 'मैं इसका अनुसरण करूं या उसका?' हमारे भीतर द्वंद्व क्यों होता है? क्या द्वंद्व से समझ पैदा हो सकती है?

शायद आप सोच रहे होंगे कि मैं आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा हूं। आप बस यही जानना चाहते हैं कि आप किसके पीछे चलें। यह एक बड़ी सतही मांग है और आप इतना भर बतला दिए जाने से संतुष्ट हो जाएंगे कि आपको इस बारे में क्या करना चाहिए। दुर्भाग्य से हममें से अधिकतर लोग आज ऐसे ही हैं—हम बस यही जानते हैं कि हम क्या सोचें, हम यह नहीं जानते कि किस प्रकार से सोचें। इसलिए समस्या छिछले स्तर पर ही रहती है। यदि हम इस तरह के किसी प्रश्न पर विचार करना चाहते हैं तो हमें 'क्या सोचना चाहिए' को छोड़कर 'सोचा कैसे जाता है' इस बारे में पता लगाना होगा। यदि हमें यह पता चल जाए कि विचार किस तरह से किया जाता है तो समस्या पैदा ही नहीं होती। परंतु यदि आप कहते हैं : 'मुझे इसके पीछे जाना चाहिए' या 'मुझे उसकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए' अथवा 'मुझे इनमें से किसे चुनना चाहिए' तो समस्या उठ खड़ी होती है।

क्या आपको नहीं लगता कि यदि आप इस बारे में एक बार स्पष्टतापूर्वक, गहराई से खोजबीन करेंगे तो पाएंगे कि 'क्या करें' एक चुनाव है? क्या चुनाव द्वंद्व के कारण को स्पष्ट कर सकता है या द्वंद्व का अंत कर सकता है? कार्य करने का क्या ऐसा कोई अन्य तरीका नहीं है जो मन की मांगों और हृदय की मांगों की समझ से जुड़ा हो और जो यह न कहे कि इन दोनों में से किसको चुनना ठीक है? उन समस्त मांगों में से किसी एक या अन्य के पीछे चलने की अपेक्षा मुझे तुलनारहित हो कर प्रत्येक मांग को समझना होगा। केवल तभी मन इस-उस के बीच चयन से, अतः द्वंद्व से मुक्त हो पाएगा।

इस सबके लिए ऐसा मन चाहिए जो वास्तव में अवधानपूर्ण हो, ध्यानपूर्वक हो—मैं जो कह रहा हूं केवल उसके प्रति ही नहीं वरन् अपनी प्रक्रियाओं के प्रति भी अवधानपूर्ण हो और उन्हें समझे।

लेकिन हममें से कुछ ही ऐसा करने के इच्छुक होंगे। हममें से बहुत कम लोग ही गंभीर हैं। हम सतही चीज़ों के बारे में ही गंभीर होते हैं—जैसे मनोरंजन, रौनक-मेला, उत्तेजनाएं। परंतु जीवन की समूची समस्या के संबंध में, विचार के तौर-तरीकों के बारे में गहनतापूर्वक जांच-पड़ताल करने के लिए किसी विशेष सभा में घंटे भर शामिल होना काफी नहीं होता, इसके लिए तो मन की वह समझ ज़रूरी है जो अपने पूरे जीवनकाल में और समस्त कार्यों में सदा साथ रहे। हममें से बहुत कम लोग ही उसके लिए तैयार होते हैं। उसमें कोई जोखिम नहीं है, आपको कोई बढ़िया नौकरी नहीं मिलती, आपको कोई सफलता हासिल नहीं होती। जब तक हम यश चाहते हैं, सफल, शक्तिशाली और लोकप्रिय होना चाहते हैं, तब तक हम दुख और क्लेश पैदा करते रहते हैं जो अंततः युद्ध का कारण बनता है।

24 जनवरी 1954

अनुवाद-संदर्भ

अनुवाद में पूरी सावधानी बरतने के बाद भी इसमें कुछ त्रुटियां रह सकती हैं; इसे बेहतर बनाने की गुंजाइश तो हमेशा बनी रहती है। इस संबंध में किसी भी आलोचना या सुझाव का हम स्वागत करेंगे और आगामी संस्करणों में अपेक्षित परिवर्तन किये जा सकेंगे। आपकी बहुमूल्य टिप्पणियों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

पत्र-व्यवहार का पता :

अनुवाद एवम् प्रकाशन प्रकोष्ठ,

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, के. एफ. आई.

राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001

ई-मेल पता :

tpcrajghat@gmail.com

प्रश्नसूची

प्रश्न : जब मैं कुछ पढ़ने लगता हूं मेरा मन इधर-उधर भटकने लगता है। मैं एकाग्रता कैसे लाऊं?

प्रश्न : हमारे जीवन का क्या उद्देश्य है?

प्रश्न : हम रोते क्यों हैं?

प्रश्न : अचेतन के संबंध में हमें क्या करना चाहिए?

प्रश्न : हम लड़के-लड़कियां एक-दूसरे से शर्माते क्यों हैं?

प्रश्न : क्या यह सही है कि मनुष्य के मरने के पश्चात ही उसका यश फैलता है?

प्रश्न : किसी का आदर करने में भय छिपा होता है। फिर हम किसी का आदर क्यों करते हैं?

प्रश्न : बड़ा भाई छोटी बहन को और छोटी बहन अपने से छोटे भाई को क्यों मारते हैं?

प्रश्न : स्वतंत्रता क्या है?

प्रश्न : क्या प्रकृति अपनी स्व-आश्रितता से मुक्त हो सकती है? यदि आश्रित होने का तात्पर्य भयग्रस्त होना है तो क्या कभी यह संभव होगा कि प्रकृति पर हमारी निर्भरता से हम मुक्त हो पाएं?

प्रश्न : संसार में रहते हुए हम प्रगति कैसे कर सकते हैं?

प्रश्न : आप अपनी प्रत्येक वार्ता में हमसे कहते हैं कि हम प्रतिदिन सुबह कम-से-कम दस मिनट तक शिक्षकों से विभिन्न बातों पर चर्चा किया करें किंतु हमारे बहुत से शिक्षक इन सभाओं में नहीं आते हैं। तो उनसे चर्चा करने के लिए हम क्या करें?

प्रश्न : आत्मविश्वास किसे कहते हैं और मनुष्य में यह कैसे जाग्रत होता है?

प्रश्न : जब कोई लड़का बड़ा हो जाता है तो उसके मन में सेक्स के बारे में उत्सुकता जाग्रत होने लगती है। ऐसा क्यों होता है?

प्रश्न : जब हम लड़कियों को देखते हैं तो उन्हें प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। हम ऐसा क्यों करते हैं?

प्रश्न : हम अपने भीतर यह भावना कैसे जगाएं कि शारीरिक कार्य करना भी महत्त्वपूर्ण है?

प्रश्न : सूर्य क्या है?

प्रश्न : मनुष्य जो कुछ है उससे संतुष्ट कैसे रह सकता है?

प्रश्न : हम सूर्य को क्यों नहीं देख पाते?

प्रश्न : भावावेग क्या है? चूंकि मनुष्य में भावावेग होते हैं, उनका होना अच्छा है या बुरा है?

प्रश्न : राक्षस क्या होता है? हमें इससे डर क्यों लगता है?

प्रश्न : जब हम मंच पर जाकर अभिनय करते हैं, तो हम मुक्त भाव से अभिनय क्यों नहीं कर पाते?

प्रश्न : जब हम चिड़ियों के पास जाते हैं तो वे उड़ क्यों जाती हैं?

प्रश्न : द्वंद्व क्या होता है, और हमारे मन में यह कहां से आता है?

प्रश्न : रुचि क्या होती है?

प्रश्न : हम मृत्यु से क्यों डरते हैं?

प्रश्न : जब हम नयी चीज़ें देखते हैं, तो उन्हें पाने की इच्छा क्यों होने लगती है?

प्रश्न : प्रेम क्या है?

प्रश्न : हम अपने अंदर से राष्ट्रवादी और प्रांतवादी भावनाओं को कैसे दूर कर सकते हैं?

प्रश्न : खतरा क्यों होता है?

प्रश्न : आप सुखी हैं या नहीं?

प्रश्न : एक महानुभाव पूछते हैं—शंकर के इस कथन से आप कितना सहमत हैं कि मन को पूर्ण रूप से मिटा दिया जाना चाहिए?

प्रश्न : क्या किसी ऐसी वस्तु का अस्तित्व है जो परम सत्य हो, काल से परे हो, अपरिमेय और नित्य हो?

प्रश्न : आप कहते हैं कि सत्य ज्ञान के परे है। संस्कारमुक्त मन का ज्ञान सत्य होता है या मिथ्या होता है?

प्रश्न : 'केवल अपनी चिंता करते रहने का मतलब है अन्य लोगों की तरह से सोचना।' ऐसा है क्या?

प्रश्न : मनुष्य गरीबी और भय में जी रहा है। ऐसे मनुष्यों के समाज के लिए रोटी और सुरक्षा ही भगवान है। इसके अलावा गंभीर व्यक्ति इन्हें क्या दे सकते हैं?

प्रश्न : व्यक्तित्व क्या होता है? इसे निर्मित करने के लिए क्या करना होगा?

प्रश्न : यह ठीक है कि मन को संस्कारमुक्त किया जाना आवश्यक है, पर यह होगा कैसे?

प्रश्न : 'विचार करने से समस्या हल नहीं होती, समस्या तो विचार की ही उपज है' क्या यह भी एक प्रकार का विचार नहीं है, या विचार के जिस स्वरूप का आप प्रतिवाद करते हैं यह उससे कुछ अलग तरह की बात है?

प्रश्न : जीवन का क्या अर्थ है?

प्रश्न : संसार में शांति कैसे स्थापित की जा सकती है? हम और सारा संसार इस प्रयत्न में है कि चारों ओर शांतिपूर्ण वातावरण हो, परंतु फिर भी हम एक और विश्वयुद्ध के खतरे की ओर बढ़ते जान पड़ रहे हैं।

प्रश्न : मुझे एक उबाऊ पुस्तक पढ़नी पड़ रही है। हालांकि मुझे उसमें बिलकुल रुचि नहीं है फिर भी मुझे उसे पढ़ना पड़ रहा है। मैं उसमें अपनी रुचि कैसे जगाऊं?

प्रश्न : एकाग्रता, सुषुम्ना, चक्रों एवम् ओम् के बारे में आप क्या सोचते हैं? जिन्हें हम सबसे ज्यादा प्रामाणिक मानते हैं ऐसे कुछ ग्रंथों में इनका वर्णन पाया जाता है, हालांकि स्वयं आपने शायद इन्हें नहीं पढ़ा होगा। इस विषय पर तंत्र-विज्ञान में बहुत अधिक जानकारी मिलती है; खास तरह के मंत्रों का, विशेष प्रकार के प्राणायामों और यंत्रों आदि का प्रयोग परम ज्ञान की प्राप्ति हेतु साधन के रूप में करने का उल्लेख उनमें किया गया है। अब भारत में यह सब करीब-करीब भुला दिया गया है लेकिन कुछ गुरुओं के पास अभी भी यह ज्ञान है, परंतु वे सामने नहीं आते। इस बारे में आपकी सम्मानित राय क्या है?

प्रश्न : युद्ध हमारे काल का ज्वलंत प्रश्न है। आपने यह सुझाव दिया कि यदि सभी व्यक्ति अपने आपमें अखंड, अविभाजित हों तो युद्ध से बचा जा सकता है। क्या प्रत्येक व्यक्ति का इस प्रकार स्वयं में अविभाजित हो पाना संभव है? जहां तक मैं जानता हूं ऐसा व्यक्ति कहीं नहीं होता। यहां तक कि 'लीग ऑफ नेशन्स' और 'संयुक्त राष्ट्र संघ' जैसी उत्कृष्ट संस्थाएं भी व्यक्तियों या व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों के स्वकेंद्रित स्वार्थों के कारण प्रभावशून्य होकर रह गई हैं।

प्रश्न : हमें प्रबोधित करने वाली ये चर्चाएं आपके उद्देश्य को कहां तक सफल और संतुष्ट करती हैं? संसार बहुत लंबे समय से इस क्रांतिकारी

संदेश को, अहम् के विनाश के माध्यम से परम सत्य को पाने, और उसके द्वारा सबसे उच्च और सबसे श्रेष्ठ तत्त्व की प्राप्ति करने के वचनों को सुनता आ रहा है। परंतु उसकी प्रतिक्रिया के रूप में क्या हो रहा है—यह सृजनात्मक है या मनोरंजन मात्र?

प्रश्न : मन को शांत करने पर ज़ोर दिए जाने से क्या सृजनशीलता का क्षय नहीं होता?

प्रश्न : जब हृदय एवं मन के बीच द्वंद्व हो तो किसकी सुनें?

जे. कृष्णमूर्ति की अन्य पठनीय पुस्तकें

ध्यान

महान दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति की वार्ताओं तथा लेखन से संकलित संक्षिप्त उद्धरणों का यह क्लासिक संग्रह 'ध्यान' के संदर्भ में उनकी शिक्षा का सार प्रस्तुत करता है—अवधान की, होश की वह अवस्था जो विचार से परे है, जो समस्त द्वंद्व, भय व दुःख से पूर्णतः मुक्ति लाती है जिनसे मनुष्य-चेतना की अंतर्वस्तु निर्मित है। इस परिवर्द्धित संस्करण में मूल संकलन की अपेक्षा कृष्णमूर्ति के और अधिक वचन संगृहीत हैं, जिनमें कुछ अब तक अप्रकाशित सामग्री भी सम्मिलित है।

ईश्वर क्या है?

जे. कृष्णमूर्ति की चर्चित और लोकप्रिय पुस्तकों में एक पुस्तक है। यह पुस्तक उस पावन परमात्मा के लिए हमारी खोज को केन्द्र में रखती है।

कठिनाइयों, विपत्तियों, दुःख, कष्ट और असमंजस में घिरा व्यक्ति जब किसी परमसत्ता से मार्गदर्शन और सहायता की आशा करता हुआ आस्था की ओर लौटता है तो उस 'रहस्यमय परमसत्ता' की वास्तविकता और खोज भी करता है। यही से प्रश्न उठते हैं 'मैं क्या हूँ'—'ईश्वर क्या है?'

जे. कृष्णमूर्ति व्यापक विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि जब हम अपनी वैचारिकता के माध्यम से खोजना बंद कर दें तभी हम यथार्थ, सत्य अथवा आनंद की अनुभूति कर पाएंगे।

शिक्षा क्या है?

क्या आप स्वयं से यह नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़-लिख रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि आपको शिक्षा क्यों दी जा रही है और इस तरह की शिक्षा का क्या अर्थ है? इस पुस्तक में जीवन से संबंधित युवा मन के ऐसे अनेक पूछे-अनपूछे प्रश्न हैं और जे. कृष्णमूर्ति की दूरदर्शी दृष्टि इन प्रश्नों को मानो भीतर से आलोकित कर देती है, पूरा समाधान कर देती है। ये प्रश्न शिक्षा के बारे में हैं, किंतु सब एक-दूसरे से जुड़े हैं।

जे. कृष्णमूर्ति की अन्य पठनीय पुस्तकें

आपको अपने जीवन में क्या करना है?

जीवन से जुड़े जीवंत प्रश्नों का गहन अन्वेषण जे. कृष्णमूर्ति का बीसवीं सदी के मनोवैज्ञानिक व शैक्षिक विचार में मौलिक तथा प्रामाणिक योगदान है। यह पुस्तक उनकी विभिन्न पुस्तकों से संकलित अपने प्रकार का पहला संग्रह है, जिसमें विशेषकर युवा वर्ग को शिक्षा तथा जीवन के विषय में कृष्णमूर्ति की विशद दृष्टि का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध परिचय प्राप्त होता है।

ईश्वर क्या है?

जे. कृष्णमूर्ति की चर्चित और लोकप्रिय पुस्तकों में एक पुस्तक है। यह पुस्तक उस पावन परमात्मा के लिए हमारी खोज को केन्द्र में रखती है।

कठिनाइयों, विपत्तियों, दुःख, कष्ट और असमंजस में घिरा व्यक्ति जब किसी परमसत्ता से मार्गदर्शन और सहायता की आशा करता हुआ आस्था की ओर लौटता है तो उस 'रहस्यमय परमसत्ता' की वास्तविकता और खोज भी करता है। यही से प्रश्न उठते हैं 'मैं क्या हूँ'—'ईश्वर क्या है?'

जे. कृष्णमूर्ति व्यापक विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि जब हम अपनी वैचारिकता के माध्यम से खोजना बंद कर दें तभी हम यथार्थ, सत्य अथवा आनंद की अनुभूति कर पाएंगे।

शिक्षा क्या है?

क्या आप स्वयं से यह नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़-लिख रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि आपको शिक्षा क्यों दी जा रही है और इस तरह की शिक्षा का क्या अर्थ है? इस पुस्तक में जीवन से संबंधित युवा मन के ऐसे अनेक पूछे-अनपूछे प्रश्न हैं और जे. कृष्णमूर्ति की दूरदर्शी दृष्टि इन प्रश्नों को मानो भीतर से आलोकित कर देती है, पूरा समाधान कर देती है। ये प्रश्न शिक्षा के बारे में हैं, किंतु सब एक-दूसरे से जुड़े हैं।